ओ३म्

वैदिक सम्पत्ति

(उत्तरार्ध)

—: लेखक :—

पं. श्री. रघुनंदन शर्मा

साहित्य भूषण

अक्षर विज्ञान संपादक

शेठ श्री. शूरजीभाई वल्लभदासजी के सौजन्य से

—: प्रकाशक :—

कान्तिलाल गीरधरलाल शाह

स्वाध्याय मंडल

बड़ोदा

ओ३म्

वैदिक सम्पत्ति

(उत्तरार्ध)

—: लेखक :—

पं. श्री. रघुनंदन शर्मा

साहित्य भूषण

अक्षर विज्ञान संपादक

शेठ श्री. शूरजीभाई वल्लभदासजी के सौजन्य से

—: प्रकाशक :—

कान्तिलाल गीरधरलाल शाह

स्वाध्याय मंडल

बड़ोदा

मुद्रक

कान्तिलाल गिरधरलाल शाह

स्वस्तिक मुद्रणालय ज्युबीलीबाग–मोदीखाना, बड़ोदा

प्रथमवार संवत्	१९८७	प्रति	१०००
द्वितीयवार संवत्	१९९६	,,	२०००
तृतियवार संवत्	२००४	,,	११००

—: पुस्तक मिलनेके पते :—

१ शेठ शूरजी वल्लभदासजी

कच्छकेसल, सेन्डहर्स्ट ब्रिज बंबई ४।

२ स्वाध्याय मंडल, औंध; जि. सतारा।

३ स्वाध्याय मंडल, रावपुरा, बडोदा।

मूल्य ४) चार रुपया

वैदिक सम्पत्ति

तृतीय खण्ड ।

वेदों की उपेक्षा ।

द्वितीय खण्ड के अन्त में हमने वेदों की अपौरुषेयता सिद्ध करते हुए कहा है कि इसी वैदिक ज्ञान की बदौलत आदिमकालीन आर्य ऋषियों ने यज्ञों की उन्नति के लिये बड़े बड़े आविष्कार किये थे। किंतु जब से उनमें मिश्रित दर्शन, मिश्रित विश्वास और मिश्रित विचारों का समावेश हुआ, तब से परस्पर भयङ्कर अनैक्यता का साम्राज्य हो गया और उनका हर प्रकार से पतन हो गया। आज उन वैदिक आर्यों के वंशजों की वर्तमान दशा को देखकर कौन कह सकता है कि ये उसी अपौरुषेय ज्ञान के माननेवाले हैं, जिसने समस्त संसार को ज्ञानी और सदाचारी बनाया था? इनकी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक अवस्था को देखकर कौन कह सकता है कि ये उन्हीं ऐश्वर्यवान् ऋषियों और राजाओं की सन्तति हैं, जिन्होंने समस्त भूमण्डल को अपने विज्ञान, कला और शौर्यकौशल से चकित कर दिया था? इसमें सन्देह नहीं कि आर्यों का याज्ञिक काल बड़ा ही भव्य, तेजस्वी और विशाल था। उस समय कला, विज्ञान और सेना का महान् आयोजन था। आमोद, प्रमोद और विलास का साम्राज्य था और बल, शौर्य तथा साहस का समुद्र उमड़ रहा था, इसलिये आवश्यक था कि उनकी गिरावट आरम्भ हो।

अपने समय के सबसे महान पुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्य ही कहा है कि **'यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुतसा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्याद्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढता है।'** वही हुआ, आर्यों में आलस्य और प्रमाद बढा। उनके उज्ज्वल समाज में छोटे छोटे काले दाग दिखलाई पड़ने लगे। जहाँ तहाँ आलसी, अनाचारी और मूर्खों का प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इस अनाचार के आरम्भ का कारण वैदिक शिक्षा है? और क्या जिन वेदों की इतनी प्रशंसा की जा रही है, उन्हीं वेदों के अनुसार इस समय हमारा आचार–व्यवहार, धर्म–कर्म और रीति–रस्म चल रहे हैं? क्या वर्तमान हिन्दुत्व, जिसके सुधारने का प्रयास चारों ओर से हो रहा है, उसी वैदिकता से उत्पन्न हुआ है, जिसका इतना लम्बा गुणानुवाद गाया जाता है? और क्या उसी अपौरुषेय वैदिकता ने हमारा अधःपतन किया है, जिसका प्रादुर्भाव आदिसृष्टि में परमात्मा की ओर से हुआ था? इन प्रश्नों का उत्तर दिये विना वेदों की अपौरुषेयता की कोई खूबी समझ में नहीं आती। हम इस तृतीय खण्ड में इन्हीं सब बातों का खुलासा करना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि **आर्यों का पतन दर्शनमिश्रण और विश्वासमिश्रण से ही हुआ है।**

उनके पतन का कारण न वेद हैं और न वैदिक ऋषि। किन्तु उनके पतन का कारण केवल विदेशी ही हैं। अतः हम इस समस्त विवरण का पता लगाने के लिये आर्यों का सामाजिक बन्धन, उनका विदेशगमन, विदेश से पुनरागमन, आर्यों के दर्शनों में विदेशियों के विश्वासों का मिश्रण और उनके पतन का आरम्भ आदि समस्त विषय विस्तार से लिखते हैं।

आर्यों में अवैदिकता का संचार और प्रसार कैसे हुआ, इसका भी उत्तर स्वामी दयानन्द सरस्वती के वाक्यों में ही भरा हुआ है। समाज मे चाहे जितना अच्छा और दृढ प्रबन्ध हो, पर कुछ या अधिक काल के बाद प्रबन्ध में शिथिलता आ ही जाती है और दुष्ट मनुष्यों का प्रादुर्भाव हो ही जाता है। आर्यों में भी इसी स्वाभाविक नियमानुसार आलस आया, शिथिलता ने दुष्ट मनुष्यों को उत्पन्न किया और चारों वर्णों में एक साथ ही प्रमाद उत्पन्न हुआ। परन्तु विचक्षण आर्यों ने तुरन्त ही इस बात को ताड़ लिया और उपाय भी करने लगे। सबसे बेहतर और आर्योचित उपाय यही हो सकता था कि दुष्ट, दुर्जन अर्थात् अनार्य लोग समाज से बाहर निकाल दिये जाएँ। अतः समाज से पृथक् करने के कई एक मार्ग सोचे गये। सबसे पहिले यह स्थिर किया गया कि अमुक समय तक यज्ञोपवीत कराके यदि कोई आर्य आचार्यकुल में दाखिल न हो जाय, तो वह समाज से पृथक् कर दिया जाय। इसी तरह यदि कोई आर्य किसी को अकारण सताये, तो वह भी असुर–दस्यु स्वभाववाला–समझा जाय और समाज से निकाल दिया जाय। यदि कोई द्विज वेद न पढ़कर अन्यत्र श्रम करे, तो शूद्र समझा जाय। यदि कोई दोनों समय सन्ध्या न करता हो, तो वह भी शूद्र समझा जाय। यदि कोई आर्य सवर्णा स्त्री के अतिरिक्त अनुलोम प्रतिलोम विवाह करके प्रजा उत्पन्न करे, तो वह प्रजा भी चातुर्वर्ण के अन्दर स्थान न पावे। और यदि माता, पिता, आचार्य, राजा और अन्य माननीयों की आज्ञा न माने, तो वह भी समाज से निकाल दिया जाय। इस प्रकार से समाजशुद्धि के अनेकों द्वार खोले गये और चुन चुनकर नियमभङ्ग करनेवालों को जाति से–समाज से–बाहर निकाल दिया गया। चाहे ब्राह्मण हो, क्षत्री हो अथवा वैश्य हो, यदि वह मूर्ख और अनाचारी है, तो तुरन्त ही जातिबहिष्कार के योग्य समझा गया।

समाज को स्वच्छ रखने के तीन ही उपाय हैं। पहिला और सर्वप्रधान उपाय यही है कि समाज में ऐसी एक भी व्यक्ति न रहने पावे, जिसने गुरु के पास रहकर विद्या, सदाचार और सभ्यता न सीखी हो। दूसरा मार्ग यह है कि यदि कारणवश विद्या, सदाचार और सभ्यता सिखलाने पर भी वह बदमाश हो जाय, चोर, व्यभिचारी, अत्याचारी और हत्यारा हो जाय, तो उसको जाति से निकाल दिया जाय। इन दो प्रधान नियमों से समाज में न तो कोई मूर्ख ही रह सकता है और न अत्याचारी ही। इन दोनों की रक्षा के लिये तीसरे उस मार्ग की आवश्यकता होती है, जिससे सब लोग ईश्वर की उपासना, वेदद्वारा सृष्टि का ज्ञान और बड़ों का आदर करने का अभ्यास रक्खें, जिससे पहिले दोनों प्रधान नियमों के पालन करने में असुविधा न हो। **आदर्श आर्य बनाने के येही मार्ग हैं और पूर्वकाल में इन्हीं का अवलम्बन किया गया था। इन्हीं से उस आदर्श आर्यजाति की प्राप्ति हो सकती थी, जिसका वर्णन हमने गत खण्ड में किया है।** जातिबहिष्कार के अतिरिक्त उस समय दूसरी सज़ाएँ भी थीं, प्रायश्चित्त भी थे, जेल और जुर्माने भी होते थे। पर उस समय के महान्

सभ्यताप्राप्त आर्यों में जातिअपमान की सज़ा सबसे कड़ी समझी जाती थी। सच भी है, एक मनुष्य इसलिये आर्य न कहलाने पावे कि वह मूर्ख अथवा बदमाश है, इससे बढ़कर और क्या सज़ा हो सकती थी? सभ्य समाज से जिसका सम्बन्ध तोड़ दिया जाय, जिसके साथ कोई सभ्य मनुष्य किसी प्रकार का व्यवहार न रक्खे, उसके लिये इससे बड़ी और क्या सज़ा हो सकती थी और आदर्श आर्यत्व क़ायम रखने के लिये इससे अच्छा और क्या उपाय हो सकता था? पर हरएक खूबी में कुछ खराबी होती है, हरएक बन्दोबस्त में त्रुटि होती है और हरएक सुधार में ऐब छिपा होता है। इस अद्भुत नियमानुसार इस बहिष्कारपद्धति में भी आगे चलकर विष के फूल फूले। हम यहाँ सारांशरूप से उन जातियों के बहिष्कार का वर्णन कर देना चाहते हैं, जो पहिले आर्य थीं और फिर अनार्य हो गई। तथा जातिच्युत होकर दस्यु, दास, राक्षस, असुर, महिष, कपि, नाग आदि नीच नामो से पुकारी जाने लगीं और आर्यों के पतन का कारण हुई।

द्वितीय खण्ड में हम दिखला आये हैं कि आदिसृष्टि में समस्त गुणगणालंकृत आर्यजाति का ही जन्म हुआ था और उसी से मूर्ख और असभ्यों ने निकल निकलकर दस्यु और राक्षसादिकों की उत्पत्ति की थी। क्योंकि मनुस्मृति मे लिखा है कि ब्राह्मणों के पास न पहुँच सकने के कारण क्षत्रियों की जातियाँ क्रियालुप्त होने से पतित हो गई। वही पौंड्र, औंड्र, द्रविड, काम्बोज, पारद, खश, पह्लव, चीन, किरात, झल्ल, मल्ल, दरद और शक नाम-धारिणी अनार्य जातियॉ हो गई। यह सत्य है कि पहिले इसी प्रकार के व्रात्य ही जातिच्युत किये जाते थे। परन्तु कुछ दिन के बाद जातिबहिष्कार का रूप ज़रा उग्र हो चला। महाभारत हरिवंश और विष्णुपुराण मे यह कथा है कि राजा हरिश्चन्द्र के बाहु नामी सातवाँ वंशज हुआ। वह हैहा और तालजंघा नामी राक्षसों से पराजित हुआ और अपनी गर्भिणी स्त्री के सहित जंगल में भाग गया। उससे सगर पैदा हुआ। सगर ने अपने बाप के शत्रु शक, यवन, काम्बोज, चोल, केरल आदि को जीतकर उनका समूल नाश करना चाहा, परन्तु अपने गुरु वसिष्ठ के कहने पर उन सबको वेदभ्रष्ट करके, दक्षिण देश के अरण्यों मे निकाल दिया +। आगे चलकर इस प्रथा ने और भी अधिक उग्र रूप धारण किया। नहुष के पुत्र ययाति ने अपने पाँचों पुत्रों में से तुर्वसु से युवा अवस्था माँगी, पर उसने देने से इनकार कर दिया। इससे पिता ने नाराज़ होकर उसको सपरिवार जातिभ्रष्ट करके जहाँ अगम्यगामी, मांसाहारी और पशुवृत्तिवाले म्लेच्छ रहते थे, उस दक्षिण दिशा में हँकाल दिया ×। ये घटनाएँ क्षत्रियों में हुई।

इसी तरह ब्राह्मणों में भी जातिबहिष्कार हुआ। महर्षि विश्वामित्रजी ने कहीं से एक लड़का प्राप्त किया और उसे अपने सौ पुत्रों में सबसे मुख्य ठहराया। किन्तु पचास लड़कों

+ शकाः यवनकाम्बोजाः पारदाः पह्लवास्तथा। कौलिसर्पाः समहिषा दार्वाश्चोलाः सकेरलाः।
सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः। वसिष्ठवचनाद्राजन् सगरेण महात्मना।
(महाभारत)

× यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयस्त्वं न प्रयच्छसि। तस्मात् प्रजासमुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति।
संकीर्णाचारधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च। पिशिताशुशिजात्येषु मूढराजा भविष्यति।
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्य्यग्योनिगतेषु च। पशुधर्मिषु पापेषु म्लेच्छेषु त्वं भविष्यसि।
(महाभारत)

ने पिता की इस आज्ञा को मानने से इनकार कर दिया, इसलिए द्विजदेव विश्वामित्र महाराज ने क्रोधित होकर उन्हें दक्षिण के जंगल में निकाल दिया । वही सब आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, आदि राक्षस हो गये × । यह ब्राह्मणों का हाल हुआ ।

वैश्यों का हाल इससे भी अधिक विचित्र है । कहते हैं कि अति प्राचीन काल में आर्य-लोग लोभी वणिक् को 'पणिक्' कहते थे । वणिक, पणिक या पणि लोभी होते ही हैं । अतः आर्य जनता इन पर भी नाराज़ हुई और विवश होकर इनको भी उसी दक्षिण दिशा में जाना पड़ा * । इस प्रकार से आर्यों द्वारा पृथक् की हुई, यह समस्त टोली दक्षिणी प्रांत से भारत के अन्य सीमाप्रांतों में जा जाकर आबाद हुई । पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण में ये जातियाँ बसीं, बढ़ीं और पुष्ट होकर आर्यों से लड़ीं, तथा परास्त हो होकर अन्य अन्य देशों को चली गईं । आन्ध्र लोग आन्ध्रालय अर्थात् आस्ट्रेलिया को गये, झल्ल लोग अफ़रीका में जाकर जूलू हो गये, चीनी लोग चीन में जाकर बसे और किरात बलूचिस्तान में बस गये । नट, कंजर, बेड़िया आदि बहुत सी जातियाँ इसी देश के जंगलों में रह गईं । इसी तरह अन्य पतित जातियाँ भी पृथिवी के अन्य अन्य भागों में जाकर बसीं और अपने अपने नामों से उन उन देशों का नाम रखकर बहुत दिन के बाद स्वयं उस नाम से प्रसिद्ध हो गईं । अति प्राचीन काल में सबसे प्रथम जो जातियाँ भारत से निकलीं जाकर अन्य अन्य भूभागों में जा जाकर बसी हैं, उनका यह डिग्दर्शन मात्र है ।

इनके अतिरिक्त व्यापार करने के लिए, धर्मोपदेश करने के लिए और शासन, सभ्यता और आचार प्रचार करने के लिए भी कई बार यहाँ से आर्य लोग पूर्वोक्त देशों तथा अन्य अन्य भूभागों में जाकर बसे हैं । उन सब का वर्णन अगले पृष्ठों में विस्तारपूर्वक किया जायगा । पर यह स्मरण रखना चाहिये कि चीन, यवन और शक आदि शब्द विदेशी नहीं, किन्तु भारती हैं और बहुत पुराने हैं । चीन शब्द के विषय में प्रो० हीरन कहते हैं कि

× तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः । पंचाशदेव ज्यायांसो मधुच्छंदसः । पञ्चाशत्कनीयांसस्तत् ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे ।ताननु व्याजहारं तान्वः प्रजाभक्षीष्टेति । त एतेऽन्ध्राः पुंड्राः शबराः पुलिंदाः मुतिवा इत्युदंत्या बहवो भवंति । विश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः । (ऐतरेय ब्राह्मण ७।४।१८)

* The Panis have been mentioned more than once in the previous chapter. We have shown that they were Aryans, belonging to the trading class......They were a community by themselves, selfish, narrowminded, intent only on their own business and gain......They did not perform the same sacrifice nor worship the same God, as the cultured Aryans did, which made them incur their displeasure, nay, hatred. Hated and persecuted by Vedic Aryans...they must have moved along the western coast of the Deccan Peninsula in search of suitable land. (Rigvedic India, p. 180-181.)

चीन शब्द हिन्दुओं का है और हिंदुस्थान से ही आया है *।' पञ्चतन्त्र की एक कथा में लिखा है कि एक कौलिक विष्णुरूप धारण करके किसी राजकन्या के पास जाया करता था। वहाँ उस कन्या के सर्वाङ्गसुन्दर वर्णन में 'चीना नाभिः' लिखा हुआ है। यहाँ चीना शब्द का अर्थ गहरा है। अमरकोश में मृगों का भेद वर्णन करते हुए एक प्रकार के मृग को भी चीन कहा गया है। इन प्रमाणों से मालूम होता है कि चीन शब्द के असली अर्थों के कारण ही—गहराई में रहने और तेज़ तबीयत होने से ही—चीनवालों को चीनी कहा गया है। इसी तरह यवन शब्द भी पुराना है। पुराणों में '**तुर्वसो यवना जाताः**'। अर्थात् तुर्वसु से यवन पैदा हुए, लिखा है। तुर्वसु ययाति का पुत्र था। इससे ज्ञात होता है कि यवन शब्द भी नवीन नहीं है। इस शब्द के विषय में स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि मिश्र और बेबिलनवाले भी बहुत समय पूर्व, शक ग्रीक लोगों को यवन ही कहते थे। शक भी पुराना शब्द है। '**नरिष्यन्तः शकाः पुत्राः**' वाक्य से प्रकट होता है कि शक इक्ष्वाकु का पौत्र था। शक इतना पुराना शब्द है कि यह ऋग्वेद में भी आया है। कहने का मतलब यह कि आर्यों ने अपने अन्दर से जिन पतित आर्यों को निकालकर दस्यु, राक्षस आदि कहा है और चीनी, यवन, शक आदि शब्दों से पुकारा है, वे शब्द आर्यों के पास आदिम काल में भी उपस्थित थे और उनका कुछ अर्थ था। उसी अर्थ के अनुसार जिनमें जैसे गुण देखे, उनके वैसे ही नाम रख दिये और उन्होंने भी वे नाम अपने साथ ले जाकर अपने नवीन देशों के भी वही नाम रक्खे और स्वयं भी अब तक उन्हीं नाम को स्वीकार किये हुए हैं।

आर्यों का विदेशगमन।

पश्चिम एशिया।

भारत से पश्चिम की ओर सबसे प्रथम अफ़रीदी, काबुली और बलूचीयों के देश आते हैं। इन देशों में इसलाम प्रचार के पूर्व आर्य ही निवास करते थे। यहीं पर गान्धार था। जहाँ की गान्धारी राजा धृतराष्ट्र की रानी थी। गान्धार को इस समय कन्धार कहते हैं, जिसका अपभ्रंश कन्दार और खन्धार भी है। इसी के पास राजा गजसिंह का बसाया हुआ ग़ज़नी नगर अब तक विद्यमान है। काबुल में जो पठान जाति रहती है, वह प्रतिष्ठान (झूसी) राजधानी की रहनेवाली चन्द्रवंशी क्षत्री जाति है। झूसी से आकर पहिले यह सरहद (फ्रंटियर) में बसी और वहाँ इसने प्रजासत्ताक शासनपद्धति स्थापित की। प्रजासत्ताक शासनपद्धति को उस समय गणराज्य कहते थे। अफ़रीदी लोग उस समय के गण लोग ही हैं। रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने महाभारतमीमांसा नामी ग्रन्थ में इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। आप कहते हैं कि "महाभारत में लिखा है कि '**गणान् उत्सवसंकेतान् दस्यून् पर्वतवासिनः। अजयन् सप्त पाण्डवाः**' अर्थात् सप्त गणों को पाण्डवों ने जीत लिया। इन्हीं गणों ने ज़रा आगे बढ़कर 'उपगण' या 'अपगण' राज्य स्थापित किया। इसी को इस समय अफ़ग़ान कहते हैं और उनके स्थान का

* The name of China is of Hindu origin and came to us from India. (Professor Heeren.)

नाम अफ़गानिस्तान है । इसका असली उच्चारण ' उपगणस्थान ' है । यह पहिले गणराज्य का मातहत था । ये गण (अफ़रीदी) आर्यों से द्वेष रखने के कारण ही आर्यों के शासन से अलग रहते थे । इसी तरह बलूचिस्तान भी बलोच्चस्थान शब्द का अपभ्रंश है । इसमें केलात नामक नगर अब तक विद्यमान है । यह केलात तब का है, जब किरात नामी पतित आर्य क्षत्री यहाँ आकर बसे थे । ये क्षत्री होने से ही बल में उच्च स्थान प्राप्त कर सके थे । मनुस्मृति में जहाँ अन्य पतित क्षत्रियों के नाम गिनाये गये हैं, वहाँ ' किराताः यवनाः शकाः ' कहकर किरात भी गिनाये गये हैं । हम आगे विस्तारपूर्वक इनका वर्णन करेंगे और दिखलावेंगे कि ये किरात नैपाल और भूटान आदि में जाकर मङ्गोलिया जाति के मूल पुरुष भी बने हैं ।

अफ़गानिस्तान के आगे ईरान है, जिसको पारस्य देश भी कहते हैं । यहाँ पहिले वह जाति आबाद थी, जो आजकल हिन्दुस्थान में पारसी नाम से प्रसिद्ध है । यह जाति अति प्राचीन काल में ही आर्यों से जुदा होकर ईरान में आबाद हुई थी । मैक्समूलर कहते हैं कि ' यह बात भौगोलिक प्रमाणों से सिद्ध है कि पारसी लोग फारस में आबाद होने के पहले भारत में आबाद थे । उत्तर भारत से जाकर ही पारसियों ने ईरान में उपनिवेश बसाया था ' + । वे अपने साथ यहाँ की नदियों के नाम ले गये । उन्होंने सरस्वती के स्थान में ' **हरहवती** ' और सरयू के स्थान में ' **हरयू** ' नाम रक्खा । वे अपने साथ शहरों के भी नाम ले गये । उन्होंने भरत को ' **फरत** ' किया और वही फरत ' **यूफ़रत** ' हो गया । उन्होंने भूपाल (न) को बेबिलन और काशी को **कास्सी** (Cassoci) तथा **आर्यन** को **ईरान** नाम से भी प्रसिद्ध किया । इस वर्णन से ज्ञात हुआ कि पारसी भी भारती आर्यों की ही शाखा हैं ।

ईरान के पास ही अरब है । वैदिक भाषा में अर्वन् घोड़े को कहते हैं और जिस जगह घोड़े रहते हैं, उस स्थान को अर्व कहते हैं । जिस प्रकार गौओं के बड़े चरागाह को व्रज और भेड़ बकरीवाले देश को गन्धार कहते हैं, उसी तरह जहाँ अच्छी जाति के घोड़े रहते हैं, उसको अर्व कहते हैं । अब भी अरबी घोड़ा सर्वोपरी समझा जाता है । उत्तम घोड़े उत्पन्न होने से ही आर्यों ने इस देश का नाम अर्व रक्खा था । स्मृतियों के पढ़नेवाले जानते हैं कि आर्यों से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति को ' शैख ' कहते हैं । यह संकरजाति ब्राह्मण के योग से उत्पन्न होती है × । मालूम होता है वही शैखजाति अरब में बसकर शेख हो गई है । क्योंकि शेखों का अरब में वही मान है, जो भारत में ब्राह्मणों का है । यह प्रसिद्ध बात है कि मुसलमान होने के पहिले वहाँ के निवासी अपने को ब्राह्मण ही कहते थे । अरब से ही रामानुज सम्प्रदाय का मूल प्रचारक यवनाचार्य बहुत करके यहाँ नवीं शताब्दी

+ It can now be proved even by geographical evidence that the Zoroastrian had been settled in India before they immigrated into Persia. (Chips From a German workshop, p. 235.)

The Zoroastrians were a colony from Northern India. (Science of Languages.)

× **व्रात्यस्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥** (मनुस्मृति)

में आया था। क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य का जन्म हुआ है। इनके दो सौ वर्ष पूर्व मद्रास प्रान्त में शूद्र जाति पर महान् अत्याचार था। उसी समय इस अरबदेश-निवासी ब्राह्मणकुलोत्पन्न दयालु यवनाचार्य का आना हुआ। उस समय वहाँ महात्मा शटकोप आदि आन्दोलनकर्ताओं को यवनाचार्य ने मदद दी।

'एशियाटिक रिसर्चेज़' भाग १० में 'बिलफोर्ड' नामी विद्वान्‌लिखित एक निबन्ध छपा है। उसमें लिखा है कि 'यवनाचार्य का जन्म अरबदेश के एक ब्राह्मणकुल में हुआ था और अलेक्जेंड्रिया के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में उन्होंने शिक्षा पाई थी'*। अरब में अब तक बहुत से आर्य निवास करते हैं, पर उनका आचार यहाँ के हिंदुओं का सा नहीं है। जर्मन युद्ध के समय यहाँ के कई फ़ौजी सिपाही बगदाद, बसरा और मेसोपोटामिया आदि में रहकर यहाँ आये हैं। वे बतलाते हैं कि वहाँ अब तक पुराने हिन्दुओं के चिह्न पाये जाते हैं। इन घटनाओं से अच्छी तरह सिद्ध होता है कि अरबनिवासी आर्य ही हैं। इस अरब से आगे चलने के पूर्व, हम उन स्थानों के प्राचीन नाम और पते बतला देना चाहते हैं, जिनका इस समय एशिया माइनर या नियर ईस्ट में समावेश होता है। आजकल के नक़शे के अनुसार फ़ारस, मेडिटेरेनियन समुद्र, अरब और मेसोपोटामिया को सब जानते हैं। इसलिए नीचे लिखे देशों की कल्पना कर लेना सहज होगा। फ़िनीशिया पश्चिमी एशिया में मेडिटेरेनियन समुद्र के किनारे पर है। सीरिया देश फ़िनीशिया से मिला हुआ पूर्व की तरफ़ है। बेबिलोनिया सीरिया के दक्षिण, फ़ारिस के पश्चिम और अरब के उत्तर है। चाल्डिया भी इसी के पास है। जुडिया को सीरिया भी कहते हैं, वह भी यहीं पर है और मेसोपोटामिया असीरिया के पश्चिम में है। इन देशों के निवासियों का परिचय इस प्रकार है।

फ़िनीशिया प्रदेश मेडिटेरेनियन समुद्र के किनारे पर स्थित है। पूर्व पृष्ठों में हम आर्यजाति के वैश्यवर्णान्तर्गत पणि नामक आसुरी वृत्तिवाले बनियों का वर्णन कर आये हैं। वैदिक भाषा में वैश्यवर्ण के बदमाश, ठग, धोखेबाज़ और धनलोलुप गिरोह को पणि कहते हैं। ये पणि आर्यों द्वारा निकाल दिये गये और दक्षिण प्रदेश में एक अच्छा बाज़ार बनाकर बस गये। इस बज़ार को लोग पण्य कहते थे। कुछ दिन में यही पण्य पाण्ड्य कहलाने लगा और इन्हीं पणियों के नाम से पाण्ड्य प्रदेश क़ायम हो गया ×।

इन्हीं की एक दूसरी शाखा चोर होने के कारण इनसे भिन्न स्थान में बसी और

---

* But before telling anything of these learned men, something needs to be said of that great man, Yawanacharya. He took his birth in a Brahman family in Arabia and was educated in the University of Alexandria. (Asiatic Researches, Vol. X.)

× पणियों के लिए ऋग्वेद ७।६।३ में लिखा है कि 'अक्रतून् ग्रथिनः मृध्रवाचः अश्रद्धान् पणीन्' अर्थात् गॉट काटनेवाले पाकेटमार पणि। चेम्बर्स डिक्शनेरी में लिखा है कि Punic–Pertaining to or like the ancient Carthaginians; faithless, treacherous, deceitful (L. Punicus–Poeni, the Carthaginians.) सकबर्ग (Suckburgh) नामी विद्वान् अपने रोम के इतिहास में लिखता है कि 'The Roman words Poeni and Punicus are corruptions of Phoenix and Poenician.'

'चोल' कहलाने लगी। इसी के नाम से चोल प्रदेश प्रसिद्ध हुआ। ये पाण्ड्य और चोल दोनों प्रदेश मद्रास प्रान्त में अब तक विद्यमान हैं। ये पणि लोभी थे और बहुत बड़े व्यापारी थे। जहाज़ बनाना भी जानते थे। मद्रास प्रान्त में सागवन की लकडी अधिक थी ही। अतः उसके जहाज़ बना बनाकर ये पणि दूर देशों को रवाना हुए और पश्चिमी एशिया में मेडिटेरेनियन समुद्र के किनारे पर आबाद हुए।

जिस प्रकार इनके नाम से यहाँ पाण्ड्य और चोल प्रदेश प्रसिद्ध हुए थे, उसी तरह पणियों से फ़िनीशिया और चोलों से चाल्डिया देशों के नाम भी प्रसिद्ध हो गये। फ़िनीशियावाले पणि अथवा पणिक ही हैं, इस में सन्देह नहीं है। क्योंकि बेबिलोनियावालों के मूल पुरुषों के विषय में 'हिस्टोरिकल हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' में लिखा है कि 'बेबिलोनियावालों के वायु देवता का नाम 'मतु' या 'मर्तु' है। यह हमें वैदिक शब्द 'मरुत्' ही प्रतीत होता है। यह पणियों और चोलों के द्वारा ही बेबिलोनियामें लाया गया है' *। इस वर्णन से यह स्पष्ट हो गया कि पणियों का चोलों के साथ सम्बन्ध है और यह भी निश्चय हो गया कि इन्होंने ही बेबिलोनिया को भी आबाद किया था। राजनिघण्टु में लिखा है कि '**वैशस्तु व्यवहर्ता विट् वार्तिकः पणिको वणिक**' अर्थात् व्यवहर्ता, विट, वार्तिक, पणिक और वणिक वैश्य के ही भेद हैं। इस प्रमाण से सुलझ गया कि वे आर्य ही हैं। इसके अतिरिक्त तिलक महोदय ने लिखा है कि वैदिक 'मना' और फ़िनीशिया का 'मनह' शब्द एक ही है और वहाँ भारत से ही गया है। मन के लिए ऋग्वेद ८।७८।२ मे आया है कि '**आ नो भर व्यंजनं गामश्वमभ्यञ्जनम्। सचा मना हिरण्यया**'। यह मन वज़न के लिए काम में आता था और अब भी आता है। इसको लेटिन में मिन, ग्रीक में मिना, बेबिलोनियन में मिन और वर्तमान अँगरेज़ी में माउण्ड कहते हैं' ×। इसी तरह फ़िनीशिया की भाषा में ऊँट को जिमल कहते हैं। वही अँगरेज़ी में केमल कहलाता है। यह संस्कृत के क्रमेलक शब्द का ही अपभ्रंश है। क्रमेलक का क्रमेलक और कमेलक का केमल तथा केमल का जिमल हो गया है +। परंतु यह अफ़रीका का प्राणी नहीं है÷। इससे ज्ञात होता कि ऊँट और उसका वाचक शब्द दोनो भारतसे ही

* The name of the Babylonian storm-God was Matu or Martu which, as we have seen, was the same as the Vedic Marut and must have been taken by the Panis and Cholas to Babylonia.
(Historical History of the World, Vol. 1, p. 89.)

× Dr. Bhandarker Commemoration essays.

+ फ़िनीशिया लिपि के अबजद का 'जीम' ऊँट के ही आकार का है। इस जीम को पहिले फ़िनीशिया भाषा में जिमल (ऊँट) कहते थे। क्योंकि यह अक्षर ऊँट से ही लिया गया है। अबजद का अँगरेज़ी में 'A B C D' (अबसद) हुआ है। परन्तु 'सी' का उच्चारण 'क' भी होता है। इसलिए जिमल का केमल हुआ है।

÷ The other domestic animals have certainly been introduced from other continents, as for instance, the camel, which seems to have been entirely unknown in Africa before the period of the great migration in Western Asia about 2,000 B. C.
(Harmsworth History, of the World, p. 2007)

गये हैं और इनके ले जानेवाले पणिक ही हैं।

इन समस्त प्रमाणों से सिद्ध होता है, कि पणि और चोल ही फिनीशिया और चाल्डिया में आबाद हुए। इस समस्त वर्णन का सारांश यह है, कि आदि में वैश्यों से पणि हुए और वही पणिक हो गये। उन्होंने ही दक्षिण में जाकर पण्य अर्थात् पाण्ड्य नाम का बाज़ार बसाया, जो कुछ दिन में उसी नाम का व्यापारी प्रदेश हो गया। इसी तरह अपने पड़ोस में चोलों— गाँठ काटनेवालों— को भी चोल प्रदेश में आबाद किया। वहाँ से ये लोग पश्चिम दिशा को गये और वहाँ पाण्ड्यों ने प्यूनिक या पयूनिक देश बसाया, जो अब फिनीशिया कहलाता है और चोलों ने चाल्डिया बसाया, जो बहुत दिन तक इस देश के साथ व्यापार करता रहा। इस तरह से आर्य लोग अपनी आर्यसभ्यता के साथ पूर्व से पश्चिम में पहुँचे।

अभी ऊपर हमने तिलक महोदय के जिस निबन्ध का प्रमाण दिया है, उसमें उन्होंने अथर्ववेद और चाल्डियन वेद के कई शब्दों का मिलान करके बतलाया है, कि दोनों की भाषा एक दूसरे से मिलती है। इस मिलान का नमूना इस प्रकार है—

संस्कृत	चाल्डियन	अर्थ
सिनीवालि	सिनवुव्वुलि	अमावास्या
अप्सु	अब्जु (जु—अब)	पानी
यह्व (१)	यह्वे	महान्
ऋतु	इतु	मौसिम
परसु	पिलक्कु, बलगु (२)	शस्त्र
अलिगीविलगी (३)	विलगी (४)	सर्पदेव
तैमात	तिआमत (५)	देवता
उरुगुला	उरुगुल (५)	देवता

इस शब्दसाम्य के अतिरिक्त, चाल्डिया की डैल्यूज़ टेबलेट अर्थात् मनु के तूफ़ान की कथा भी ज्यों की त्यों यहाँ के अनुसार ही लिखी हुई मिलती है। इससे स्पष्ट हो जाता है, कि वे आर्य ही हैं। हम अभी फिनीशियावालों के वर्णन के साथ लिख आये हैं, कि बेबिलोनिया में पणियों और चोलों ने ही उपनिवेश बसाया था। ये चाल्डियन उन चोलों के अतिरिक्त और कोई दूसरे नहीं है, जो आर्यों से जुदा होकर पहिले चोल देश में बसे थे। इसलिए चाल्डियानिवासी भी भारतवासी आर्य ही हैं।

(१) यह शब्द ऋग्वेद ९-७५-१; ३-१-१२ और ८-१३-२४ में 'महान्' अर्थ में आया है और ज़ेन्द में यही 'यजु' हुआ है। हज़रत मूसा का जिहोवा शब्द इसीसे निकला है। ग्रिफिथ ने इसका अर्थ 'Lord' किया है।

(२) 'पिलक्कु' अकेडियन और 'बलगु' सुमेरियन भाषा का है।

(३) यह शब्द अथर्ववेद ५—१३—१७ में आया है।

(४) यह शब्द असीरियन भाषा का है।

(५) ये शब्द अकेडियन भाषा के हैं।

जुडिया यहूदियों का देश है। इसी में हज़रत मूसा और हज़रत ईसा जैसे जगत्प्रसिद्ध धर्माचार्य उत्पन्न हुए हैं। बाइबल में लिखा है कि पश्चिम में आनेवालों की एक ही भाषा थी और वे सब पूर्व ही से आये हैं ×। इनके विषय में पोकाक नामी विद्वान् अपने 'इण्डिया इन् ग्रीस' नामी ग्रंथ में लिखता है, कि युडा (जुडा) जाति भारत की यदु अर्थात् यदुवंशीय क्षत्रिय जाति ही है +। इसके अतिरिक्त अभी हमने तिलक महोदय के लिखित शब्दसाम्य के हवाले से दिखलाया है कि यहूदियों का यहोवा शब्द संस्कृत के यह्व शब्द का ही अपभ्रंश है। बाबू उमेशचंद्र विद्यारत्न कहते हैं कि ज्यू शब्द संस्कृत का ही है। आप मेदिनी कोष का यह वचन उद्धृत करते हैं कि **'जूराकाशे सरस्वत्यां पिशाचे यवनेऽपि च।'** अर्थात् 'जू' शब्द यवन शब्द का ही अपभ्रंश है। 'मानवेर आदि जन्मभूमि' पृष्ठ ३ में आप कहते हैं कि 'राजा सगर की आज्ञा से यवनों ने जिस पल्ली स्थान में निवास किया था, वही पेलेस्टाइन हो गया है और यवन शब्द का ही विकार (यवन-जोन) 'जू' है' *। इस वर्णन से सिद्ध होता है कि यदुवंशी क्षत्री ही राजा सगर के द्वारा यवन करके निकाले गये, जो पेलेस्टाइन में बसे। यही बात बाइबल और पोकाक के वचनों से भी सिद्ध होती है। बाइबल का नूह का वर्णन भी मनु के तूफ़ान की ही सूचना देता है। अतएव यहूदियों के आर्य होने में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता। साथ ही यह भी सिद्ध हो जाता है कि वे भारत से ही जाकर वहाँ बसे हैं।

हम फ़िनिशिया के वर्णन में ऊपर लिख आये हैं कि बेबिलोनियावालों का वायु देवता जिसको वे मतु या मर्तु कहते हैं, वह वैदिक आर्यों का '**मरुत्**' ही है। यह पणियों और चोलों के द्वारा बेबिलोनिया में गया है। अतः सिद्ध है कि पणिक और चोल ही फिनीशिया और चाल्डिया से जाकर बेबिलोनिया में आबाद हुए हैं। ए० बेरीडल कीथ महोदय कहते हैं कि 'खास ध्यान देने योग्य शब्द 'सूरिआस' है, जो इनमें सूर्य के ही अर्थ में बोला जाता है' और ई० मेयर साहब ने मान लिया है कि यह 'सूरिआस' वैदिक 'सूर्या (स) ही है' ‡

× And the whole was of one language, and of one speech. And it came to pass, as they journeyed from the East. (Genisis, Chapter XI.)

\+ The tribe of Yudah is, in fact, the very Yadu of which considerable notice has been taken in my previous remarks. (India in Greece, p. 22.)

* सागर आदेशे हिंदू यवनगन प्रथमतः ये पल्लीस्थानेर प्रतिष्ठा करेन, ताहा Palastine बलिया प्रख्यात हय एवं उक्त यवनगन, यवन शब्देर विकार (यवन-जोन-जू) क्रमे 'जू' नामे प्रख्यात लाभ करेन। (मानवेर आदि जन्मभूमि)

‡ More noteworthy is Surias, since it is explained as meaning the Sun. And E. Meyer has yielded to the temptation to accept equation with the Vedic Suryas. (Dr. Bhandarker commemoration Essays, The Early History of Indo-Iranians by (A. Berriedale keith.)

यह सूरिआस शब्द बिलकुल ही '**सूर्याः**' का रूप है। क्योंकि विसर्ग का उच्चारण सकार ही होता है। इसके अतिरिक्त बेबिलोनिया की एक बहुत पुरानी फेहरिस्त में सिन्धु नामक बारीक मलमल का नाम आता है। बेबिलन में इस सिन्धु शब्द का कुछ भी अर्थ नहीं है। जिस तरह कालीकट ग्राम से जाने के कारण योरप में एक छींट का नाम केलिको प्रसिद्ध है। उसी तरह सिन्धु हैदराबाद से जाने के कारण इस वस्त्र का भी सिन्धु नाम हो गया था। यही सिन्धु वस्त्र पुरानी बाइबल में सेडिन् (Sadin), ग्रीक में सिण्डम् (Sindam) कहा गया है और अब अँगरेज़ी में साटिन् (Satin) नाम से बाज़ारों में बिकता है +।

कहने का मतलब यह कि इन वर्णनोंसे यह सहज ही अनुमान हो सकता है कि पूर्वातिपूर्व काल में इस देश के साथ बेबिलन का घनिष्ठ सम्बन्ध था और सिन्धु नामक वस्त्र अपने नाम के साथ वहाँ पहुँचता था। हम जिन चोलों का वर्णन पहिले कर आये हैं, वे दक्षिण से सागौन की लकड़ी भी अपने नवीन देशों में ले जाया करते थे। अभी कुछ रोज़ हुए मुंघेर के खण्डहरों से पाँच हज़ार वर्ष की पुरानी सागौन की लकड़ी का टुकड़ा मिला है *। बेबिलोनिया के प्रथम बादशाह की बनवाई हुई इमारत से इस टुकड़े का प्राप्त होना यह सूचित करता है कि ये निस्सन्देह भारतवासी ही हैं– आर्य ही हैं और दक्षिण के पाण्ड्य और चोल से ही यहाँ जाकर अपने वंश और सभ्यता का विस्तार किया है।

असीरिया में भी आर्यों का ही निवास था। ए० बेरीडेल कीथ ने वहाँ के सुवरदत्त, जशदत्त और सुबन्धि आदि राजाओं के नामों से सिद्ध किया है कि वे आर्य ही थे×। इन देशों के निवासियों को आर्य लोग असुर कहा करते थे। इसीलिए ये सदैव अपने नाम के साथ असुर शब्द का प्रयोग करते रहे हैं। प्रसिद्ध बादशाह असुर नासिरपाल और असुर वाणीपाल इस बात के उदाहरण है। इनके नाम असुर शब्द के साथ आर्यभाषा के ही हैं। हमने आरम्भ में ही कहा था कि आर्यों ने जिन गुणदोषों के सूचित करनेवाले नामों को रखकर दुष्ट आर्यों को अपने से अलग किया था, वे नाम उन्होने भी कायम रक्खे थे। तथा उन्हीं नामों से अपने देशों को भी प्रसिद्ध किया था। जैसे **चीना से चीन, आन्ध्र से आन्ध्रालय (आस्ट्रेलिया)** आदि। कहने का मतलब यह कि असीरियानिवासी भी आर्य ही है और भारत से ही जाकर वहाँ बसे हैं।

+ Dr. Bhandarker Commemoration Essays, Chaldian and Indian Veda, by B. G. Tilak.

* In the ruins of Mugheir, ancient Ure of the Chaldees, built by Uria (or Ur-Bagash), the first king of Babylonia who ruled not less than 3,000 years B. C., was found a piece of Indian teak. (Vedic India by A. Ragozin.)

× Aryan names among the princes in Syria such as Suwordatta, Jasdatta, Arzawiya, Artamanya, Rasmanya, Subandhi and Sutarana...... (Dr. Bhandarker Commemoration Essays, The Early History of Indo Iranians by A. Berriedale Keith.)

मेसोपोटामिआवाले भी आर्य ही हैं। इनके विषय में ए० बेरीडल कीथ ने लिखा है कि दसरथ नाम का मितानी राजा इजिप्ट के एक राजा का साला था। यह आर्य था और ई० सन् के १३००–१४०० वर्ष पूर्व राज्य करता था। इसी प्रकार मितानियों के दूसरे राजा का हरि नाम भी आर्यों का ही सिद्ध होता है +। अभी हाल में जो मेसोपोटामिया के पुराने मकानों की खुदाई से मिट्टी की पकी हुई लिखित ईंटें प्राप्त हुई हैं, **उन ईंटों में मितानी और हिट्टाई राजाओं का इक़रारनामा लिखा हुआ मिला है, जिसमें मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य आदि वैदिक देवताओं के नाम लिखे हुए हैं***। इस घटना से बिलकुल ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि ये दोनों जातियाँ आर्य ही थीं। क्योंकि हिट्टी (Hittite) लोगों के लिए अब सिद्ध हो गया है कि वे क्षत्री थे। क्षत्री का ही अपभ्रंश 'खत्ती' है। जिस प्रकार पंजाब के रहनेवाले खत्री अपनी उत्पत्ति क्षत्रियों से ही बतलाते हैं, उसी तरह ये खत्ती भी जो इस समय हिट्टी (Hittite) लिखे जाते हैं, क्षत्री ही हैं।

इस प्रकार से हमने यहाँ तक **एशिया माइनर के तमाम प्राचीन देशों को देखा, तो मालूम हुआ कि वहाँ प्राचीन काल में ही आर्यजाति जाकर आबाद हुई है और उसी ने अपनी सभ्यता का वहाँ प्रचार किया है**। यही थोड़ा सा पश्चिमी एशिया में आदिकालीन आर्यों के गमन का इतिहास है।

उत्तरी एशिया।

हम आरम्भ में लिख आये हैं कि किरात लोग पतित क्षत्री हैं। ये दो भागों में बँट गये थे। एक दल बलूचिस्तान में जाकर बसा और दूसरा हिमालय पर जाकर बसा। हम अभी पहिले दल का वर्णन कर आये हैं। अब दूसरे दल का वर्णन करते हैं। नैपाल में जितने ब्राह्मण बसते हैं, सब कान्यकुब्ज हैं और जितने क्षत्री हैं, सब रामचंद्र के वंशज सूर्यवंशी हैं। कहा जाता है कि इनका सम्बन्ध महाराणा उदयपुर से है। इसलिए इनके आर्य होने में तो कोई शंका ही नहीं है। किन्तु नैपाल में एक चपटे चेहरेवाली मंगोलियन जाति भी रहती है। यह जाति अति प्राचीन काल में आर्यों की ही एक शाखा थी। परन्तु यह दीर्घाति-

+ Dasratta, the Mitani King, brother-in-law of Amenholeb of Egypt (1414-1379 B. C.). The name Harri, used of the Mitani, is really the Aryan name. (Dr. Bhandarker Commemoration Essays, The Early History of Indo-Iranian by A. Berriedale Keith.)

The obvious conclusion that the Aryans of Mitani and Syria penetrated these lands from the east ... ... (ibid.)

* एशिया माइनर के बगज़कोई (Baghazkoi) स्थान पर हिटीशिया (Hetitia) के बादशाह सुब्बिलुलिउमा (Subbiluliuma) और मितानी (Mitai-Modern Mesopotamea) के बादशाह मुट्टीवुज़ा (Muttivuza) के बीच के (ई० सन् पूर्व १४०० के) कुछ सन्धिपत्र मिले हैं, जिनमें मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य आदि वैदिक देवताओं की वन्दना की गई है। (रॉयल एशियाटिक सोसाइटी का सन् १९१० का जर्नल पृ० ७२१ और ४५६ ।)

दीर्घ काल पूर्व ही आर्यों से पृथक् होकर चीना नामक हिमालय के उत्तर ओरवाली गहराई में बस गई थी, इसलिए अब उसके आकार, रंग और भाषा आदि में बहुत अन्तर आ गया है। बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न ने लिखा है कि किरात लोग नेपाल के उत्तर-पश्चिम में बसते थे और पतित क्षत्री थे और हमने बतलाया है कि चीना हिमालय के नीचे उत्तर-पूर्व में रहते थे और ये भी क्षत्री ही थे। इन्हीं दोनों के मेल से मंगोलिया जाति के पूर्वजों की उत्पत्ति हुई है। यही नेपालनिवासी चपटे मुँहवाली जाति है। यही जाति मंगोलियन विभाग की जननी है। उमेश बाबू कहते हैं कि इस नवीन जाति का रंग वाल्मीकि रामायण में सुवर्ण का सा लिखा है। जिस समय की यह बात है, उस समय जिस प्रकार ज़रा साँवले रंगवाले श्याम और श्यामा बड़े सुन्दर समझे जाते थे, उसी तरह ये पीत अर्थात् सुवर्ण के से रंगवाले भी बहुत उत्तम समझे जाते थे। महाभारतमीमांसा में रावबहादुर चिन्तामणी विनायक वैद्य ने महाभारत के प्रमाणों से लिखा है कि कौरवपांडव की गौरवर्ण स्त्रियों का रंग तप्त सुवर्ण का सा था। यह उस समय के रंग की खूबी का बयान है। दक्षिण के गुजराती और महाराष्ट्र आदिकों का भी प्राय: यही रंग है। वे न तो सफेद हैं और न सर्वांमालय ही हैं। आदिम काल में आर्यों ने ज़रा साँवले और ज़रा पीले रंग को ही अपने मन में उत्तम समझा था, इसीलिए माताओं के संस्कार प्रबल हुए और अधिक प्रजा इसी रंग की हो गई। हम देखते हैं कि नेपाल में बसनेवालों का भी प्राय: यही रंग है। वहाँ चपटे चेहरे और पीतवर्णवालों में कुछ ताम्रवर्ण के श्याम लोग भी पाये जाते हैं। अभी हमने जिस श्याम रंग का वर्णन किया है, ये लोग उसी रुचि के परिणाम हैं। कहने का मतलब यह है कि ये चपटे चेहरे और पीले तथा श्याम रंगवाले मंगोलियन आर्यों से भिन्न किसी अन्य जाति के मनुष्य नहीं है।

नेपाल से आगे हिमालय के नीचे रूसी तुर्किस्थान है। वहाँ बहुत पूर्व काल से आर्यों का निवास है ×। इसके आगे बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न ने आर्यों का मूल वतन मंगोलिया के अलताई पहाड़ पर सिद्ध करने के लिए 'मानवेर आदि जन्मभूमि' नामक ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थ के पढ़ने से अधिक तो नहीं, पर इतना अवश्य भासित होता है, कि पूर्वातिपूर्वकाल में आर्यलोग अलताई अर्थात् इलावृत में रहते थे और यह अलताई शब्द इलावृत का ही अपभ्रंश है। 'मानवेर आदि जन्मभूमि' पृष्ठ ११९ में वायुपुराण अध्याय ३८ के कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं, जिनसे ऊपर की बात पुष्ट होती है। उनमें से दो श्लोक ये हैं—

वेद्यर्द्धं दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे।
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयं मेरुमध्यमिलावृतम्॥

तत्र देवगणाः सर्वे गन्धर्वोरगराक्षसाः।
शैलराज्ये प्रमोदन्ते शुभाश्चाप्सरसाङ्गनाः॥

अर्थात् इलावृतवर्ष के दक्षिण हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्ष ये तीन वर्ष हैं और उत्तर की ओर रम्यकवर्ष, हिरण्यवर्ष और उत्तरकुरुवर्ष ये तीन वर्ष हैं। इनके बीच में इला-

× It appears very probable that at the dawn of history East Turkistan was inhabited by an Aryan population.
(Lassen's Indisceche Alterthumskunda.)

वृतवर्ष है। इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि मंगोलिया में आर्यलोगों ने ही अपना उपनिवेश बसाया था।

सिथिया देश किसी समय भारत से निकाले हुए शक नामी पतित क्षत्रियों द्वारा बसाया गया था। इन शकों के विषय में पुराणकार लिखते हैं कि—

इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च।
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभानेदिष्ट एव हि॥
करुषश्च पृषध्रश्च वसुमान् लोकविश्रुतः।
मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राश्च धार्मिकाः॥ (विष्णुपुराण)

अर्थात् वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नाभानेदिष्ठ, करुष, पृषध्र, वसुमान् और नरिष्यन्त ये नव पुत्र थे। हरिवंश अध्याय १०, श्लोक २८ में लिखा है कि—

नरिष्यन्तः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत।
अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः॥ (हरिवंश)

अर्थात् नरिष्यन्त के पुत्रों का ही नाम शक है। इन शकों को राजा सगर ने 'अर्धमुण्डान् शकान्' (विष्णुपुराण अं० ४, अ० ३, श्लोक २१), अर्थात् आधा शिर मुंडवाकर निकाल दिया था। यही लोग सिथिया (जिसको शकावस्था कहना चाहिए) में जाकर बस गये। इसलिए इनके आर्य होने में कोई सन्देह नहीं है*।

उत्तर कुरुप्रदेश साइबीरिया से लेकर आगे तक है। इसके विषय में वायुपुराण अध्याय ८५ के ये श्लोक पढ़ने लायक हैं। वहाँ लिखा है कि—

उत्तरस्य समुद्रस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे।
कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिसेवितम्।
देवलोकात् च्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः।

अर्थात् उत्तर महासमुद्र के दक्षिण किनारे पर अति पवित्र उत्तरकुरुवर्ष है, जहाँ देवलोक से गये हुए उत्तम पुरुष निवास करते हैं। यह देवलोक हिमालय के सिवा और कुछ नहीं है। आर्यलोग हिमालय से जाकर उत्तर समुद्र अर्थात् शीतकटिबंध के इस पार तक और साइबीरिया के उस पार तक कुरु देश में निवास करते थे। जिस प्रकार भारत में कुरुक्षेत्र था, उसी प्रकार उतनी दूर जाने पर भी उन्होंने कुरु नाम से ही उस देश को सम्बोधित किया था। आर्य लोग सदैव ही अपने साथ अपने अपने स्थानों के नाम ले गये हैं। उसी तरह उत्तरकुरु का नाम भी कुरु शब्द से ही रक्खा गया है।

+ Their original home was in Mongolia. Scythia is only corruption from Sakavastha or 'the abode of the Sakas' on the west bank of Kasyapia (Caspean) sea. Hence the Northern Sakasunu proceeded still more to the North-West and thus became the Saxons of Saxony. (Reproduced from 'मानवेर आदि जन्म भूमि पृष्ठ १३)

यहाँ तक हमने एशिया की उत्तरी सीमा को देखा, तो वहाँ सर्वत्र आर्यजनता को ही भारत से जा जाकर बसते हुए पाया। **परन्तु उत्तर कुरु से आगे जहाँ ध्रुवप्रदेश है, वहां आर्यलोग कभी नहीं जाते थे। वहाँ उनको यज्ञयाग करने का सुभीता नहीं था। वहाँ महा विकट अँधेरा था और वह आसुरी भूमि आर्य स्वभाववालों के लिए अनुकूल नहीं थी।** यही कारण है कि सुग्रीव ने वानरों को उत्तर तरफ रवाना करते समय कह दिया था कि तुम लोग उत्तरध्रुव में मत जाना। यह वैदिक आदेश था। क्योंकि वेदों में दीर्घरात्रि और उस रात्रि में पड़े हुए रोनेवालों के अलङ्कार से उपदेश दे दिया गया है कि वहाँ किसी को न जाना चाहिए। परन्तु वहाँ एक 'Navya Zimala' अर्थात् नव्य हिमालय का पता मिलता है, जिससे सूचित होता है कि कभी इरानियों के बुजुर्गों ने वहाँ जाकर उपनिवेश बसाया था। उनकी भाषा में संस्कृत के 'ह' का 'ज़' हो जाता है, इसीलिए प्रतीत होता है कि 'नव्य ज़िमालय' नाम उन्हीं ने रक्खा है और पुराने हिमालय के साथ मिलाया है। यदि वैदिक आर्य नाम रखते, तो 'नव्य हिमालय' ही रखते। इस नव्य जिमालय को उर्दू ज्योग्रफी में 'नवज़ुमला' लिखा हुआ है। इसका वर्णन इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका में भी आया है+।

आइसलैंड और ग्रीनलैंड यद्यपि योरप से उत्तर की ओर हैं, पर वहाँ के बाशिन्दों का संबंध आर्यों से ही है। अतः कुरु के इन पड़ोसी देशों का भी वर्णन कर देना चाहिए। इसके विषय में प्रोफेसर हीर्ट नामक विद्वान कहता है कि आइसलैंड और ग्रीनलैंड के निवासियों की भाषा जर्मन भाषा से मिलती है। अतः अनुमान होता है कि ये भी आर्य ही हैं। हमने इन लोगों के विषय में अधिक स्वाध्याय नहीं किया। संभव है ये योरप से गये हों। पर चूंकि योरप की प्रजा स्वयं आर्यों की भाषा बोलनेवाली भी निग्रो, तुरानी प्रजा है, इस से अनुमान होता है कि आइसलैंड और ग्रीनलैंडवाले भी निग्रो, तुरानी ही होंगे, जो निश्चय ही पतित आर्य हैं।

यहाँ तक हमने उत्तरी एशिया से सम्बन्ध रखनेवाले उन आर्यों का वर्णन किया, जिन को इस समय मंगोलिया या तुरानी टाइप के कहा जाता है। पर हमारे अब तक के विवेचन से यही ज्ञात होता है कि वे **आर्य ही हैं। उनकी सभ्यता, भाषा, रूप और रंग बदल जाने से अब उनको चाहे जो कुछ कहा जाय, पर उनके मूल में आर्यों का ही रुधिर प्रवाहित है।**

पूर्वी एशिया।

भारतवर्ष से पूर्व सबसे नज़दीक जो पहिला देश है, वह बर्मा है। इसको संस्कृत में ब्रह्मदेश कहते हैं। वामनपुराण में लिखा है कि तिब्बत में रहनेवाले असुरों के द्वारा सताये जाने पर पूर्वकथित पीतवर्ण कुछ आर्य ब्रह्मदेश में जाकर आबाद हुए। ये असुर भी कोई दूसरे

+ The original people of the farthest north of Europe are now represented by the Lapps, who lead a migratory life. further east their place is taken by the Somoyedes, who live along the coast of the karases and the Yalmal Peninsula. They have also a small settlement in Nevya Zemla. (Encyclopaedia Britannica).

नहीं थे । वायुपुराण में लिखा है कि असुर आर्यों के दायाद बान्धव ही हैं * । दायाद बान्धव उन्हीं को कहते हैं, जिनका पैतृक सम्पत्ति में हक हो । इनके विषय में महाभारत में लिखा है कि जो कुरुक्षेत्र में बसते हैं, वही तिब्बत में बसते हैं + । इससे स्पष्ट हो गया कि ये आर्य ही हैं, जो पतित होकर तिब्बत में गये हैं । रामायण में इनका सुवर्ण का सा रंग लिखा है । वामनपुराण में इनका तिब्बत से ब्रह्मदेश का जाना भी पाया जाता है × । इससे ज्ञात होता है कि ये भी वही किरात नामी क्षत्री ही हैं, जो नैपाल से लेकर तिब्बत तक बसते थे । इन्होंने ही बर्मा में जाकर अमरावती और मिथला नामी नगरी बसायी हैं, जो अब तक हैं । इससे स्पष्ट हो जाता है कि ये आर्य ही हैं और उक्त नगरों के बसाते समय तक इनकी भाषा संस्कृत ही थी । इतना ही नहीं, प्रत्युत बुद्धधर्मप्रचार के समय भी ये हिन्दूधर्म के अभिलाषी थे, इसीसे ये सबके सब बौद्ध हो गये । ब्रह्मदेश नाम से भी ज्ञात होता है कि वह वैदिक आर्यों के ही द्वारा रक्खा गया है और ब्रह्मनिवासी आर्य ही हैं ।

चीन देश के विषय में लिखा जा चुका है कि आर्यों के प्रारम्भिक काल में ही कुछ लोग पतित होकर चीना (नीचे दर्जे के) हो गये थे और हिमालय से नीचे चीना—गहराई—में जा बसे थे । समस्त भाषाओं के एक ही व्याकरण के विषय में हम लिख आये हैं कि सामोयेडिक भाषा जो चीन देशान्तर्गत पैतिसी और ओब नदियों के किनारे पर बसनेवालों में बोली जाती है, उसमें आर्य भाषाओं की तरह तीन वचन और आठ विभक्तियाँ हैं । इससे पाया जाता है कि चीन में बसनेवाले मूल पुरुष आर्य ही थे । चीनियों के विषय में टाड हन्टर साहब ने अपने राजस्थान के इतिहास, परिशिष्ट, अध्याय दूसरे में इनके वंश का हाल लिखा है । उसका सारांश यह है कि '**मोगल तातार और चीनी लोग अपने को चन्द्रवंशी क्षत्री बतलाते हैं । इन में से तातार के लोग अपने को 'अय' का वंशज कहते हैं । यह अय पुरुरवा का पुत्र आयु ही है । इस आयु के वंश ही में यदु था और उसका पौत्र हय था । चीनी लोग इसी हय को ह्यु कहते हैं और अपना पूर्वज मानते हैं** । उक्त अय की नवीं पीढ़ी में एलखाँ के दो पुत्र हुए । उनके नाम काइयान और नगस थे । इसी नगस से नागवंश की उत्पत्ति प्रतीत होती है । चीनवालों के पास यू की उत्पत्ति इस तरह लिखी है कि एक तारे का समागम यू की माता के साथ हो गया । इसी से यू हुआ । यह बुध और इला के समागम की सी बात ज्ञात होती है । इस तरह से तातारों का अय, चीनियों का यू और पौराणिकों का आयु एक ही व्यक्ति है । इन तीनों का आदिपुरुष चन्द्रमा था और ये चन्द्रवंशी क्षत्री हैं, यह अच्छी तरह सिद्ध होता है' ।

चीनियों के आदि पुरुष के विषय में प्रसिद्ध चीनी विद्वान् यांगत्साई ने सन १५५८ में एक ग्रन्थ लिखा था । इस ग्रन्थ को सन् १७७६ में हूया नामी विद्वान् ने फिर सम्पादित किया । उसी पुस्तक का पादरी क्लार्क ने अनुवाद किया है । उसमें

* **असुरा ये तदा आसन् तेषां दायादबान्धवाः** । (वायुपुराण)

\+ **ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे त वसन्ति त्रिविष्टपे** । (महाभारत)

× **ततोऽसुरा यथाकामं विहरन्ति त्रिविष्टपे ।
ब्रह्मलोके च त्रिदशाः संस्थिता दुःखकर्षिताः** ॥ (वामनपुराण)

लिखा है कि 'अत्यन्त प्राचीन काल में भारत के मो० लो० ची० राज्य का आह० यू० नामक राजकुमार यून्नन प्रान्त में आया। इसके पुत्र का नाम ती० मोगंग था। इसके नौ पुत्र पैदा हुए। इन्हीं के सन्ततिविस्तार से समस्त चीनियों की वंशवृद्धि हुई है'। इसके अतिरिक्त चीन देश में होम (हवन) को ओम कहते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उनमें आर्यों का कर्मकाण्ड मुद्दत तक प्रचलित था। चीनवालों का भारत से इतना अधिक सम्बन्ध रहा है कि यहाँ से ब्राह्मण लोग धर्मप्रचार के लिए चीन को जाते थे और चीन-निवासी यहाँ आकर फिर से आर्यों के समाज में मिल जाते थे।

हिन्दी विश्वकोश पृ० ३१८ में उपनिवेश शब्द पर लिखा है कि 'चीन देश की पुरातत्त्व आलोचना से यह सिद्ध होता है कि ई० सन् पूर्व ८ वीं शताब्दी में भारतीय आर्य वणिकों ने चीन देश के बहुत से स्थानों में अपना प्रभाव फैलाया था और बहुतसे स्थानों में उपनिवेश भी किया था'। तभी तो दारुचीनी जिसे दालचीनी कहते हैं, वहीं से आती थी। दारु लकड़ी को कहते हैं, इसलिए एक खास प्रकार की चीन की लकड़ी को दारुचीनी कहा जाता था। यह लगभग तीन हज़ार वर्ष के पूर्व की बात है। परन्तु हमने चन्द्रवंश और आर्यभाषा की जो बात लिखी है, वह तो उस समय की है, जब सर्वप्रथम आर्य लोग 'चीनी' होकर चीन गये थे, इसलिए **चीनियों के आर्यवंशज होने में ज़रा भी सन्देह नहीं है।**

लोग कहते हैं कि जापान में जो जाति निवास करती है, वह चीन से ही जाकर वहां बसी है, क्योंकि दोनों की भाषा आदि में बहुत अन्तर नहीं है। यह बात ठीक है। पर हमारा अन्वेषण इतना और बतलाता है कि चीन की तरह जापान में भी अभी उस आर्यजाति की एक शाखा मौजूद है, जिसकी अन्य शाखाओं से जापानियों की उत्पत्ति हुई है। उस मूलवासिनी जाति का नाम 'एन्यू' है। इसको कांकेशियन विभाग के अन्तर्गत समझा जाता है×। एन्यू लोग अब तक प्राचीन ऋषियों के भेष से रहते हैं। अर्थात् डाढ़ी और केश नहीं निकालते। इसीलिए इनको आजकल Hairy Men अर्थात बालवाले लोग कहा जाता है। चाहे जापानी इन काकेशियन की सन्तती हों और चाहे चीनीयों की। दोनों सूरतों में वे आर्य क्षत्रिय ही हैं। जापानियों का 'बुशिडो' अर्थात् क्षात्रधर्म अब तक प्राचीन क्षत्रीयपने का स्मरण दिला रहा है। **एन्यू लोगों का प्रस्तुत होना, जापान की स्त्रियों में भारतीपन का होना और पुरुषों का क्षात्रधर्म आदि बातें एक स्वर से पुकार रहीं हैं कि वे आर्यवंशज ही हैं।**

दक्षिणी एशिया।

दक्षिणी एशिया पर कुछ लिखने के पूर्व दक्षिण भारत में आबाद द्राविड़ जाति की उत्पत्ति का विवरण विस्तारपूर्वक हो जाना चाहिए। क्योंकि पाश्चात्यों और उनके द्वारा शिक्षा पाये हुए कतिपय एतद्देशीय विद्वानों का मत है कि भारतवर्ष के मूलनिवासी कोल और

× Ainus - An aberrant family of Caucasic man in the Far East. They were probably the aboriginal inhabitants of Japan, but are now few in number and confined to Yezo, the kurile Islands, and part of Sakhalin. (Harmsworth History of the World, p. 312).

द्रविड ही हैं। आर्यलोग तो यहाँ कहीं बाहर से आकर आबाद हुए हैं। यहाँ के स्वामी कोल और द्रविड ही थे, पर आर्यों ने यहाँ आकर उनको युद्धों में परास्त करके जंगलों में भगा दिया, आप राजा हो गये और मूलनिवासियों को दास, दस्यु, राक्षस, असुर और यातुधान आदि नामों से पुकारने लगे। ये विद्वान् अपने इस आरोप की पुष्टि में कहते हैं कि—

(१) वेदों में आर्य और दस्यु दो जातियों का वर्णन है। (२) दस्युओं के श्याम वर्ण और उनकी म्लेच्छ भाषा का वर्णन है। (३) उनके साथ युद्धों का वर्णन है और (४) यहाँ के मूलनिवासी कोल, भील, संथाल, नट, कंजर और द्रविडों में श्याम वर्ण और अनार्य भाषा पाई भी जाती है। अतएव यह समस्त वर्णन उन्हीं के लिए है।

हम देखते हैं कि इन वर्णनों और अवलोकनों से उपर्युक्त आरोप को सहारा मिलता है। अतएव इस बात के जाँचने की आवश्यकता है कि यह आरोप और ये प्रमाण परस्पर कितने सहायक हैं। सबसे पहिले हम देखना चाहते हैं कि—

(१) आर्यों के बाहर से आने और उनके पूर्व यहाँ के मूलनिवासियों के विषय में क्या क्या प्रमाण हैं? (२) दस्युओं के रूप, रंग, भाषा और युद्धों का वेदों में क्या उल्लेख है? और (३) मूलनिवासियों की मौलिकता का क्या रहस्य है? इन तीन ही वाक्यों में समस्त जिज्ञासा भरी हुई है। इन सब में पहिला प्रश्न यह है कि क्या आर्यलोग बाहर से आये?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए आर्यजाति का साहित्य ही आदरणीय हो सकता है। क्योंकि यह बात सर्वमान्य हो चुकी है कि आर्यों के वैदिक साहित्य (वेद) से पुराना साहित्य आर्यों की किसी शाखा के पास नहीं है। अतः हम सबसे प्रथम यही देखना चाहते हैं कि आर्यों ने अपने साहित्य में भारत आगमन के विषय में खुद क्या लिख रक्खा है। **आर्यों ने अपने इतिहास में कहीं नहीं लिखा कि वे कहीं बाहर से आये।** आर्यों को विदेशी सिद्ध करनेवाले विद्वानों में मि० मूर प्रसिद्ध हैं। आप आर्यसाहित्य को अर्से तक उलटने पलटने के बाद हताश होकर लिखते हैं कि **'जहाँ तक मुझे ज्ञात है संस्कृत की किसी पुस्तक से अथवा किसी प्राचीन पुस्तक के हवाले से यह बात सिद्ध नहीं होती कि भारतवासी किसी अन्य देश से आये' +।**

आर्यों के साहित्य से न सही मूलनिवासियों की ही किसी कथा से यह बात सिद्ध होती कि आर्यलोग कहीं बाहर से आये और उनको जंगलों में निकाल दिया। परन्तु यह बात भी अब तक किसी ने नहीं ढूँढ निकाली। इसके अतिरिक्त यदि आर्यों के पहिले कोल और द्रविड यहाँ के मूल निवासी होते, तो उनकी भाषा में इस देश का कुछ नाम अवश्य होता। पर अनार्यों की भाषा मे आर्यावर्त और भारतवर्ष नाम के पहिले का कोई भी नाम नहीं मिलता।

+ That so far as I know none of the Sanskrit, not even the most ancient, contain any distinct reference or allusion to the foreign origin of the Indians. (Muir's Sanskrit Text Book, Vol. 11, p. 323).

इससे तो यह बात बिलकुल ही उड़ जाती है कि यहाँ आर्यों के पूर्व कोल और द्रविड रहा करते थे। कुछ समय से पढ़े लिखे द्रविडों ने अपना कुछ इतिहास लिखना शुरू किया है। परन्तु उन्होंने अपना इतिहास किन्हीं अनार्य नामों से आरम्भ न करके अगस्त्य और कण्व आदि ऋषियों के चरित्रों से ही आरम्भ किया है। अगस्त्य और कण्व निःसन्देह आर्य नाम है। इतिहास के मूल में इन नामों के होने से तो यह बात बिलकुल ही स्पष्ट हो जाती है कि द्रविडों के पूर्व भी यहाँ आर्य ही निवास करते थे। इस विषय पर एक द्रविड पण्डित मद्रास प्रांत से लिखते हैं कि द्रविडों की भाषा, रूप, विश्वास, धर्म और इतिहास से मुझको पूर्ण संतोष हो गया है कि वे लगभग ५०० वर्ष इस्वी सन् पूर्व पश्चिमी एशिया के समुद्र पार से यहाँ आये। यह एक पढ़े लिखे द्रविड जाति के आधुनिक विद्वान् की राय है। सभी जानते हैं कि बुद्ध भगवान् के जन्म का संवत् ईस्वी सन् से पूर्व छटी शताब्दी है। उस समय से हज़ारों वर्ष पूर्व तक आर्यों के यहाँ बसने का प्रमाण मिलता है। परन्तु उपर्युक्त द्रविड विद्वान ने स्पष्ट ही कह दिया है कि द्रविड लोग ईस्वी सन् से ५०० वर्ष पूर्व बाहर से आये। ऐसी दशा में द्रविडों के मत से भी आर्य लोक द्रविडों से पूर्व यहाँ बसे हुए पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त आर्यों की किसी भिन्न शाखा ने भी स्वीकार नहीं किया कि वैदिक आर्य हमसे जुदा होकर भारत को गये। कहने का मतलब यह कि संसार में इस प्रकार का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है, जिसमें लिखा हो, या कहा जाता हो कि आर्य लोग भारत में कहीं बाहर से आये। इसके विरुद्ध वैदिक आर्यों ने अपने प्राचीनतम इतिहास में लिखा रक्खा है कि ब्रह्मावर्त के जंगलों को काटकर सबसे प्रथम हमने ही आबादी की है।

द्वितीय खण्ड में हम लिख आये है कि आर्यों की उत्पत्ति हिमालय के 'मानस' स्थान पर हुई। बहुत दिन तक आर्य लोक हिमालय पर ही रहे। संततिविस्तार के कारण उन्होंने हिमालय से नीचे उतरकर भूमी तलाश की। जिस रास्ते से वे आये उस रास्ते का नाम उन्होंने हरद्वार (हर=हिमालय और द्वार=दरवाज़ा) अर्थात् हिमालय का दरवाज़ा रक्खा। यहाँ आकर वे कुछ दिन तो रहे, पर जंगली जल वायु के कारण सब रोगी हो गये और फिर अपने पूर्वनिवास हिमालय को चले गये *। परन्तु कुछ समय बाद वे यहाँ फिर आये। अब की बार उन्होंने यहाँ के जंगलों को काटकर देश को बसनेयोग्य बनाया और हरद्वार, कुरुक्षेत्र अर्थात् सरस्वती नदी से लेकर पूर्व की गण्डकी नदी (जिसको सदानीरा और दृषद्वती कहते है), तक जंगलों को जलाकर आबादी की × और इस आबाद भूमि का नाम ब्रह्मावर्त रक्खा +। इसके आगे के देश का नाम विदेह हुआ, जिसका अर्थ शरीर-शून्य अर्थात् निर्जन है ÷।

---

* दोषं मत्वा पूर्वनिवासं हिमवंतं जग्मुः। (चरकसंहिता)

× तर्हि विदेघो माथव आस। सरस्वत्यां स तत एव प्राङ् दहन्न भीयायेमां पृथिवीं तं गोतमश्च राहूगणो विदेघश्च माथवः पश्चाद्दहन्तमन्वीयतुः। स इमाः सर्वा नदीरतिददाह, सदानीरेत्युत्तराद् गिरेः निर्धावति तां हैव नातिददाह तां ह स्म तां पुरा ब्राह्मणा न तरन्त्य-नतिदग्धाद्दैना वैश्वानरेणेति। (शतपथ ब्राह्मण १।४।३।१४)

+ सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते। (मनुस्मृति)

÷ एतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा। (शतपथ १।४।३।१७)

इस इतिहास से ज्ञात होता है कि इसके पूर्व यहाँ कोई निवास नहीं करता था। यदि आबादी होती, तो जंगल न जलाने पड़ते और देशों का नाम विदेह न रखना पड़ता। जिन दस्युओं को मूलनिवासी कहा जाता है, वे युद्ध करना जानते थे, उनके बड़े बड़े नगर थे। क्योंकि **'असुरः पुरो प्रकुर्वीत'** शतपथ में लिखा हुआ है। वे व्यापारी थे और जहाज़ चलाना भी जानते थे। ऐसे लोगों ने जंगलों में ही निवास रक्खा हो, यह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। क्योंकि कोल, भील तो जंगल काटने में अब तक बड़े प्रबल होते हैं। परन्तु आर्यों के उपर्युक्त वर्णन से पाया जाता है कि आर्यों के पूर्व किसी के बसने लायक स्थान ही न था। इस तरह से न तो यहाँ आर्यों के पूर्व किसी के बसने का पता मिलता है और न यहाँ कोई पराजित या विजित ही था। पाश्चात्य विद्वानों की इस ऊलजलूल थियरी का तीव्र प्रतिवाद करते हुए प्रसिद्ध विद्वान् नैसफिल्ड साहब लिखते हैं कि **'भारतीयों में आर्यविजेता और मूलनिवासी जैसे कोई विभाग नहीं हैं। ये विभाग बिलकुल आधुनिक हैं। यहाँ तो समस्त भारतीय जातियों में अत्यन्त एकता है। ब्राह्मणों से लेकर सड़क झाड़नेवाले भंगियों तक का रूप, रंग और रक्त एकसमान ही है'**+।

हमने यहाँ तक यह दिखलाने का यत्न किया कि इस देश में न तो आर्यों के पूर्व कोई मूलनिवासी नाम के कोल, द्रविड आदि ही रहते थे और न आर्यों के साहित्य से आर्यों का बाहर से आना ही सिद्ध होता है। इसी तरह न मूलनिवासियों की किसी कथा या नाम से ही सिद्ध होता है कि आर्य बाहर से आये और कोल, भील, द्रविड यहाँ के मूलनिवासी थे। और न इस बात को आर्यों की किसी अन्य शाखा ने ही स्वीकार किया है कि हमारा एक दल भारत को गया। जब यह हाल है, तब फिर नहीं मालूम होता कि संसार भर के प्रमाणों के विरुद्ध किस आधार से कहा जाता है कि आर्य लोग कहीं बाहर से आये और यहाँ के मूलनिवासी कोल और द्रविड ही हैं? इसलिए पाश्चात्यों का यह आरोप कि आर्य लोग बाहर से आये बिलकुल निराधार है। इसी तरह यह भी निराधार है कि आर्यों के पूर्व यहाँ कोल और द्रविड रहते थे। इसके बाद अब हम इस प्रश्न का उत्तर ढूँढते हैं कि दस्युओं के रूप, रंग, भाषा और युद्धों का वेदों में क्या उल्लेख है।

एक शख्स ने प्यार करते करते अपने बच्चे को कहा कि यह बड़ा शैतान है। इस बात पर पास बैठे हुए उनके दोस्त ने कहा कि जी हाँ, इसका वर्णन तो बाइबल और क़ुरान में भी आया है। जो बात इस मज़ाक में दिखलाई पड़ती है, ठीक वही बात वेदों में दस्यु आदि शब्द देखकर कोल, भीलों के लिए बताई जाती है। किंतु वेदों को गौर से पढ़ने वाले इस बात से इनकार करते हैं। वेदों में आये हुए दस्यु आदि शब्दों पर मिस्टर मूर

+ There is no division of the people as Aryan conquerors of India and the aborigins of the country; that division is modern and that there is essential unity of the Indian races. The great majority of Brahmins are not of lighter complexion or of finer or better red features than any other caste, or distinct in race and blood from the scavengers who swept the road. (Brief View of the Caste System of the North--West Provinces and Oudh, p. 27.)

लिखते हैं कि "मैंने ऋग्वेद के दस्यु या असुर आदि नामों को इसलिए पढ़ा कि वे अनार्यों के हैं, या मूलनिवासियों के। परन्तु मुझको कोई भी नाम न मिला, जो इस प्रकार का हो' ×। इसी तरह प्रो० मैक्समूलर कहते हैं कि 'दस्यु का अर्थ केवल शत्रु है'+। ए० रागोज़िन कहते हैं कि 'दस्यु का अर्थ केवल लोग है और ईरानियों की अवस्था पुस्तक में उनका दह्यु शब्द इसी अर्थ में आया है*। जन्दावस्था के इस प्रमाण से रागोज़िन ने सिद्ध कर दिया कि ईरानी लोग अपने ईरानी लोगों को ही दह्यु अर्थात् दस्यु कहते थे। मैक्समूलर ने स्पष्ट कर दिया कि दस्यु दुश्मन को कहते हैं। मतलब यह हुआ कि चाहे अपनी जाति का हो अथवा दूसरी जाति का, जो द्वेष करने योग्य है, वही दस्यु है। यदि ऐसा न होता तो ईरानी लोग अपनी ही जाति को दह्यु न कहते। क्योंकि उनके यहाँ तो कोई श्याम वर्ण और भिन्न भाषाभाषी था ही नहीं।

भाषा के विषय में जो वर्णन वेद में आये हैं, वे भी मूलनिवासियों की भाषा के लिए नहीं हैं। वेदों में आये हुए **'मृध्रवाचा'** आदि शब्द, जिनको अनार्यों की भाषा कहा जाता है, जाँच से सिद्ध नहीं होते कि वे अनार्यों की भाषा के लिए आये हैं। मिस्टर मूर कहते हैं कि **'मृध्रवाचा' से अनार्यों की भाषा किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होती**†। इसी प्रकार श्याम वर्ण का वर्णन भी अनार्यों की त्वचा के लिए नहीं आया। प्रो० रॉथ अपने कोष में लिखते हैं कि **कृष्णगर्भा** और **कृष्णयोनि** आदि शब्द कृष्ण मेघ के लिए आये हैं, जो काला ढक्कन है। यही अभिप्राय ए० मारनीरन के लेख का भी है÷। बाबू अविनाशचन्द्र दास कहते हैं कि जिस प्रकार एक अँगरेज़ किसी डाकू अँगरेज़ को **'ब्लैक गार्ड'** कहता

× I have gone over the names of the Dasyus or Asuras mentioned in the Rigved with the view of discovering whether any of them could be regarded as of non-Aryan or indiginous origin, but I have not observed any that appear to be of this character. (Sanskrit Text Book; Vol. II, p. 387)

+ Dasyu simply means enemy.(Last Results of the Turanian Research, p. 344.)

* Dasyu meaning simply people, a meaning which the word under the Iranian form 'Dahyu retain all' through the Awastha and Akhaeminian Inscription. (Vedic India, p. 113.)

दह्यु शब्द दस्यु का अपभ्रंश है। क्योंकि संस्कृत का 'स' ज़ेंद भाषामें 'ह' हो जाता है, जैसे सप्त का हप्त और मास का माह आदि।

† In any case, the sense of the word **'मृध्रवाचा'** is too uncertain to admit of our referring it with confidence to any peculiarity in the speech of the aborigines. (Sanskrit Text Book, p. 378.)

÷ Etude Sur l' Idiome Deo Vedas, p. 154.

है, उसी तरह श्याम वर्ण का वर्णन, जो आर्यों ने अपने एक दल के लिए किया है, वह उपमा काले बादलों से ही आई है, जिसे वे वृत्र की खाल कहते हैं * ।

इस छानबीन से यह पता लग गया कि वेदों में आये हुए **कृष्णयोनि** और **मृध्रवाचा** आदि शब्द मूलनिवासीयों के लिए नहीं प्रयुक्त हुए । उलटा यह सिद्ध हो रहा है कि **वेदों में श्याम त्वचा, मृध्रवाचा और दस्यु आदि शब्द बादलों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। और युद्धों के वर्णन इंद्र और वृत्र के हैं, जो वास्तव में विद्युत् सूर्य तथा मेघों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं** । यहाँ दस्यु और वृत्र आदि शब्दों पर विचार कर लेने से ही यह सारी उलझन सुलझ जायगी ।

वेद के पढ़नेवाले जानते हैं कि वेदों में इंद्र और वृत्र का वर्णन बहुतायत से आता है । यह वर्णन युद्ध के रूप में भी आता है । हम चाहते हैं कि यहाँ पर थोड़े से वेदों के वे वाक्य, जिनमें इंद्र, वृत्र, दस्यु, मृध्रवाचा, कृष्णयोनि आदि शब्दों की व्याख्या की गई है, लिख दें । जिससे स्पष्ट हो जाय कि यह सब वर्णन पृथिवी के ऊपर का नहीं है । ऋग्वेद में एक सूक्त सिर्फ इसलिए आता है कि जिससे इंद्र का वास्तविक स्वरूप समझ में आ जाय । इस सूक्त का नाम '**स जनास इंद्रः**' है । इसके आवश्यक अंश इस प्रकार हैं –

यो जात एव प्रथमः । यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् । यो अन्तरिक्षं विममे यो द्यामस्तभ्नात् । यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् । यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान । यो दासं वर्णमधरं गुहाकः । यस्याश्वासः प्रदिशि । यः सूर्यं य उषसं जजान । यो अपां नेता । यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव । यो दस्योर्हन्ता । यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं । यो अहिं जघान । यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान । यो वज्रहस्तः···स जनास इंद्रः । (ऋ० २ | १२)

अर्थात् जो सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ, जो पृथिवी को कंपायमान करता है, जो पर्वतों अर्थात् बादलों को कुपित करता है, जो अन्तरिक्ष में है, जो द्यौ को रोके हुए है, जो बादलों को मारकर सातों किरणों को मुक्त करता है, जो बादलों में अग्नि उत्पन्न करता है, जो बादलों को नीचे गिराता है, जिसकी किरणें सब दिशाओं में फैली हैं, जो सूर्य और ऊषा को उत्पन्न करता है, जो जलों का नेता है, जो संसार का पैमाना है, जो दस्युओं–बादलों को मारनेवाला है, जो शंबर को पर्वतों–बादलों–पर छिन्न भिन्न करता है, जो बादलों को मारता है और जो वज्रहस्त है, उसे हे मनुष्यो ! इंद्र समझो ।

अब विचार करके देखना चाहिए कि क्या यह उपर्युक्त इंद्र कोई पृथिवी का देहधारी राजा है या आकाशीय सर्वप्रधान शक्ति है ? यदि यह आकाशीय शक्ति है, तो फिर यह आकाशीय पदार्थों को ही मारता है और उन्हीं के साथ युद्ध करता है । ऊपर के पर्वत,

* Just as an Englishman would call an English robber or swindler a black guard, the analogy of the 'black skin' was possibly drawn by the Rigvedic Aryans from the colour of clouds which was regarded as the body demon, Vritra.

(Rigvedic India, p. 123)

अहि, दास, दस्यु, शम्बर आदि शब्द सब आकाश के ही पदार्थ हैं। निघण्टुमें ये सब नाम बादलों के ही लिए आये हैं। इंद्र के ही लिए वेदमें और भी वर्णन देखने योग्य है। एक जगह लिखा है कि—

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः। वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥
वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत्। सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥ ३ ॥
(ऋ० ८।७६।२–३)

अर्थात् इस मरुत् के सखा इन्द्र ने वज्र से वृत्र के शिर के सौ टुकड़े कर दिये। हे मरुत के सखा इन्द्र! वृत्र को मारकर समुद्र के जलों को उत्पन्न कीजिये। यहाँ स्पष्ट हो गया कि इन्द्र मरुतों अर्थात् हवाओं का सखा है, जो बादलों को मारकर समुद्र बनाता है। ऋग्वेद ८ | २५ | ४ में स्पष्ट कह दिया है कि '**महान्ता मित्रा वरुणा सम्राजा देवावसुरा**' अर्थात् मित्र और वरुण दोनों देवों और असुरों के राजा हैं। मित्र सूर्य है और सभी जानते हैं कि वरुण जल का स्वामी है। सूर्य देवों का राजा और वरुण असुरों का राजा है। ऐसी दशा में वह वरुण बादलों के सिवा और क्या हो सकता है? ऋग्वेद में स्पष्ट लिखा है कि—

इन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत्। (ऋ० १०।२३।२)
वृत्रहणं पुरन्दरम्। (ऋ० ६।१६।१४)
यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः। (ऋ० २।१२।१०)

अर्थात् इन्द्र ही मघवा वृत्र के मारनेवाला हुआ। वृत्र का मारनेवाला ही पुरन्दर है और जो दस्युको मारनेवाला है, वही इन्द्र है। यहाँ वृत्र और दस्यु शब्द एक ही पदार्थके वाचक हैं। इन्द्र और दस्यु शब्द पर मेक्समूलर कहते हैं कि 'तब इन्द्र की स्तुति की जाती है, क्योंकि उसने दस्युओं का नाश किया और आर्य रङ्गों की रक्षा की' ×। हम पहिले ही लिख आये हैं, कि मेक्समूलर दस्यु को शत्रु कहते हैं और मिस्टर मूर कहते हैं कि वेदों में अनेक प्रमाण हैं जिनमें वृत्र का शत्रु कहा गया है। + इससे मालूम हुआ कि वृत्र और दस्यु एक ही पदार्थ हैं। दस्यु शब्द की निरुक्ति करते हुए यास्क कहते हैं कि '**दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थादुपदस्यन्त्यस्मिन् रसा उपदासयति, कर्माणि**' अर्थात दस्यु शब्द क्षयार्थक 'दस्' धातु से बना है। अतः जो रसों का क्षय करता है और यज्ञों को नष्ट करता है, वही दस्यु है। संसारके सब रस खिंचकर बादलों में ही जाते हैं, इसलिए सच्चे दस्यु बादल ही हैं। इसी तरह वृत्रों की निरुक्ति में यास्काचार्य कहते हैं कि '**तत्र को वृत्रः मेघ इति नैरुक्ताः**'। अर्थात् वृत्र कौन है? उत्तर देते हैं कि नैरुक्तों के मत से मेघ ही वृत्र है। इसीलिए ऋग्वेद में आया है कि '**इन्द्रो यो दस्यून् अधरानवातिरत्।**' अर्थात् जो इन्द्र दस्युओं को नीचे गिराता है। अर्थ स्पष्ट हो गया कि

× When Indra is praised because he destroyed the Dasyus and protected the Aryan colour.
(Last Results of the Turanian Research, p. 344)

+ And yet there are many passages in which the word, Vritra, has the signification of enemy in general.
(Muir's Sanskrit Text Book, Vol. II, p. 389)

इन्द्र अर्थात् विद्युत् या सूर्य ताडन के द्वारा बादलों को नीचे गिराता है। यही आर्य और दस्युओं का युद्ध है और नीचे गिराना ही दस्युओं को भगा देना है। तथा बादल ही कृष्णयोनि हैं और वही मृध्रवाचा बोलनेवाले हैं। ऋग्वेद २।२०।७ में लिखा है कि '**स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनिः**' अर्थात् वृत्र ही निश्चयपूर्वक कृष्णयोनि है और '**दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः**' (ऋ० १।१७४।२) अर्थात् इन्द्र ही वृत्र में घुसकर मृध्रवाचा बोलता है। मतलब यह है कि काले बादल कृष्णयोनि हैं और बादलों में विद्युत् की गडगडाहट ही मृध्रवाचा है।

वेदों में आया हुआ इंद्र और वृत्र का अलङ्कार ही देव और असुर तथा आर्य और दस्यु के संग्राम के नाम से प्रसिद्ध है। आर्यों का विश्वास है कि उन्होंने संसार में जितने पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया है, उनका नाम वेद शब्दों से ही रक्खा है। प्रकाश के विरुद्ध आनेवाले बादलों को जिस प्रकार वेद ने दस्यु कहा है, उसी प्रकार श्रेष्ठ आर्यों से विरोध करनेवालों को भी दस्यु कहा है। इसीलिए आर्यों ने वेदों से नामकरण की यह सच्ची कुञ्जी पाकर अपनी जाति को दो भागों में बाँट दिया। क्योंकि यजुर्वेद में लिखा है कि '**विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः**।' अर्थात् आर्य और दस्यु को अलग जानो। दस्यु का लक्षण करते हुए वेद ने बताया है कि—

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम्। (ऋ.८।७०।११)

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः। (ऋ० १०।२२।८)

अर्थात् कर्महीन—यज्ञहीन, अविचारी—अनीश्वरवादी अमानुषों को दस्यु समझना चाहिए। इनके विरुद्ध आर्य का लक्षण करते हुए निरुक्तकार कहते हैं कि '**आर्य ईश्वरपुत्रः**' अर्थात् आर्य परमेश्वर के पुत्र हैं। तात्पर्य यह कि जैसे बादल सूर्य के प्रकाश को रोककर अन्धकार फैलाते हैं, वैसे ही अनार्य—दस्यु—भी आर्यों के श्रेष्ठ कर्मों में विघ्न करते हैं और जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रखर किरणों से बादलों को नष्ट करते हैं, वैसे ही आर्य भी दुष्टों का दमन करते हैं। इसीलिए आर्य ईश्वरपुत्र कहलाते हैं। वेद की इस अलंकृत शिक्षा के द्वारा ही प्राचीन आर्यों ने **अपनी जाति के भीतर ही दुष्ट स्वभाव के मनुष्यों को अनार्य कहा है। दस्यु कहा है और उत्तम स्वभाववालों को आर्य कहा है।**

वेदों में इतिहास माननेवाले भी स्वीकार करते हैं कि सुदास, दिवोदास और त्रिसदस्यु आदि राजे आर्य ही थे। पारसी भी अपने गोल में ही दस्युकी कल्पना करते थे। अतः इसका यह अर्थ नहीं है कि दस्यु कोई दूसरी जाति थी। वेदों में किसी जाति का दस्यु नाम से वर्णन नहीं है, न आर्यों के पूर्व यहाँ किसी मूलनिवासिनी जातिका पता मिलता है। इसलिए दूसरा प्रश्न भी निराधार ही सिद्ध होता है। इतना वर्णन कर चुकने के बाद अब आगे तीसरे प्रधान प्रश्न पर विचार करते हैं कि मूलनिवासियों की मौलिकता का क्या रहस्य है।

मूलनिवासियों की मौलिकता का रहस्य।

जब से यह बात सिद्ध हो गई है कि, द्रविड लोग बाहर से आकर आबाद हुए है और उनकी आबादी का समय बहुत ही न्यून है, तब से पाश्चात्यों ने मूलनिवासियों के दो विभाग कर दिये हैं। इन दोनों विभागों में एक का नाम कोलारियन विभाग है और दूसरे का द्रविडियन। कोलारियन विभाग को द्रविडियन विभाग से पृथक् मानते हुए भी दोनों को

न तो वे लोग स्पष्ट रीति से जुदा करते हैं और न एक में ही मिलाते हैं। कुछ समय पूर्व वे दोनों दलों को एक ही मानते थे और दोनों को मूलनिवासी अर्थात् 'एबॉरिजिनीज़' कहते थे। परन्तु अब मूलनिवासियों के दो विभाग मानते हैं। हम यहाँ देखना चाहते हैं कि, क्या कोलारियन और द्रवीडियन एक ही दल के हैं, या पृथक् पृथक्? साथ ही यह भी देखना चाहते हैं कि इन दोनों दलों की असलियत क्या है?

मिस्टर हॉजसन, कर्नल डालटन और मिस्टर क्लाडवेल आदि विद्वानों ने द्रविडों और कोलों की भाषा, रूप, रंग और उनकी जाति विभाग के विषय में बड़ी खोजें की हैं। बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे हैं और उनमें अपना मत प्रकट किया है। यहाँ हम मिस्टर क्लाडवेल के ग्रन्थ से इस विषय के प्रमाण उपस्थित करते हैं कि द्रविड और कोल एक ही जाति की दो सभ्य असभ्य शाखाएँ हैं। मिस्टर क्लाडवेल कहते हैं कि द्रविड भाषाओं के १२ विभाग हैं—

परिमार्जित विभाग	अपरिमार्जित विभाग
१ तामिल	१ तूदा
२ मलयालम्	२ कोटा
३ तेलुगू	३ गोंड
४ कनाड़ी	४ खोंड या कू
५ तूलू	५ उराँव
६ कुडग (कुर्ग)	६ राजमहाल

तूदा, कोटा, गोंड और कू आदि भाषाएँ यद्यपि असभ्य और असंस्कृत हैं, तथापि निस्सन्देह तामिल, कनाड़ी और तेलगू के समान द्रवीडियन हैं। उसी सिलसिले में राजमहाल और उराँव मिली हैं। तो भी मैं उनको द्रवीडियन विभाग में रखता हूँ *

---

* The idioms which I designated as Dravidian are twelve in number exclusive of the Brahvi. They are as follows—

Cultivated Dialects.	Uncultivated Dialects.
1. Tamil	1. Tuda
2. Malyalam	2. Kota
3. Telugu	3. Gond
4. Canarese	4. Khond or ku
5. Tulu	5. Oraon
6. Kudagin (Coorg)	6. Rajmahal

Tuda, Kota, Gond and Ku, though rude and uncultivated, are undoubtedly to be regarded as essentially Dravidian dialects equally with the Tamil, the Canarese and Telugu. I feel some hesitation in placing in the same category the Rajmahal and the Oraon, seeing that they appear to contain so large an admixture of roots and tongues, probably the Kolarian. I venture, however, to classify them as in the main Dravidian.

(Comparative Grammar of Dravidian Languages)

उराँव भाषा के लिए मिस्टर हॉजसन का ख्याल है कि वह द्रविड और कोल भाषा के बीच की कड़ी है* । कर्नल डाल्टन इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि 'द्रविड तत्त्व बंगाल के निवासियों तक फैला हुआ है'+ ।

इन वर्णनों से यहाँ यह स्पष्ट हो गया कि **कोल भील और बंगाल के संथालों से लेकर दक्षिण के समस्त द्रविड एक ही जाति के लोग हैं और एक ही मूलभाषा की शाखाओं को बोलते हैं** । यही नहीं, प्रत्युत विद्वानों की खोज से यह भी सिद्ध हो गया है कि **यहाँ के कोलों और द्रविडों से लेकर लंका, मेडेगास्कर, अफ़रीका और आस्ट्रेलिया तक जितने लोग इथिओपिक विभाग के हैं, सब एक ही भाषा बोलते हैं और सब एक ही जाति के हैं** ×। इथिओपिक विभाग की पहिचान श्याम रंग, घुँघराले बाल, चौड़ी खोपड़ी और तंग जबड़ा है* । यह विभाग उक्त समस्त विभागों को एक में जोडता है ।

---

* The Oraon was considered by Mr. Hodgson as a connecting link between the Kol dialects and the distinctively Tamilian family. (Comparative Grammar of Dravidian Languages, p. 49)

\+ Colonel Dalton carries the Dravidian element still further than I have ventured to do. He says (Ethnology of Bengal, p. 243) the Dravidian element enters more largely into the composition of the population of Bengal than, in general, supposed. (ibid, p. 41)

× Whilst the base of this pronoun seems to be closely allied to the corresponding pronoun in Tibetian and in the Indo-Chinese family generally, the manner in which it is pluralised in the Australian dialects bears a marked resemblance to the Dravidian and especially to Telugu. (ibid, p. 78)

Some resemblance may be treated between the Dravidian languages and the Barnu or rather the Kanari, one of the languages spoken in the Barnu country in Central Africa.

Even this, however, as has been shown, is common to the Dravidian with Brahvi, Chinese, the languages of the second Behistan tables and the Australian dialects. (ibid, p. 80)

* Ethiopic-One of the four great divisions of the human races, occupying Africa, Australia and many islands of Eastern Ocean. Its members are typically black skinned and wooly haired with projecting jaws and broad skull.

(Harmsworth History of the World, p. 326)

ऊपर के वर्णन में यह स्पष्ट दिखलाई पड़ता है कि कोल और द्रविडों की कड़ियाँ जुड़ी हुई हैं। मध्यप्रान्त का गेजेटियर भी इसी परिणाम पर पहुँचा है। यही नहीं, प्रत्युत भारतवर्ष का प्राचीनतम इतिहास भी यही कहता है कि आन्ध्र, द्रविड़, शबर और किरात आदि सब एक ही हैं। हम यहाँ मिस्टर क्राडवेल की एक तहकीकात दर्ज करते हैं। वे कहते हैं कि 'ऊपर कही हुई द्रविड भाषाओं की फेहरिस्त में मैंने मुन्डा, हो, कोल और शबर भाषाओं को नहीं रक्खा, जो कोलारियन भाषाएँ हैं' +। क्राडवेल शबर जाति को कोलारियन विभाग में गिनते हैं। अब हम दिखलाना चाहते हैं कि द्रविड और शबर एक ही जाति के हैं।

कोलों और द्रविडों को एक ही समुदाय के बनानेवाले और दोनों की मौलिकता का पता देनेवाले प्रमाण आर्यजाति के प्राचीनतम ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। हम ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण से लिख आये हैं कि विश्वामित्र आर्य राजा और ऋषि थे। उनके एक सौ पुत्र (शिष्य) थे। उनमें पचास लड़के दुष्ट हो गये और प्रजा को दुःख देने लगे। विश्वामित्रने उनको आर्यसमाज से निकाल दिया। वही सब आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द आदि हो गये और दस्यु कहलाने लगे ×। मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मणों के न मिलने से वृषल हुई क्षत्रिय जाति बाहर निकाल दी गई, जो औण्ड्र, द्रविड, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश नाम से प्रसिद्ध हो गई †। ये दोनों ऐतिहासिक प्रमाण किसी सामान्य ग्रन्थ के नहीं हैं, प्रत्युत ऐतरेय ब्राह्मण और मनुस्मृति के हैं, जिनकी प्रामाणिकता के विषय में किसी को इनकार नहीं हो सकता। इनमें आये हुए नामों में से आन्ध्र, शबर, द्रविड और किरात शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं ÷। आन्ध्र और द्रविड, द्रवीडियन विभाग के हैं और शबर तथा किरात कोलारियन विभाग के हैं। ये दोनों विभाग क्षत्रिय जाति से उत्पन्न कहे गये हैं। क्षत्री जाति निस्सन्देह आर्य ही है। इसलिए अब हमारा प्रबलतापूर्वक दावा है कि **कोल और द्रविड दोनों एक ही आर्यजाति की शाखाएँ हैं और आर्यावर्त में ही आर्यों से उत्पन्न हुई हैं।**

+ In the above list of the Dravidian languages I have not included the Ho, Munda, or any of the rest of the languages of the Kols, the Savaras and other rude tribes of Central India and of Bengal called Kolarian by Sir George Campbell, and included by Mr. Hodgson under the general term Tamilian. (Comparative Grammar of Dravidian Languages, p. 42.)

× विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्राऽऽसुः। पञ्चाशदेव ज्यायांसः।ताननु व्याजहार तान्वः प्रजा भक्षीष्टेति। त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति। विश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः। (ऐतरेय ब्रा० ७ | १८)

† शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणादर्शनेन च। पौण्ड्रकाश्चौण्ड्रद्रविडाः काम्बोजाः यवनाः शकाः। पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः। (मनुस्मृति)

÷ इस शबर जाति की ही प्रसिद्ध शबरी थी जो रामचन्द्रके समय में उपस्थित थी। यह भिल्लिनी भी कही जाती है। भिल्ल और कोल एक साथ ही 'कोलभिल्ल' कहलाते हैं। अत एव शबर जाति निश्चय ही कोलारियन विभाग की है।

हमने पहिले ही कहा है कि आर्य लोग अपने ही पतित आर्यों को उसी तरह दस्यु कहा करते थे, जिस प्रकार ईरानी लोग अपने ही पतित भाई को 'दह्यु' कहा करते थे । हमने ही नहीं कहा, प्रत्युत योरप के विद्वान् भी इसी बात को स्वीकार करते हैं कि आर्यों ने दुष्ट आर्यों को ही दस्यु, राक्षस और यातुधान आदि कहा है । प्रो० मेक्समूलर कहते हैं कि वसिष्ठ एक शुद्ध ब्राह्मण था । परन्तु विश्वामित्र ने उसे यातुधान तक कह डाला है × । यही क्यों, कृष्ण भगवान् ने तो अर्जुन जैसे आर्य वीर को भी जब कायरता की बातें करते सुना, तो तुरन्त ही कह दिया कि '**अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यम्**' अर्थात् तू अनार्य स्वभाव धारण कर रहा है । वायुपुराण में स्पष्ट ही लिखा है कि '**असुरा ये तदा आसन् तेषां दायादबान्धवाः** ।' अर्थात् असुर तो आर्यों के दायाद (वारिस) बन्धु ही हैं । इसी तरह महाभारत शांतिपर्व में भी लिखा है कि '**दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेषु दस्यवः**।' अर्थात् आजकल तो सभी वर्णों में दस्यु दिखलाई पड रहे हैं । अब सोचना चाहिए कि दस्यु अगर कोई गैर जाति होती या उसके रूप, रंग, भाषा में भेद होता, तो सब वर्णों में दस्यु कैसे दिखलाई पड़ते ! बात तो असल यह है कि **आर्य लोग सदैव दुष्टों को दस्यु कहते रहे हैं, चाहे वे अपनी जाति के हों या गैर जाति के** । मनु महाराज साफ शब्दों में कहते हैं कि —

मुखबाहूरूपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छवाचाश्चार्यवाचा सर्वे ते दस्यवः स्मृताः । (मनुस्मृति)

अर्थात् वर्णाश्रमहीन जातियाँ चाहे आर्यभाषा बोलनेवाली हो और चाहे म्लेच्छभाषा बोलती हों, सब दस्यु ही हैं । रहा यह कि आर्यों का दस्युओं को मारना लिखा है सो कोई ताज्जुब की बात नहीं है । वेदों में तो आर्यों को भी मारना लिखा है । पर वह राजा के लिए है । क्योंकि राजा तो युद्ध में शत्रु को दंड देता ही है, चाहे शत्रु आर्य हो या दस्यु । जिस मंत्र में आर्यों के मारने के लिए लिखा है वह यह है—

त्वं तान् इंद्र उभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राणि आर्या च शूर ।
वधीः वन इव सुधितेभिः अत्कैः आ पृत्सु दर्षि नृणां नृतम । (ऋ० ६।३३।३)

अर्थात् हे मनुष्यों के श्रेष्ठ नेता पराक्रमी इंद्र ! तू उन दोनों पपात्मा अमित्रों, दस्युओं और आर्यों को मार । जैसे कुल्हाडों से वन काटे जाते हैं, वैसे ही तू उनको सुधारे हुए शस्त्रों से युद्धों में अच्छी तरह काट । इन वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है कि दस्यु, असुर, राक्षस, यातुधान आदि शब्द किसी गैर जाति के लिए नहीं हैं, प्रत्युत उनके लिए हैं, जो वर्णाश्रमधर्म के विपरीत आचरण करते हैं, अधर्मी हैं, नास्तिक है और बदमाश हैं । यह प्रमाणित हो जाने पर कि अनार्य, दस्यु आदि आर्यों की ही शाखाएँ हैं और द्रविड, शबर आदि मूलतः आर्य ही हैं, तथा वेदों के वर्णनों से इनका वास्ता नहीं है; अब केवल यही प्रश्न रह जाता है कि जब ये आर्यों से भिन्न अन्य जाति के नहीं हैं, तब उनका रूप, रंग और भाषा पृथक् क्यों है ?

* Vasistha himself, the very true Aryan Brahman, when in feud with Vishwamitra is called not only an enemy but a yatudhan and other names, which in comman parlance are only bestowed on barbarian savages and evil spirit. (Sanskrit Text-book, Vol. 11, p. 389, by Muir.)

रूप, रंग और भाषा के विषय में हम द्वितीय खण्ड में सप्रमाण सिद्ध कर आये हैं कि कारणवश गोरी जातियाँ काली हो जाती हैं और अन्य जाति की भाषा अन्य जाति के लोग बोलने लगते हैं। इसी तरह हम यह भी सिद्ध कर आये हैं कि आर्यों से ही सब रंगों और रूपों की उत्पत्ति हुई है। इसलिए श्याम रंग और भिन्न भाषा के कारण ये आर्यों से पृथक् नहीं हो सकते।

इस प्रकार से यहाँ तक हमने भारत के मूलनिवासियों के विषय में उसी ढंग से खोज की, जिस ढंग से पाश्चात्य विद्वान् या उनसे शिक्षा पाये हुए देशी विद्वान् करते हैं। हमने उन्हीं की ढूँढ तलाशों से और वेदों के उद्धरणोंसे ही अपने आरोप की पुष्टि और उनके मत का निरसन किया है। इसलिए अब यहाँ साहसपूर्वक कहते हैं कि **मद्रास प्रांत में बसनेवाले द्रविड तथा दक्षिणी प्रदेशों में बसनेवाले कोल आर्य ही हैं और आर्य जाति के लोग ही समस्त दक्षिणी एशिया में बसते हैं।**

दक्षिण में सबसे निकट सीलोन (लङ्का) है। परन्तु पूर्वकाल में केवल सीलोन का ही नाम लङ्का नहीं था। सीलोन तो लङ्का देश का एक टुकड़ा है। इसके आगे जो ज़मीन समुद्र में डूब गई है, उसको और दक्षिणी द्वीपसमुदाय तक फैले हुए एक बड़े भूभाग को लङ्का कहते थे। इस वर्तमान सीलोन का नाम तो सिंहलद्वीप है। सिंहल क्षत्रियों को कहते हैं। जिस तरह वृष के मारनेवाले को वृषल कहते हैं, उसी तरह सिंह के मारनेवाले को सिंहल कहते हैं। पहिले जो क्षत्री सिंह को मारते थे, उनको सिंहल कहते होंगे, किन्तु पिछे से 'ल' निकल गया और केवल अमुक सिंह ही नाम रखने का रिवाज हो गया। कहते हैं कि जब से यह द्वीप लङ्का से अलग होकर इस आकार में आया, तभी से उत्तर के क्षत्रियों ने जाकर वहाँ अपनी सत्ता जमाई और जंगलों के सिंहों को मारकर सिंहलद्वीप नाम रक्खा। परन्तु इस द्वीप में मद्रास के द्रविड लोग तो आदि से ही—असली लङ्का के समय से ही—आबाद थे। अभी हाल में नवीन ढूँढतलाश से ज्ञात हुआ है कि मलय और सुमात्रा की ही जमीन में लङ्का थी। हमारा तो अनुमान है कि आरंभ मे मेडेगास्कर, सीलोन और द्वीपपुञ्ज एक में मिले थे और इस विशाल समस्त भूभाग को लङ्का कहा जाता था। परन्तु मलय—सुमात्रा के लङ्का सम्बन्धी जो प्रमाण मिले हैं, उनमे कतिपय प्रमाण इस प्रकार हैं। ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि—

तथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंवृतम्।
नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्का नाम महापुरी। (ब्रह्माण्डपुराण)

इस श्लोक से लङ्का मलयद्वीप में ही पाई जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य ढूँढतलाशों से ज्ञात हुआ है कि सुमात्रा द्वीप के उत्तर—पूर्ववाले पर्वत के पास समुद्रतट पर सोनीलङ्का नामक स्थान है और इसी सुमात्रा में ही लङ्कत नामी एक द्वीप भी है। लङ्का के साथ सुवर्ण का नाम बहुत प्रसिद्ध है। लोग समझते हैं कि लंका में सोना बहुत था। अब मालूम हुआ है कि यह बात कल्पना नहीं है। इन द्वीपों में पहिले बहुत सोना निकलता था। इसी से असुरों ने भी इस स्थान को राजधानी बनाया था और वह सोने की जमीन के नाम से प्रसिद्ध भी था। इस बात से जाना जाता है कि यहाँ भारत के लोग अर्थात् पतित क्षत्रीगण

और अन्य लोग भी सुवर्णके ही लिए उपनिवेश बनाकर बसते थे । नारदखण्ड में लिखा है कि—

भविष्यन्ति कलौ काले दरिद्रा नृपमानवः ।
तेऽत्र स्वर्णस्य लोभेन देवतादर्शनाय च ।
नित्यं चैवागमिष्यन्तिं त्यक्त्वा रक्षःकृतं भयम् ।

अर्थात् कलियुग में राजा; प्रजा दरिद्री हो जायँगे इसलिए यहाँ लोभके कारण नित्य ही आया करेंगे । मालुम होता है कि इस दीपपुञ्ज में सुवर्णकी अधिकता के ही कारण ये श्लोक बनाये गये हैं । इन श्लोकों से सोनीलंका और सुवर्णमय लंका की बात एकदम पुष्ट हो जाती है और यह भी ज्ञात हो जाता है कि वर्तमान लंका—सीलोन—द्वीपपुंज तक फैला था । सीलोन भी सिंहल का ही अपभ्रंश है । सिंहल का सिंलन और सिंलन का सीलोन हो गया है । यहाँ तक के वर्णन का मतलब यह है कि सीलोन में पहिलेपहिल द्रविड गये और पीछे से सिंहल नामी क्षत्री गये । दोनो आरम्भ में आर्य ही थे । अतः लंका में भी आर्योंका ही विस्तार सिद्ध होता है ।

इस द्वीपपुंज में प्रधानतया छे सात द्वीप हैं । योरपनिवासी अब तक यहाँ के निवासियों के लिए नाना प्रकार की कल्पना करते हैं । पर संस्कृत के प्राचीन साहित्य से सिद्ध होता है कि मलय, जावा, सुमात्रा आदि देशों में आर्यों ने ही सबसे प्रथम उपनिवेश किया था । वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि '**यत्नवन्तो यवद्वीपः सप्तराज्योपशोभितः**' । अर्थात् यवद्वीप सात राज्यों से सुशोभित है । इन द्वीपों के लिए वायुपुराण में भी लिखा है कि—

अङ्गद्वीपं यवद्वीपं मलयद्वीपमेव च ।
शंखद्वीपं कुशद्वीपं * वराहद्वीपमेव च ॥
एवं षडेते कथिता अनुद्वीपा समन्ततः ।
भारतं द्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः ॥ (वायुपुराण)

अर्थात् अङ्गद्वीप, यवद्वीप, मलयद्वीप, शंखद्वीप कुशद्वीप और वराहद्वीप आदि भारतवर्ष के अनुद्वीप ही हैं, जो दक्षिण की ओर दूर तक फैले हैं । इन श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि यह द्वीपपुंज भारतीयों का ही उपनिवेश था । इन छे के सिवा सातवाँ बालिद्वीप भी है । इस बालिद्वीप में अब तक मनुस्मृति का कानून चल रहा है । डॉक्टर देसाई ने वहीं से

* कुशद्वीप में रामचन्द्र के लंकाविजय के पश्चात्, उनके पुत्र कुश ने सर्वप्रथम राज्य किया । यह कुशद्वीप द्वीपपुंज में से ही है । यहाँ से ही बहुत प्राचीन काल में पणिक लोग बेबिलन को गये हैं ।

The people who brought its culture to the southern coast of Babylonia, and probably also to the coast of Elam and communicated it to the still uncultured races living there, seems to have belonged to that peaceful commercial race which the Hebrews designated as the 'Son of Kush' which was not unlike the Phoenicians and was placed in the same category. (Historical History of the World, Vo. I, p, 536.)

प्राप्त महाभारत की पुस्तक से ७० श्लोक की गीता की खोज की है। वहाँ के रहनेवाले द्रविड, मंगोल और भारतीयों के मिश्रित सन्तान हैं। द्रविड और मंगोल एक ही तुरानी भाषा बोलते हैं और आर्यों के ही वंशज हैं। अतः द्वीपपुञ्ज के रहनेवाले भी आर्यों की ही उपशाखा में गिने जाते हैं। इस तरह से एशिया का यह दक्षिण प्रदेश भी भारतीय आर्य-सन्तति से ही भरा हुआ और बसा हुआ दिखलाई पड़ता है। कहा नहीं जा सकता कि आर्यों ने कितने काल पूर्व, सुवर्ण निकालने के लिए इन द्वीपों की खोज करके वहाँ अपना उपनिवेश बसाया था।

इस प्रकार से हमने एशिया की चारों सीमाओं के प्रधान प्रधान और प्रसिद्ध प्रसिद्ध नये तथा पुराने देशों, प्रान्तों और जातियों को देखा तो मालूम हुआ कि सर्वत्र ही आर्यसभ्यता, आर्यवंश और आर्यगौरव की जयध्वनि गूँज रही है। सर्वत्र ही यह प्रमाणित हो रहा है कि समस्त मानवजाति जो एशियाखण्ड में निवास करती है, चाहे काली, पीली, सफेद आदि किसी रंगरूपवाली हो, तथा आर्य, सेमिटिक और तुरानी आदि कोई भाषा बोलती हो, परन्तु वह आर्यों की ही शाखा या उपशाखा है।

अफ़रीका खण्ड।

अफ़रीकाखण्ड में मिश्र देश है। मिश्र को आजकल इजिप्ट कहते हैं। लोगों का ख्याल है कि मिश्रनिवासियों की सभ्यता बहुत पुरानी है। पर नीचे के वर्णन से ज्ञात हो जायगा कि मिश्रनिवासी भारतवासी ही हैं। इसके पहिले पश्चिमी एशिया के वर्णन से ज्ञात हो चुका है कि फ़ारस, अरब, मेसोपोटामिया, जुडिया, बेबिलन, चाल्डिया और फ़िनीशिया में आर्य ही निवास कर रहे हैं। भारतीय आर्यों ने ही पंजाब, मद्रास, और द्वीपपुञ्ज तथा नेपाल से जाकर उक्त देशों में निवास किया है। उक्त देशों से मिश्र मे जाने के लिए एक छोटा सा समुद्र पार करना पडता था। जिस प्रकार अफ़रीका और एशिया को स्वेज नहर ने इस समय जुदा कर रक्खा है, उसी तरह वे आगे भी जुदा थे। जहाँ इस समय स्वेज़ नहर है, वहाँ छोटी सी नदी की भाँति पहिले भी समुद्र भरा था। इस छोटी सी नदी को लाँघकर आर्यों ने ही मिश्र को आबाद किया था। इस विषय में बून्सेव नामक एक विद्वान् ने लिखा है कि ऐतिहासिक यादगिरी से पूर्व भारतीय आर्यों ने स्वेज़ पुल को पार करके नील नदी के किनारे अपना उपनिवेश बनाया था ×। इसी तरह हिस्टॉरिकल हिस्ट्री ऑफ़ दि वर्ल्ड जिल्द १, पृ० ८९ में लिखा है कि 'इजिप्टनिवासी पणिकों की शाखा हैं। ये लोग परशियन गल्फ़ होते हुए लाल समुद्र के दक्षिण में पान्त नामक देश से गये' +। हमारा विश्वास है कि यह पान्त देश पाण्ड्य के सिवा और कुछ

× Indians migrated from India long before Historic Memory and crossed that bridge of nations, the isthmus of suez to find a new fatherland on the banks of the Nile. (हिन्दी विश्वकोष 'उपनिवेश शब्द')

+ It seems probable that they came up from the land of Pant, at the south of red sea, and they may have been branch of the Punicrace in its migrations from the Persian Gulf round by sea to the Mediterranean. (Historical History of the world, Vol, p. 89.)

नहीं है और पणिक भी वही पणी हैं, जिन्होंने पाण्ड्य और फिनीशिया बसाया था। विद्वानों ने प्राचीन खोपड़ियों के मिलान से भी निश्चित किया है कि मिश्रनिवासी भारतीय आर्य ही हैं *।

परन्तु भारत के पाण्ड्य देश के निवासी होने से यह न समझ लेना चाहिए कि मिश्र-निवासी श्याम वर्ण के मद्रासी द्रविड हैं। मिश्रवालों का रंग श्याम नहीं है न उनकी भाषा ही द्रविड है। वे तो गौर वर्ण और हेमिटिक भाषा के बोलनेवाले हैं। मद्रास के श्याम रंगवालों का यह रंग आस्ट्रेलिया के कारण हुआ है। परन्तु इनका आस्ट्रेलिया से कोई वास्ता नहीं रहा, इसलिए ये वे गौर वर्ण आर्य ही हैं।

इजिप्ट देश के तीन नाम हैं—कमित, हपि और मिश्र। कमित 'कुमृत्' का अपभ्रंश है; मृत् मिट्टी को कहते हैं; इसलिए कुमृत् का अर्थ काली मिट्टी होता है। यह नाम नील नदी के कारण ही रक्खा है। नील नदी की काली मिट्टी पर इजिप्ट बसा हुआ है, इसीलिए उसका नाम कुमृत् है। इसी तरह हपि शब्द अप का अपभ्रंश और अप जल को कहते हैं। मिश्र तो मिलावट को ही कहते ही हैं। इसलिए संस्कृत के अप और मिश्र नाम रखने से भी वे आर्य ही सिद्ध होते हैं।

मिश्र में एक दानव जाति भी थी। यह दानव शब्द आर्यों का ही है। वहाँ की कब्रों से नीला रंग और इमली की लकड़ी भी मिली है, जो बिलकुल भारती उपज है। माशा, सिलक, मन आदि वज़नसम्बन्धी शब्द भी भारती ही हैं, जो वहाँ पहिले चलते थे। वहाँ के स्थानों के नाम भी शिव और मेरु आदि हैं, जिनसे वे आर्य ही सिद्ध होते हैं +। 'इण्डिया इन ग्रीस' नामी पुस्तक में पोकाक कहते हैं कि वे (मिश्रनिवासी) अपने को सूर्यवंशी कहते हैं, सूर्य की पूजा करते हैं और मनु को अपना मूल पुरुष समझते हैं ×। इसी तरह उनके पुराने लिखित पत्रों से पाया जाता है कि वे भारत के पुनर्जन्म सिद्धांत के माननेवाले भी थे †। कर्नल आलकाट कहते हैं कि आठ हज़ार वर्ष पूर्व उन्हों ने भारत से जाकर मिश्र में उपनिवेश बसाया और भारतीय सभ्यता का विस्तार किया ÷। इस तरह से इतने स्पष्ट

---

* Heeran was prominent in painting out an alleged analogy between the form of skull of the Egyptian and that of Indian races. He believed in the Indian origin of the Egyptian. (Historical History of the world, p. 77.)

+ हिन्दी विश्वकोष 'उपनिवेश शब्द'

× The reader will not readily forget the renowned City of the Sun, Helispolis, nor 'Menes' the first Egyption King of the race of the Sun, the Manu Vaivaswat or patriarch of the Solar race, nor his statue that of the great Menoo, whose voice was said to salute the rising sun. (India in Greece, p. 178.)

† Undated Hemetic Writings, p. 90.

÷ We have a right to more than suspect that India, eight thousand years ago, sent a colony of emigrents who carried their

और विस्तृत प्रमाणों के होते हुए कौन कह सकता है कि वे आर्यवंशज नहीं हैं और भारत से वहाँ नहीं गये ?

मिश्र से आगे दक्षिण अफरीका में भी बहुत प्राचीन काल में आर्यों के जाने का पता मिलता है। हमने आरम्भ में ही लिखा है कि व्रात्य क्षत्री 'झल्ल' होकर अफरीका गये और वहाँ 'जूलू' हो गये। इनके बाद वहाँ आर्यों का जाना शुरू हुआ। स्वर्गवासी शास्त्री काशीनाथ वामन लेले के एक लेख के आधार पर अक्तूबर सन् १९२२ के दीपमालिका अंक में 'गुजराती' नामक पत्र लिखता है कि 'ऐतरेय ब्राह्मण के ३९ वें अध्याय के अन्त में यह मन्त्र है कि '**हिरण्येन परिवृतान्कृष्णान्शुक्लदतो मृगान्। मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च**'। इस मन्त्र पर सायणाचार्य कहते हैं कि **मृगशब्देन गजाः विवक्षिताः ते च गजा हिरण्येन परिवृताः सर्वाभरणयुक्ताः कृष्णाः शुक्लाभ्यां दन्ताभ्यां तादृशान् गजान् मष्णार नामके देशे भरतो राजा दत्तवान्। शतमित्यादि तत्संख्योच्यते। बद्वं वृन्दमित्येतौ पर्यायौ। बद्वानि सप्ताधिकशतसंख्यांकानि तावतो गजान् दत्तवदित्यर्थः**'। अर्थात् दुष्यन्त के पुत्र राजा भरत ने मष्णार नामक देश में, सुवर्ण अलङ्कारों से युक्त बड़े बड़े श्वेत दाँतवाले हाथियों के एक सौ सात वृन्द दान में दिये। इस महान् हस्तिदान से भरत राजा को महाकर्म की उपाधि मिली। जिस प्रकरण में यह वर्णन आया है, वहाँ पाँच मन्त्र हैं। अन्तिम में इस महाकर्म की यह व्याख्या लिखी है कि '**महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः। दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोऽदापुः पंच मानवाः।**' अर्थात् ऐसा महाकर्म भरत राजा के न तो पूर्वजों ने किया और न पीछेवालों ने और न किसी अन्य मनुष्यजाति ने। इस बात पर अब यह प्रश्न होता है कि वह मष्णार देश कहाँ है, जहाँ इतने अधिक हाथी थे और इतना अधिक सोना पाया जाता था।

मेन्युअल ऑफ जिओग्रेफी के देखने से ज्ञात होता है कि अफरीका खण्ड में दक्षिणी रोडेशिया देश है, जहाँ 'मष्णा' नामक स्थान है। पूर्व काल में वहाँ बहुतायत से सोना होता था और हाथियों की भी बहुतायत थी। वहाँ के खण्डहरों के देखने से मालूम होता है कि वहाँ कोई सभ्य जाति रह चुकी है। भूगोल की पुस्तकों में वहाँ का वर्णन दिया गया है, जिससे अच्छी तरह प्रकट हो जाता है कि बहुत काल पूर्व वहाँ किसी सभ्य जाति ने सोना निकाला था और मकान तथा मन्दिर आदि बनवाये थे। वहाँ हाथी भी बहुतायत से होते थे। पर अब उनका शुमार इसलिए कम हो गया है कि, वहाँ के सब हाथी मार डाले गए हैं ×। वही स्थान 'मष्णा' है। संस्कृत में उसी का नाम 'मष्णार' लिखा है। 'र' का लोप हो जाना सहल है। हमेशा 'र' का विसर्ग होकर अथवा विसर्ग का 'र'

arts and high civilization into what is now known to us as Egypt......The old civilization of Egypt is the direct outcome of that of the older India.(Theosophist, for March 1881, p. 123)

× In southern Rhodesia, which includes both Matabole land and Mashanaland, extensive gold-fields have been discoverd. (Manual of Geography.)

Remarkable ruins of stone-built fortifications and temples, curiously carved and containing evidence that the builders worked

होकर अपभ्रंश हुआ करता है । इसलिए वह स्थान '**मण्णार**' ही है । राजा भरत ने इसी देश में सुवर्ण के साथ कोटि कोटि हाथियों का दान किया था ।

वह मध्यमकालीन सभ्यता है, जो आर्यों के द्वारा अफ़रीका पहुँची है । इसके भी पूर्व अर्थात् आरंभ काल में भी दक्षिण से झल्ल लोग जाकर वहाँ रहे थे । उनको इस समय जूलू कहते हैं । उनके विषय में आधुनिक पुस्तकों में लिखा है कि—

रथक्रान्ते नराः कृष्णाः प्रायशो विकृताननाः।
आममांसभुजः सर्वे शूराः कुंचितमूर्द्धजाः॥
(भविष्यपुराण)

अर्थात् यहाँ के मनुष्य काले, विकृत मुँहवाले, कच्चा मांस खानेवाले और शिर में घुँघराले बालवाले होते हैं । इस तरह से अफ़रीका में आर्यों की तीन धाराएँ तीन बार पहुँची हैं । झल्लकाल अर्थात् आदिमकाल, भरतकाल अर्थात् मध्यम काल और पणिकाल अर्थात् अन्तिम मिश्रकाल । हमारा अनुमान है कि पुराने आर्यों में नवीनों का मिश्रण होने से ही इस देश का नाम मिश्र रक्खा गया होगा । यही थोडा सा अफ़रीका खण्ड में आर्यों के विस्तारका वर्णन है ।

योरप खण्ड ।

योरप के विद्वानों ने हल्ला मचा दिया है कि हम भी आर्य हैं । दूसरे खण्ड में हमने स्पष्ट रीति से दर्शा दिया है कि आर्य सर्वश्रेष्ठ को कहते हैं । लम्बी नाक, सफ़ेद चहेरा और केन्तुम अथवा शतम् भाषा बोलनेवालों को नहीं × । यद्यपि वैदिक आर्यों के विद्या, बुद्धि, सभ्यता आदि के इतिहास से प्रभावित होकर योरपनिवासी आर्यों का वह लक्षण करते हैं, जो उनमें घट जाय । पर ढूँढतलाश करनेवालों ने पता लगा लिया है कि योरपनिवासी प्राचीन वैदिक आर्यों के वंशज नहीं हैं । हाँ, उन्होंने आर्यों कि भाषा अवश्य अख्तियार की है । जिस प्रकार आजकल गोआ प्रदेश में बसनेवाले देशी क्रिश्चियन अँगरेजी को अपनी भाषा बना रहे हैं, उसी प्रकार योरपवालों ने भी आर्य भाषा ग्रहण की है । हम लिख आये हैं कि योरपनिवासी दो भिन्न भिन्न मनुष्यसमुदायों के मिश्रण से पैदा हुए हैं । वे दोनों समुदाय किसी ज़माने में आर्य थे, पर आर्यत्व नष्ट करके एक दल मंगोल हुआ और दूसरा निग्रो । इन्हीं मंगोल और निग्रो लोगों के मिश्रण से योरपनिवासियों का

in gold, are scatted over the platean. They point to the early possession of the country by a civilised people.

Elephants once very plentiful throughout the greater portion of Rhodesia, had become so much reduced in numbers by constant hunting and the indiscriminate slaughter of females and calves as well as males. (The Inter Geography by Seventy Authors, pp. 1000 and 1001.)

× आदि में केन्तुम और शतं बोलनेवाले दो प्रकार के लोग थे । ग्रीस और ईरान में भी केन्तुम विभाग था । ये 'श' के स्थान क़ाफ़ का उच्चारण करते थे । ग्रीक में श्वान को क्वान और ज़ेद मे श्वसुर को कुसुर कहते थे ।

प्रादुर्भाव हुआ है। वैदिक आर्यों की उच्च सभ्यता उस समय भी प्रज्वलित थी। अतः इस काले पीले रंगों के मिश्रित वंश ने आर्यों की भाषा और सभ्यता से प्रभावित होकर उसे स्वीकार किया।

विद्वानों की जाँच से ज्ञात होता है कि योरप में मनुष्यों की बस्ती बहुत पीछे से हुई है। तिलक महोदय के निष्कर्ष से तो योरप की बस्ती दश हज़ार वर्ष से अधिक पुरानी सिद्ध ही नहीं होती। पर दूसरे विद्वान् इसको बहुत अधिक मानते हैं। चाहे जो हो, पर योरप में अन्य भूभागों की अपेक्षा मनुष्यजाति बहुत ही पीछे से बसी है। इसलिए प्रश्न होता है कि यह मिश्रित जाति कहाँ पर उत्पन्न हुई और कहाँ पर इसने आर्यभाषा सीखी ? इसकी निष्पत्ति पर दो एक मत हैं। पर सबसे उत्तम मत यह है कि एशिया माइनर में ही यह सब रचना हुई। एशिया माइनर के वर्णन में हम पहिले ही दिखला चुके हैं, कि यहाँ द्रविड भाषा बोलनेवाली हिट्टी (Hittite) खत्ती जाति निवास करती थी। स्वेज़ ब्रिज से अफ़रीक़ा के काले रंगवाले निग्रो भी वहाँ आया करते थे और वहीं पर तुरानी जाति भी मौजूद थी। डॉक्टर भंडारकर के स्मृतिनिबन्ध में तिलक महोदय ने भी यह बात लिखी है। उधर 'हार्म्सवर्थ हिस्ट्र ऑफ़ दी वर्ल्ड' में लिखा है कि वहाँ मंगोलिक जाति भी रहती थी +। हमारी ढूँढतलाश बतलाती है कि वैदिक काल की पतित क्षत्री जाति किरात होकर हिमालय पर गई और केलात नाम धारण करके उसकी एक शाखा बहुत दिन बाद तातारवालों की पूर्वज होकर एशिया माइनर में भी बसी और योरप देशकी केल्ट जाति की जन्मदात्री हुई। इसी तरह मद्रास के झल्ल अफ़रीक़ा के जूलू हुए और स्वेज़ पुल से एशिया माइनरमें आकर केल्ट नामक तातारियों से मिलकर पीले और काले रंग को मिलाकर श्वेत रंग की उत्पत्ति की, तथा वहीं पर बसे हुए पर अन्य शुद्ध आर्यों की भाषा सीखकर आर्यमणि–आरमेनिया–नामक स्थान में अपना निवास किया।

यहीं से योरप में मनुष्यजाति के–एक प्रकार से आर्य जाति के–पदार्पण का आरम्भ हुआ। उनकी भाषा आर्य भाषा हो चुकी थी। इसी आर्य भाषा के कारण उन्होंने आर्य-नन्द अर्थात् आयर्लैंड और शर्मदेशीया अर्थात् सरमेशिया आदि नाम रक्खे। रोम शब्द लेटिन का नहीं, × किन्तु भास्कराचार्य द्वारा ढूँढा हुआ संस्कृत का ही है। वेद में रुमे, रुशमे शब्द आते हैं। ये लोग पहिलेपहिल 'श' का उच्चारण नहीं कर सकते थे, इसीलिए लेटिन में शतं (सौ) को 'केन्तुम', ग्रीक में 'कातोन', प्राचीन जर्मन में 'हुंड' (Hund), गाथिक में 'खुन्त' और अँगरेज़ी में 'हण्ड्रेड' कहते हैं। किन्तु कुछ दिन के बाद आर्यों की एक अन्य शाखा भी योरप में निवास करने के लिए गई। यह बराबर शतं बोलती

+ Chinese–One of the most numerous reces of the world inhabiting the Chinese Empire. They are a stock of the southern Mongolic family and thought by some ethnologists that they are descended from the Mongolic Akkads of Mesopotamia. (Harmsworth History of the World, p. 329.)

× That Rome, writes Neighbour, was not a Latin name. (India in Greece.)

थी। अवस्था में शतेम और रशिया की भाषा में स्तो बोलते थे। यह शुद्ध उच्चारण पीछे से जिस शुद्ध वैदिक आर्य जाति से योरपवालों ने सीखा, वह जाति अब तक वहाँ मौजूद है। इसके लिए वहाँवालों ने न जाने क्या क्या कल्पना कर डाली है, पर जब उनकी भाषा का मिलान किया गया, तो वे ठीक हिन्दी जैसी भाषा बोलनेवाले निकले। पहिले यह प्रसिद्ध किया गया कि ये अभी हाल ही में भारतवर्ष से योरप में गये हैं, पर अब ज्ञात हुआ है कि ये बहुत पुराने जमाने से वहाँ रहते हैं और लोहे की विद्या योरप में इन्हींने फैलाई है। हम द्वितीय खण्ड में इस जिप्सी जाति का वर्णन करके इसका परिचय दे आये हैं

आगे हम उन प्रमाणा को उद्धृत करना चाहते हैं, जिनमें यह दिखलाया गया है कि योरपनिवासी काली और पीली जातियों के वंशज हैं और केवल आर्य भाषा ही बोलते हैं। इस विषय में मिस्टर टेलर, लो॰ तिलक और अविनाशचन्द्र दास ने काफी प्रकाश डाला है। अतः उन्हीं के आधार से हम दिखलाना चाहते हैं कि योरपनिवासी आर्यों की शाखा नहीं, प्रत्युत प्रशाखा हैं। टेलर महोदय अपने 'ओरिजिन ऑफ आर्यन्स' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि 'योरपनिवासी अफरीका और मंगोलनिवासियों के मिश्रण से उत्पन्न हुए हैं और एशिया की असल आर्य भाषा बोलते हैं +। इस विषय का खुलासा करते हुए 'ऋग्वेदिक इण्डिया' में दास बाबू कहते हैं कि 'सबसे प्रथम जंगली आर्यों का जंगली मंगोलियनों के साथ मिश्रण हुआ। इस मिश्रित दल की भाषा आर्य ही हो गई। कुछ दिन के बाद इस मिश्रित दल का मिश्रण उस अफरीका की जाति के साथ हो गया, जो योरप में पहिले से ही आबाद थी। इस दुबारा मिश्रित दल की भाषा भी आर्यभाषा ही हो गई। यही आर्यभाषाभाषी मिश्रित दल वर्तमान समस्त योरप की जातियों का पूर्वज है' ×।

+ Europe may have been the place where the African and Asiatic types must have met and mingled.

The letter opinion may maintain that while Aryan speech came originally from Asia, it was subsequently acquired by men who were largely of African origin. (Origin of the Aryans, p. 66.)

× from the evidence about the hoary antiquity of the Aryans of Saptasindhu and the proofs we have adduced of the savage Aryan tribes having gradually migrated westward through western Asia to Europe, we hold the opinion that Aryan speech went originally from Sapta-sindhu so Europe along with the savage Aryan nomads who got mixed with the Mongolian savages in western Asia and imposed their speech upon them, and that those savages having commingled their blood, afterwards came in contact with the early inhabitants of Europe, who had immigrated from Africa with the retreat of the great ice-sheet northward at the end of the Glacid Epoch (Rigvedic India, p. 313.)

'आर्यों का उत्तरध्रुवनिवास' नामी ग्रन्थ में इस मंत की पुष्टि करते हुए तिलक महोदय कहते हैं कि प्राचीन खोपड़ियों की परीक्षा से विद्वानों ने योरप में चार प्रकार की खोपड़ियाँ निश्चित की हैं। वर्तमान योरपनिवासी इन्हीं के वंशज हैं। इन चारों में दो वर्ग तो बड़े शिरवाले हैं और दो छोटे शिरवाले। इनमें एक वर्ग ऊँचा था दूसरा ठिंगना। योरपनिवासी सब आर्य भाषा बोलते हैं, इससे यह तो स्पष्ट ही है कि इन दो में एक वर्ग आर्यों का है। विद्वानों में यह प्रश्न बहुत दिन तक होता रहा कि इनमें से कौन आर्य और कौन आर्येतर हैं। कई एक जर्मन पंडितों का मत है कि इस समय के जर्मनों के पूर्वज वही थे, जो बड़े शिर और लम्बे कदवाले थे। पर फ्रेंच पंडित कहते हैं कि मूल आर्य छोटे शिर और ठिंगने कद के थे। इस विवाद पर कैनन टेलर नामक एक अँगरेज़ ग्रन्थकार कहता है कि जब दो जातियों का संघट्ट होता है, तब उनमें जो अधिक सभ्य होती है, उसी की भाषा दूसरी असभ्य जाति स्वीकार करती है। इस महान् नियम के अनुसार बाल्टिक समुद्र के किनारे पर बसनेवाले बड़े शिर और लम्बे जंगलियों ने जब छोटे शिर और ठिंगने आर्यों की सोहबत की, तो उन्होंने आर्यों की भाषा सीख ली। यही मत सत्य मालूम होता है।

इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में अब तक कुछ न कुछ तुरानी शब्द पाये जाते हैं। क्योंकि अफरीका के निग्रो और एशिया के मंगोल तुरानी भाषा ही बोलते हैं *। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि योरपनिवासी वैदिक आर्य नहीं हैं। इनकी उत्पत्ति दो पतित आर्यजातियों के विचित्र (काले पीले) मिश्रण से हुई है और केवल आर्यों की भाषा ही बोलनेको मिली है। अर्थात् ये आर्यों की दो पतित शाखाओं के संकरमिश्रण से ही हुए हैं। इसलिए हमारा ऊपर का वर्णन और लोगों का यह अनुमान कि वे आर्य ही हैं, दोनों आरोप यह बात सिद्ध करते हैं कि ये आर्यों की शाखा नहीं, किन्तु प्रशाखा हैं। क्योंकि यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आदि में सभ्य वैदिक आर्यों का ही प्रादुर्भाव हुआ और उनकी ही शाखाएँ अथवा उपशाखाएँ या प्रशाखाएँ ही संसार के भिन्न भिन्न प्रदेशों में बसी हैं। ऐसी दशा में योरपवालों के आर्य में होने तो बहुतों को शक ही नहीं है, पर जो उन्हें मिश्रवंशज कहते हैं, उनके अनुसार भी वे आर्यों की ही प्रशाखा सिद्ध होते हैं। क्योंकि तुरानी और निग्रो दोनों ही पतित आर्य हैं, इसलिए योरपनिवासियों के आर्य होने में कुछ भी संदेह नहीं है।

आस्ट्रेलिया खण्ड।

हमने अभी थोड़ी देर पहिले दक्षिणी भारत के लङ्का और द्वीपपुञ्ज आदि का हाल लिखा है और बतलाया है कि वहाँ आर्य और द्रविडों का ही निवास था और है। ये सब दक्षिण भारत अर्थात् मद्रास प्रदेश से ही उक्त द्वीपों में पहुँचे हैं। जिस प्रकार ये सब मद्रास प्रान्त से इन द्वीपों में पहुँचे हैं, उसी तरह उनकी एक आन्ध्रशाखा जो महाराज विश्वामित्र के

* My own theory is that the Dravidian languages occupy a position of their own between the languages of the Indo-European family and those of the Turanian or Scythian group. (Dravidian Grammer, by Dr. Cladwell.)

इनके आदिमकालीन पुरोहित 'ड्रुइड' कहलाते थे। यह ड्रुइड शब्द 'द्रविड' का ही अपभ्रंश है।

पतित पुत्रों से उत्पन्न हुई थीं, आदिमकाल ही में आन्ध्रालय अर्थात् आस्ट्रेलिया में जाकर बसी थी। आधुनिक ढूंढतलाशों के अनुसार विद्वानों का ख्याल है कि आस्ट्रेलियामें मनुष्यों की बस्ती बहुत प्राचीन काल से है। यह बात उक्त घटना से सिद्ध होती है। विश्वामित्र के पुत्रों की घटना अत्यन्त प्राचीन है। इसका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण में आया है। अतः पूर्वकाल में ही आर्य लोग पतित होकर आन्ध्रालय को गये थे। कहते हैं, उस समय भारत और आस्ट्रेलिया के बीच इतना बड़ा अन्तर न था। उस समय सीलोन और मेडेगास्कर की भूमि बहुत चौड़ी थी और भारत तथा आस्ट्रेलिया को एक में जोड़ती थी, तथा समस्त टापुओं में एक ही जाति निवास करती थी। क्योंकि आस्ट्रेलियावालों की और भारती द्रविडों तथा कोल, भील और संथालों की भाषा एक ही है। इससे यह बात सुदृढ हो जाती है कि सब एक ही जाति के हैं। पतित आर्यों से इन सब की उत्पत्ति हुई है, अत: सबके पूर्वज आर्य ही थे। इसीलिए धर्मोपदेश के लिये यहाँ के आर्य ऋषि (पुलस्त्य) बहुत ही प्राचीन काल में राजा तृणबिंदु के यहाँ आस्ट्रेलिया गये थे। यह बात वाल्मीकि रामायण से अच्छी तरह सिद्ध होती है।

नवीन ढूँढतलाश से भी वहाँ के निवासी आर्य ही सिद्ध होते हैं। सन् १९२२ में गुजरात के एक सुयोग्य लेखक ने **'गुजराती'** नामक पत्र के दीपमालिका अङ्क में वहाँ की बहुत सी बातें लिखकर अन्त में लिखा है कि 'आस्ट्रेलिया के मूलनिवासियों के रूपरेखा आदि से योरपवालों ने उनका नाम इण्डियन रक्खा है। इन लोगों में हिन्दुओं की भाँति बहुत बड़ा जातिभेद है। ये लोग परस्पर एक दूसरे के हाथ का छुआ हुआ नहीं खाते। इसी तरह वे अपनी जाति में किसी दूसरी जाति का मिश्रण नहीं होने देते। आर्यजाति के स्वभाव से मिलती हुई इन बातों से मालूम होता है कि ये लोग आदि में आर्यकुलके ही होंगे' ।× आर्य क्षत्रियों का एक बहुत बड़ा चिह्न इनके पास अब तक मौजूद है। यह क्षत्रियों का अक्षयतूण शस्त्र है। यह अपने शत्रु को मारकर मारनेवाले के पास फिर वापस आ जाता है। इसको ये लोग **'बूमरांग'** कहते हैं। इस शस्त्र के चलाने की विधि और बनाने की विधि बड़ी ही विज्ञानपूर्वक है। अब तक हम जब सुनते थे कि आगे के क्षत्रियों के बाण शत्रु को मारकर लौट आते थे, तो इसे हम मदकखाने की गप समझते थे। पर अब आस्ट्रेलिया के बूमरांग ने इस विषय को सत्य कर दिया है +। इस शस्त्र के सिवा उनके पास आर्यों की एक खास धरोहर अब तक मौजूद है और वह है पुनर्जन्म पर विश्वास। आस्ट्रेलिया के मूलनिवासी

×આસ્ટ્રેલિયાના મૂલ વતની લોકોને તેમના રૂપ વિગેરે ઉપરથી યૂરોપીયન લોકોએ 'ઇંડિયન' એવું નામ આપેલું છે. એ લોકોમાં હિંદુઓની પેઠે જાતિભેદ ઘણો છે અને એક બીજાના હાથનું રાંધેલૂં ખાવા ન ખાવાની બાબતમાં પણ તે લોકોનો રિવાજ વિચિત્ર છે. તેજ પ્રમાણે પોતાની જાતિમાં બીજી જાતનુ મિશ્રણ ન થાય, તે બાબત પણ તે લોકો બહુ કાળજી રાખે છે. આર્યજાતિ ના સ્વભાવને મળતી આવનારી આ બાબતો છે અને તેથી એ લોકો આર્ય કુલના હોવા જોઇએ એમ લાગે છે.

+ Boomerang– A hard wood missile used by the natives of Australia shaped like the segment of a circle and so balanced that when thrown to a distance it ret urns towardsthe thrower.

पुनर्जन्म मानते हैं। अगस्त १९१४ के थिऑसॉफिस्ट में जिनराजदास एम्० ए० ने Northern Tribes of Central Australia by Baldwin Spincer and H. G. Gilen के हवाले से एक लेख लिखा है। उसमें इस विषय का सविस्तर वर्णन है +। उन की भाषा द्रविड़ भाषा से मिलती है। उनका रूपरंग भी वही है। वे अनेक जातियों (वर्णों) में विभक्त हैं, वे किसी का छुआ हुआ नहीं खाते। वे अपनी जाति को दूसरी जातियों के साथ मिश्रित नहीं करना चाहते, उनके पास आर्य क्षत्रियों का अक्षयतूण शस्त्र अबतक मौजूद है और वे पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। उनके यहाँ अति प्राचीन काल ही में ऋषि, मुनि जाते थे और उनके राजाओं के नाम आर्यों के ही (तृणबिन्दु आदि) थे। इन तमाम बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे आदि में आर्य थे। कारणवश पतित होकर मद्रास प्रान्त में गये और वहाँ से आस्ट्रेलिया में आबाद हो गए। अतः उनके पूर्वज आर्य थे और भारतनिवासी थे, इसमें सन्देह नहीं।

आस्ट्रेलिया से आगे दक्षिण दिशा में कोई देश नहीं है। उसके आगे दक्षिणी ध्रुव है। जिस प्रकार उत्तर ध्रुव की ओर जाना आर्यों के यहाँ निषिद्ध था, उसी तरह दक्षिण ध्रुव में भी जाना अच्छा नहीं समझा जाता था। वाल्मीकि रामायण में ही लिखा है कि सीता की खोज करने के लिए सुग्रीव ने वानरों को रवाना करते समय जिस प्रकार उत्तर ध्रुव में जाना मना किया था, उसी तरह दक्षिण ध्रुव (मेरु) में भी जाना मना किया था। सुग्रीव ने कहा था कि—

अन्ते पृथिव्या दुर्द्धर्षास्ततः स्वर्गजिताः स्थिताः ।
ततः परं न वः सेव्यः पितृलोकः सुदारुणः ॥ (वाल० रामायण)

अर्थात् पृथिवी के अन्तिम भाग दक्षिणी ध्रुव में पितर निवास करते हैं। वह स्थान महा भयंकर है। अतः वहाँ न जाना। ध्रुवों में जाने से मना करने का कारण यही है कि वहाँ वैदिक आर्य अपने धर्मकर्म के साथ जीवन नहीं बिता सकते। इसी से वेद ने भी मना किया है। अतः दक्षिण ध्रुव के उत्तर प्रदेश आस्ट्रेलिया तक ही आर्यों की बस्ती थी। इसके आगे आर्यलोग नहीं जाते थे।

अमेरिका खण्ड।

हमारा विश्वास है कि अमेरिका में शुद्ध आर्यों का निवास पूर्वातिपूर्व काल में ही हो गया था। पर किसी किसी का ऐसा भी ख्याल है कि पुरानी दुनिया से– एशिया योरपादि– से अमेरिका जाने का कोई रास्ता ही नहीं था। इसलिए अमेरिकानिवासी एशिया आदि से

+ When the idea of reincarnation is heard of for the first time the student naturally supposes that it is a Hindu doctrine ... ... but the strong fact is that reincarnation is found every-where as a belief ... ... We hear of it in far off Australia and there is a story on record of an Australian aborigin who went cheerfully to the gallows and replied on being questioned a to his levity, 'Tumble down black fellow, Jump up white fellow and have lots of sixpences to spend.'

नहीं गये, प्रत्युत उन्होंने स्वयं अपना विकास प्राप्त करके मनुष्यता प्राप्त कर ली है । किन्तु हाल में वैज्ञानिक रीति से—भौगोलिक, भौगार्भिक और प्राणिशास्त्रसम्बन्धी ढूँढ तलाश से जो परिणाम निकला है, वह इसके बिलकुल ही विरुद्ध है । 'हार्म्सवर्थ हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' नामक महान् ग्रन्थ में इस खण्ड का विस्तृत वर्णन है । उसके पृष्ठ ५६७५ में लिखा है कि उत्तरीय अटलांटिक समुद्र हमेशा से ही जलमय नहीं था । वहाँ की ज़मीन पुरानी दुनिया से मिली थी और अमेरिका में मनुष्य पुरानी दुनिया से ही दाखिल हुए हैं + । इसके आगे पृष्ठ ५६७६ में लिखा है कि अमेरिका में मनुष्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती । क्योंकि मनुष्य का विकास होने के लिए वन मनुष्यों की ज़रूरत होती है । किन्तु अमेरिका में इस प्राणी का न तो पूर्व में अस्तित्व था और न अब है । इसलिए अमेरिका में मनुष्यजाति का विकास नहीं हुआ * । इस वर्णन से इतना तो निर्विवाद हो गया कि अमेरिका में मनुष्य का विकास नहीं हुआ और वहाँ जो मनुष्य बसते हैं, वे प्राचीन दुनिया से ही गये हैं । पर प्रश्न यह है कि वहाँ वे किस देश से गये ? हमारी समझ में इस प्रश्न का उत्तर १) **उनके धार्मिक विश्वासों, (२) उनकी सुरत शकल के मिलानों, (३) उनकी कारीगरी और रिवाजों, (४) उनके पूर्वकालिक गमनागमनों और (५) उनके विषय में स्थिर की हुई विस्तृत मालूमातों से ही मिल सकता है** । और मालूम हो सकता है कि वे किस देश के हैं । अतः हम यहाँ क्रम से इन सभी बातों का उत्तर ढूंढते हैं ।

(१) उनके धार्मिक विश्वासों के विषय में कहा जाता है कि वे नागपूजक थे । उनके

+ On the other hand, geologists of note believe that they can prove that the northern part of the Atlantic Ocean was not always covered by water and they think it was by this way that man came from the Old World to the New, in times when the climatic conditions of our part of the globe were still considerably different from those of history.

(Harmsworth History of the World, p. 5675)

* Since it has been proved that the human race in American soil can be traced back to the same periods of the earth's history as in the Old World, the question whence the first man came there has lost much of its importance. It is true that the cradle of the human race can hardly have been in America, to cite one objection, the anthropoid apes, which are indispensable to the theory of evolution as the connection-link between the animal world and man, have at no time been native there any more than they are now, as the fossil finds in all American excavation have proved. (Ibid, p. 5676).

यहाँ पंखधारी सर्प पर अब भी विश्वास किया जाता है ×। इसीलिए भारतवासी उनको नाग कहते हैं। यह इतिहाससिद्ध बात भारत में प्रसिद्ध है कि अमेरिका (पाताल) में नाग लोग ही वास करते हैं। यह बात केवल प्रसिद्ध ही नहीं है, प्रत्युत यहाँ नागलोक मौजूद है, जहाँ से ये वहाँ गये है। बंगाल का नागापर्वत अब तक प्रसिद्ध है। बंगाल में नाग नामक आस्पद भी एक खानदान का अब तक विख्यात है। प्रोफेसर नाग जो हिंदू विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं, उसी खानदान के हैं। 'मानवेर आदि जन्मभूमि' की भूमिका में लिखा है कि **'इन नाग महाशयों का गोत्र भी वासुकी ही है'**। छोटा नागपूर इन्हीं के नाम से आबाद है। उत्तरीय एशिया के वर्णन में हमने दिखलाया है कि नेपाल में एक लाल रंग की जाति भी पाई जाती है। इसके भी पूर्व हमने लिख दिया है कि काकेशिल दल में ही एक जाति ने रक्तवर्ण प्राप्त कर लिया था। यह दल बड़ा बलवान् था। इसकी उत्पत्ति क्षत्री जाति से ही हुई थी। उसी के प्रभाव से कुछ दिन तक क्षत्रीवर्ण लाल रंग का ही आदर्श रूप माना जाता था। किन्तु कारणवश यह दल पतित हुआ और नागा पर्वत पर रहने लगा। अतः नाग नाम से प्रसिद्ध हो गया और आर्यों के विद्वेष से वह दल पाताल देश को चला गया। यही नाम अपने साथ ले गया और नाग शब्द का असली इतिहास भूलकर अपने को नागों का वंशज मानने लगा और नागों की पूजा करने लगा। इस दल के कुछ लोग प्राचीन काल में यहाँ आते जाते थे। इस विषय की भागवत में एक कथा है। वहाँ लिखा है कि—

नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय चोरगाः।
तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया॥ (भागवत)

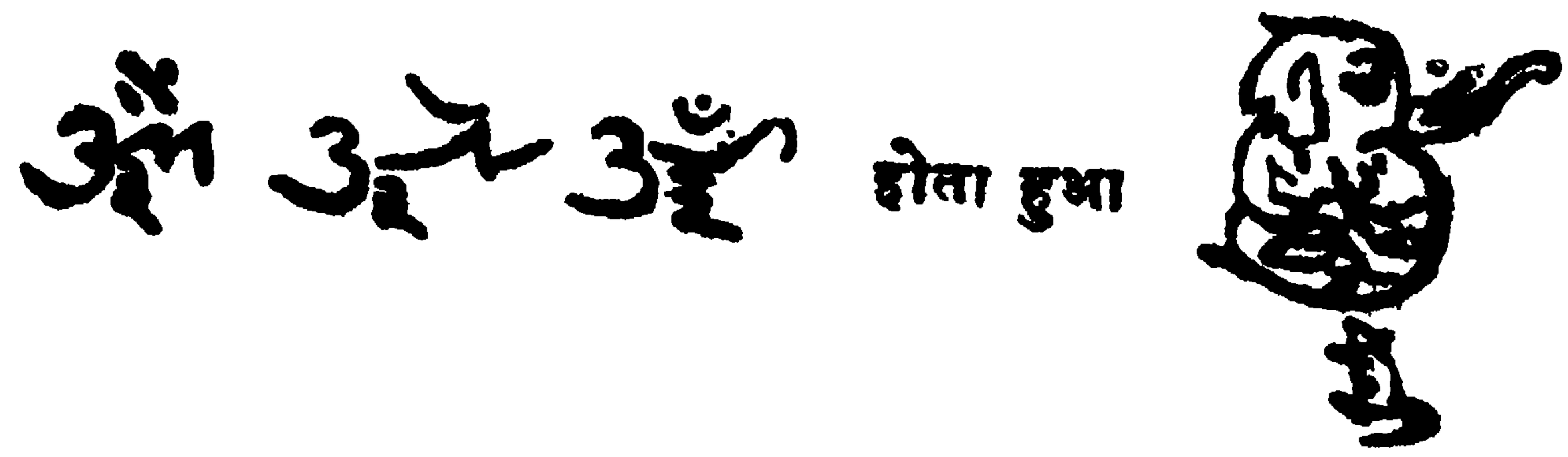
अर्थात् वासुकी की मदद से नागों द्वारा दी हुई नर्मदा पुरुकुत्स को रसातल ले गई। इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि उनको यहीं पर नागत्व प्राप्त हुआ और वे अपने साथ ये विचार वहाँ भी ले गये और पीछे से इतिहास के स्थान में वही विचार धार्मिक पूजा बन गये। इस देश के जंगलियों में भी अब तक नागपूजा होती है। इससे ज्ञात होता है कि यह रिवाज उनके ही पूर्वजों से चला है जो बीजरूप से अब तक मौजूद है।

इसके अतिरिक्त इनके आर्यत्व का बोध करानेवाला और इनको असल भारती सिद्ध करनेवाला एक प्रबल प्रमाण यह है कि अमेरिका में ये एक देवता बनाते हैं, जिसका धड़ आदमी का और शिर हाथी का होता है। यह विचित्र जन्तु गणेश की मूर्ति से बिलकुल मिलता है। प्राच्यविद्यामहार्णव नगेन्द्रनाथ सेन हिन्दी विश्वकोष में उपनिवेश शब्द पर लिखते हैं कि 'अमेरिका में तो हाथी होता ही नहीं फिर यह हाथी का चित्र उनके यहाँ सिवा भारत के और कहाँ से गया'? हम भी कहते हैं कि हाथी अमेरिका में नहीं होता। अतः यह देवता भारत से ही वहाँ गया है। परन्तु प्रश्न यह है कि भारत में ही यह इस प्रकार से क्यों बनाया जाता है? यह सभी जानते हैं कि गणेश आरम्भ का देवता है।

× The religious conception, on which the symbol of the feathered snake is so widely spread over American soil that we can not at once assume it to have been borrowed from any similar neighbouring worship.

(Harmsworth History of the World, p. 5771)

इसकी उत्पत्ति ओ३म् से हुई है। क्योंकि यही आरम्भ में मङ्गलाचरण के लिए लिखा जाता है। यही लिखते लिखते शीघ्रता के कारण गजानन बन गया है। ओ३म् का रूप,



इस प्रकार का बन गया है।

इसमें अकार शिर और शरीर है, ओं (ॊ) का 'ा' यह भाग सूँढ़ है, ओं का '`' यह भाग एकदन्त है और ओं का '.' यह भाग मोदक है। प्लुत का '३' यह चिह्न मूषक वाहन है। इस प्रकार मोदकभोजी, मूषकारोही और एकदन्तधारी गजानन की उत्पत्ति हुई है।

तिलक महोदय ने C. Reginald Enock 'The Secret of the Pacific' नामी पुस्तक के पृष्ठ २४८—२५२ के आधार से गीतारहस्य पृष्ठ ५९० में लिखा है कि 'प्राचीन शोधकों ने यह भी निश्चय किया है कि मिश्र आदि पृथिवी के पुरातन खंडों के देशों में ही नहीं, किन्तु कोलंबस के कुछ शतक पहिले अमेरिका के पेरू तथा मेक्सिको देश में भी स्वस्तिक चिह्न शुभदायक माना जाता था'। यह स्वस्तिक भी ओ३म् का ही अपभ्रंश है। यहाँ भी ॐकार ही, ॐ



हो गया है। जिस तरह यहाँ ॐ का स्वस्तिक और गणपति बना है, उसी तरह अमेरिका में भी बनाया गया है। हमने ॐ और गजानन के विषय में जो कुछ लिखा है यह हमारी कल्पना नहीं है। गणेशपुराण में यह वर्णन शुरू में ही आया है। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि—

ॐकाररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः।
यं सदा मुनयो देवा स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि॥
आकाररूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः।
यथा सर्वेषु कर्मसु पूज्यते सो विनायकः। (गणेशपुराण)

अर्थात् गणपति ॐकाररूप ही हैं। इसीसे सब कर्मों के आदि में उसकी पूजा होती है। इस प्रमाण से हम कह सकते हैं कि ॐकार और स्वस्तिक की दुर्गति भारत अथवा अमेरिका में हुई। चूँकि दोनों देशों में एक ही जाति के लोग हैं, अतः दोनों में ओंकार का एकसमान ही रूप पाया जाता है।

(२) उनका रूपरंग वैसा ही है, जैसा नैपाल में बसे हुए कुछ लाल वर्णवाले मंगोलियनों का है। आर्य क्षत्रियों का रंग पूर्व में ही लाल हो चुका था। अतः पातालवासियों का रंगरूप आर्यों के प्रारंभिक रंगरूप से दूर नहीं जाता। यद्यपि अमेरिका के जल वायु ने भी उन पर बहुत बड़ा असर किया है, जिससे उनके रूपरंग में फ़र्क़ पड़ा है, पर वह इतना दूर नहीं गया कि आर्यों के साथ उसका मेल ही न हो सके।

(३) उनकी कारीगरी और रिवाज भी उनको आर्य सिद्ध करते हैं। दुनिया में इजिप्ट के पिरामिड बहुत प्रसिद्ध हैं और उनमें रक्खे हुए हज़ारों वर्ष के मुर्दे भी प्रसिद्ध हैं। ये दोनों

बातें कारीगरी की दृष्टि से बहुत अद्भुत हैं। पर मज़ा यह है कि अमेरिका में भी ये दोनों बातें उसी तरह पाई जाती हैं, जिस तरह इजिप्ट (मिश्र) में ×। इससे अतिरिक्त इजिप्ट से मिलती हुई, इनकी दूसरी बात सूर्यपूजा है। वहाँ सूर्यदेवता के भी चिह्न पाये जाते हैं +। हम गत पृष्ठों में अच्छी तरह सिद्ध कर आये हैं कि इजिप्टनिवासी भारती आर्य हैं। 'हार्म्सवर्थ हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' में लिखा है कि 'इजिप्टवाले उत्तर अमेरिकन की ही तरह के हैं' *। इससे और भी दृढ हो जाता है कि पातालनिवासी भी आर्य ही हैं।

(४) उनके इतिहास से तथा पूर्वकाल में उनके यहाँ भारतीयों के आने जाने से भी ज्ञात होता है कि वे आर्य ही हैं। 'हार्म्सवर्थ हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' में लिखा है कि उनके यहाँ अब तक रामसीतव नामी उत्सव होता है ÷। इस उत्सव के लिये 'मानवेर आदि जन्मभूमि' में बाबू उमेशचंद्र विद्यारत्न लिखतें हैं कि 'आज भी अमेरिका में रामसीतोत्सव होता है' †। इस प्राचीन इतिहास से भी वे भारती आर्य ही सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त उनके यहाँ वैवस्वत मनु की जलप्लावनवाली कथा भी अब तक चल रही है। इससे भी वे आर्य ही साबित होते हैं और इसीलिए यहाँ से उनके यहाँ अनेक बार आर्यगण गये हैं। आर्य

× The question may be left undecided as to whether the modern designation of the most important PyraMids of Teotihuacan as 'the hill of Sun, the hill of the Moon' has been justified by archaeological inquiry, at any rate, the name 'path of the dead' is correct for the long range of little hills which streches out behind the larger Pyramids. Teotihuacan was like Milta, not only a place of pilgrimage for the living but also a sacred place in which to be buried was to be sure of salvation.

(Harmsworth History of the World, p. 5774)

The custom of preserving the bodies of the dead prevailed among the early people of America. The illustration shows a mummified body prepared for burial. (ibid, p. 5826)

+ The piece of terra-cotta here ellustrated showing the sun-god of the ancient people of Chimu was discovered near Trujillo Mr. T. Hewith Myring. Its antiquity is undoubted dating possibly to 5,000 B. C. (ihid, p. 5817)

* Its people were more like north Amerlcan Indian than anyting else. (ibid, p. 2014)

÷ Of a different charactor was the third feast or Situa Raimi, which fell rt the time of the spsing dquinox in September.

(ibid, p. 5867)

† एखनउ दक्षिण अमेरिकाय रामसीतोया उत्सव सम्पन्न हइया थाके।

(मानवेर आदि जन्मभूमि)

ही नहीं प्रत्युत अनेक बार यहाँ के निकाले हुए अत्याचारी आर्य जिनको असुर वा राक्षस कहा जाता था, वे भी वहाँ गये हैं । चण्डीपाठ में लिखा है कि—

दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥ (सप्तसती)

अर्थात् शुंभ और निशुंभ राक्षसों को जब देवी ने मार डाला, तब शेष जो बचे वे भागकर पाताल (अमेरिका) को चले गये । इनके सिवा यह सभी जानते हैं कि बलि नामक किसी राजा को भी पाताल देश में भेज दिया गया था । अमरकोष में लिखा है कि '**अधोभुवन–पाताल–बलिसद्म–रसातलम् । नागलोकोऽथ कुहरं सुषिरं विवरं बिलम्** ' अर्थात् पाताल, रसातल और बलि का घर आदि सब एक ही वस्तु हैं । नागलोक भी उसी को कहा गया है । इस नागलोक या पाताल देश में राजा बलि की राजधानी दक्षिण अमेरिका में बलिविया (Bolivia) नाम से प्रसिद्ध है । अमेरिकावालों का आदि स्थान यही है * । हिंदी विश्वकोष के उपनिवेश शब्द में लिखा है कि ' आनाम में खोदने पर बहुत से शिलालेख निकले हैं, जिनसे पाया जाता है कि इनके राजाओं की उपाधि सूर्यवंशी इंद्र थी । सम्भव है, अङ्ग देश से सूर्यवंशी राजकीय शाखा अमेरिका में ' इङ्क ' नाम से प्रसिद्ध हुई हो । पीरू की इमारते और पहाड़ों में बनाई हुई गुफाएँ भारत से मिलती हैं ' । इन इतिहासों से भी उनका आर्य ही होना पाया जाता है ।

(५) भारत देश में ही उनके लिए अधिक मालूमात पाई जाती है । अब तक जो कुछ लिखा गया है, क्या उससे यह नहीं पाया जाता कि भारत देश उस देश के मूल को केवल जानता ही नहीं था, प्रत्युत भारत के ही निवासी वहाँ जाकर बसे हैं ? भारत में प्राचीन से प्राचीन और नवीन से नवीन साहित्य में अमेरिकावालों का ज़िक्र मौजूद है । ऐतरेय ब्राह्मण के ऐन्द्र महा अभिषेकप्रकरण में लिखा है कि '**तस्मादेतस्यां प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो येऽपाच्यानां स्वाराज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते स्वराळित्ये नानाभिषिक्तानाचक्षते** । ' इस में नीच्यों और अपाच्यों के राजाओं का वर्णन है और कहा गया है कि ये पश्चिम दिशा में हैं । भूगोल के ज्ञाता जानते हैं कि अमेरिका का मध्य भाग भारत से पश्चिम ही है । उत्तर अमेरिकाके मेक्सिको स्टेटमें अपाच्य नामक मूलनिवासी अब तक रहते हैं । जिससे जाना जाता है कि अति प्राचीन आर्य साहित्य में पातालवासियों का वर्णन है । इसके अतिरिक्त महाभारत में लिखा है कि उद्दालक मुनि पाताल में ही निवास करते थे, अर्जुन की उलोपी स्त्री भी वहीं की थी और वेदव्यास भी वहाँ एक दफे गये थे । ये सब बातें स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ' सत्यार्थप्रकाश ' में लिखी हैं । इससे ज्ञात होता है कि महाभारत के युद्ध तक आर्यों का अमेरिकामें गमनागमन अच्छी तरह

* Now as we find them on the Eastern slopes of the Cordillers from the peninsula of Goujira in the north down to the borders of Chili and in specially large numbers in Eastern Bolivia, the original home of all these tribes is probably to be sought in this direction. (Harmsworth History of the World, p. 5680)

था। किन्तु वहाँ सर्व प्रथम वह आर्य जाति गई, जो अपने साथ स्वस्तिक, गजाननपूजा, नागपूजा और रामसीतोत्सव आदि भाव ले गई। इस तरह से उक्त पाँचों प्रश्नों का यही उत्तर आता है कि मूल अमेरिकानिवासी भारती आर्य ही हैं, इसमें सन्देह नहीं।

हमने इस तरह से यहाँ तक सारे भूगोल के प्रधान प्रधान देशों में शुद्ध आर्यों की शाखा अथवा उनकी मिश्रित प्रशाखाओं को ही बसते हुए पाया। अतः हमारा यह दावा है कि आदि में वैदिक आर्य ही पैदा हुए और उन्हीं की शाखाप्रशाखाएँ सारे संसार में फैली हैं। यहाँ तक वर्णित देशों के अतिरिक्त हमने जिन देशों का वर्णन नहीं किया, वे बहुत थोड़े हैं और उनमें इन वर्णित देशों की ही शाखाप्रशाखाएँ बसती हैं। अतएव आर्यों से ही सारी पृथिवी बसी हुई नज़र आती है। 'हार्म्सवर्थ हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' में संसार की समस्त पुरानी जातियों के चित्र दिये हुए हैं। उन चित्रों में सबके पास धनुषबाण पाया जाता है, जिससे ज्ञात होता है कि संसार की समस्त जातियाँ आदि में धनुषबाण चलाती थीं। धनुषबाण आर्यों का ही शस्त्र है, इसमें प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। अतः सिद्ध है कि संसार के भिन्न भिन्न देशों में बसनेवाले एक वंश के हैं और वह महान् वंश आर्यवंश ही है।

दुःख से कहना पड़ता है कि आर्यों से जुदा होकर समस्त शाखाएँ आचारहीन होकर अनार्य हो गईं। वैदिकता नष्ट होने से ही अनार्यता होती है। वैदिकता का असल अर्थ वर्णाश्रम-धर्म का पालन है। वर्णाश्रमधर्म के नष्ट होते ही वैदिकता नष्ट हो जाती है और अनार्यता आ जाती है। अब तक के विस्तृत वर्णन के द्वारा हम दिखला आये हैं कि वैदिक आर्यों में विद्या न पढ़ने, आचारहीन होने और पूज्यों की आज्ञा भङ्ग करने से ही अनार्यता का प्रवेश आरंभ हुआ। उन्होंने उसे तुरन्त ही ताड़ लिया और आचारहीनों को जाति बाहर करके ही शेष आर्यसमाज को पवित्र रखनेका प्रबन्ध किया। पर त्यक्त समुदाय जाति अपमान से लज्जित होकर शत्रुभाव से वैदिकों से लड़ता रहा। अतः कभी पराजित होकर, कभी अपनी इच्छा से और कभी निर्वासित होकर पृथ्वी के अन्य भागों में जा जाकर बस गया। उन बसे हुओं के साथ व्यापार करने, उन पर राज्य करने और उनको उपदेश करने के लिए भी यहाँ से आर्यगण समय समय पर जाते रहे और वहीं बस गये, तथा पूर्व बसे हुओं के साथ मिल भी गये। इस तरह से समस्त भूभाग पतित आर्यों से आबाद हो गया और यहाँ की परिभाषा के अनुसार पतित, विदेशी, आर्य, असुर, राक्षस, अनार्य, कपि, महिष, नाग और न जाने किन किन नामों से पुकारे जाने लगे। कुछ ही समय में शुद्ध वैदिक धर्म और शुद्ध आर्य शासन के अभाव से उनके बिगड़े हुए स्वभाव और भी अधिक उग्र हो गये और नाना प्रकार के अनाचार, असभ्य रिवाज, मूर्खताजन्य पाप और जंगली स्वभाव ने उनको मनुष्यशरीर में ही पशु बना दिया।

जिन देशों का वर्णन हमने इस प्रकरण में किया है, उन देशों के रहनेवालों के रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों और धर्म-कर्मों तथा विश्वासों का विस्तारपूर्वक वर्णन उन उन देशों का इतिहास लिखनेवालों ने किया है, जिससे उनकी असभ्यता और अनार्यता का पता मिल जाता है। हम यहाँ विस्तारभय से वह सब नहीं लिखना चाहते। हम तो यहाँ केवल यही दिखलाना चाहते हैं कि भारतीय आर्यों ने उनको इस पतित दशा से छुड़ाने के लिए उनमें

धर्मप्रचार का आयोजन किया। उन्होंने देखा कि बहिष्कार से लाभ के स्थान में हानि भी हुई है। एक बहुत बड़ा मनुष्यसमाज आचारहीन और पापी हो गया है, तथा शत्रु समय समय पर दुःख देने लगा है और आर्य जनता उससे सशंकित रहने लगी है। इस शंका के उद्धार के लिए आर्यों ने धर्मप्रचार की सर्वोत्कृष्ट नीति का आयोजन किया। जातिबहिष्कार अथवा कठोर शासन की अपेक्षा धर्मप्रचार के द्वारा लोगों के मन पवित्र कर देना सब सुधारों की जड़ समझा। इस लिए उन्होंने एक बहुत ही उत्तम क़ानून बनाया। उस कानून में लिखा कि—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।

(मनुस्मृति)

अर्थात् ब्रह्मावर्त के रहनेवाले ब्राह्मणों से समस्त पृथ्वी के मनुष्य अपने चरित्र सीखें। क़ानून तो बन गया, पर संसार के लोग इसे मानें कैसे और अपने अपने चरित्र सुधारें कैसे ? सुधार तभी हो सकता था कि या तो संसार के लोग यहाँ आवें, या यहाँवाले उन उन देशों में जायँ। दोनों दशाएँ उपस्थित हुईं। इतिहास से पता मिलता है कि ईरान, सीरिया, ग्रीस और चीन आदि देशों से लोग यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए आया करते थे +। यहाँवाले भी आस्ट्रेलिया, अमेरिका, सीरिया, ग्रीस और चीन आदि देशों में शिक्षा देने के लिए जाया करते थे। ऋषि पुलस्त्य धर्मप्रचार करने के लिए आस्ट्रेलिया गये, वेदव्यास अमेरिका और बलख़ को गये, बौद्ध संन्यासी पेलिस्टाइन, ग्रीस और चीन को जाते रहे ×। अर्थात् पुलस्त्य से लेकर सन् ईस्वी के आरम्भ तक आर्य ऋषि, मुनि और संन्यासी वैदिक धर्म का प्रचार दूसरे देशों में करते रहे और वहाँ के असभ्य लोगों में सभ्यता का संचार होता रहा।

+ ईरान का जामास्प हकीम भारत में प्रतिवर्ष आया करता था और जैमिनि का शिष्य हुआ था। इसी तरह तिब्बत में हज़रत ईसा का एक पुराना जीवनचरित्र मिला है, उससे पाया जाता है कि हज़रत ईसा ने भारत में आकर धर्म के सिद्धान्त सीखे और बहुत दिन तक काशी आदि स्थानों में रहे। चीननिवासी सोमाचीन तथा फ़ाहियान और ह्यूनत्सांग आदि भी विक्रम की चौथी शताब्दी में यहाँ से पुस्तकें ले गये, संस्कृत जाननेवाले अनेकों ब्राह्मण ले गये और स्वयं अनेकों बातें सीख गये।

The doctrine of the transmigration of souls was indigenous to India and was brought into Greece by Pythagoras. (History of Literature.)

We find that it (India) was visited for the purpose of aquiring knowledge by Pythagoras, Anaxarches, Pyrths and others who afterwards became eminent philosophers in Greece. (History of Philosophy,)

× A very considerable portion of these people was of the Budhistic faith and by their number and martial powers ultimately succeeded in expelling from northern Greece the classes of the Solar race. (india in Greece.)

धर्मप्रचार होता रहा, पर इस गमनागमन से जहाँ कुछ लाभ हुआ होगा, वहाँ हानि भी इतनी हुई है कि जिसकी पूर्ति होनी कठिन है। हम देखते हैं कि गमनागमन के संसर्ग से उन उन देशों के पतित मनुष्यों का आगमन इस देश में समय समय पर हुआ, जिससे आर्यों में भी अवैदिकता का समावेश हुआ। इस तरह से जातिबहिष्कार, धर्मप्रचार और पुनः जातिसम्मेलन आदि जितने कुछ आर्योचित मृदु उपाय अब तक हुए हैं, सबके परिणाम में लाभ के साथ साथ कुछ न कुछ हानि भी हुई है। आगे हम उसी आगमन, सम्मेलन और तज्जन्य हानि का वर्णन करते हैं।

विदेशियों का भारत में आगमन।

गत पृष्ठों में हम लिख आये हैं कि भारतवर्ष से अनेक जातियाँ पृथिवी के अनेक भागों में जाकर बस गईं और दीर्घकाल तक वैदिक आर्यों से पृथक् रहने के कारण अपने अपने स्वभाव, रूप रंग, सूरत शकल और आचार व्यवहार को बदल बदल कर कुरूप और अनाचारिणी हो गईं। यहाँ के प्रवासियों, धर्मप्रचारकों और व्यापारियों तथा राजनैतिक, यात्रियों ने उन उन देशों में सभ्यता का प्रचार किया, इसलिए उनके सहारे विदेशियों का इस देश में फिर आना शुरू हुआ।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिन लोगों ने अनार्यता को जन्म दिया था और अपनी अनार्यता के कारण विदेश को भागे थे, उन्हीं लोगों ने यहाँ आकर, आर्यों में मिलकर अवैदिकता और अनार्यता का प्रचार किया, जिससे आर्यों का हर प्रकार से पतन हुआ। यह इतिहाससिद्ध बात है कि इस देश में पृथिवी के प्रायः सभी प्रधान प्रधान देशों के लोग आकर बसे हैं। यहाँवालों ने उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार करके अपने में सम्मिलित किया है। बहुतों को तो अपना गुरु मान लिया है। और उनके उपदेशों को मानकर अपना सर्वस्व नष्ट कर लिया है।

यह बिलकुल सत्य है कि प्राचीन काल में अनार्यों को आर्य धर्म में सम्मिलित करने का रिवाज था। पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा राजपूताने के इतिहास में लिखते हैं कि '**वैदिक काल में व्रात्य अर्थात् पतित एवं विधर्मियों को वैदिक धर्म में लेने के समय 'व्रात्यस्तोम' नामक शुद्धि की एक क्रिया होती थी। जिससे उन व्रात्यों की गणना द्विज वर्णों में होती थी।** व्रात्यस्तोम का वर्णन सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण प्रकरण १७ और लाट्यायन श्रौत सूत्र (६-८) में मिलता है। इससे विदित होता है कि आर्यों ने बिछड़े हुए अपने पतित भाइयों को फिर से आर्य समाज में प्रविष्ट किया। यहाँ हम इस प्रकरण में विदेशियों का इस देश में आना, उनके आचारव्यवहार की रूपरेखा, आर्यों के साथ उनका सम्मेलन और साहित्य-प्रचार आदि विषयों को विस्तारपूर्वक लिखते हैं, जिससे ज्ञात हो जायगा कि किस प्रकार इन विदेशियों ने वेदों की उपेक्षा की और वह उपेक्षा किस प्रकार हमारे पतन का कारण बनी।

विदेशियों के प्रथम दल का आगमन।

सबसे प्रथम जिन विदेशियों के भारत प्रवेश का इतिहास मिलता है, वह आस्ट्रेलिया-निवासियों का है। हमने पूर्व पृष्ठों में कहा है कि ऋषि पुलस्त्य धर्मप्रचार के लिए आस्ट्रेलिया

गये थे । पर वहाँ के राजा तृणबिन्दु की पुत्री से उनका विवाह हो गया। उसी से विश्रवा पैदा हुआ, जो प्रसिद्ध राजा रावण का पिता था ×। रावण कैसा विद्वान् और योद्धा था, यह किसी से छिपा नहीं है। उसने राजा होकर समस्त दक्षिणी टापुओं (आस्ट्रेलिया, अफ़रीका, मेडागास्कर और उस समय के अन्य खुले द्वीपें) को अपने क़ब्जे में करके चारों ओर से समुद्रद्वारा घिर और बड़ी बड़ी सोने की खानों से भरा हुआ लङ्काद्वीप, अपनी राजधानी के लिए चुना और वहीं पर अपनी राजधानी क़ायम कर दी। कुछ काल के बाद रामेश्वर के पास से लङ्का तक पड़े हुए खण्ड पहाड़ोंके द्वारा थोड़े से नावों के बेड़ों के सहारे लङ्कानिवासी रावण आदि दक्षिण भारत में आने जाने लगे। वे जिस मार्ग से आते जाते थे, उस मार्ग के चिह्न अब तक बने हुए हैं। भगवान् रामचन्द्र ने पूर्व काल में उन्हीं पहाड़ी भग्नावशेषों पर पुल बनाया था। इस पुल के इस पार मद्रास प्रान्त में आर्यों द्वारा निर्वासित कुछ पतित आर्य रहते ही थे और जाति अपमान के कारण आर्यों से द्वेष भी रखते थे। अतः इनकी उनकी मित्रता होना सरल और सहज था। हुआ भी वही, दोनों दल दक्षिण प्रान्त के अनेक स्थानों में रहने लगे। पहिले के पतित आर्य अपने को आर्य और आनेवाले नवीनों को अनार्य कहा करते थे। ये दोनों शब्द मद्रासनिवासियों में अब तक अय्यर और नय्यर के रूप से प्रचलित हैं, जो वास्तव में आर्य और अनार्य के अपभ्रंश हैं। मद्रास प्रांतवाले महाशय या जनाब के स्थान में अब तक 'अय्या' शब्द का प्रयोग करते हैं, जो बिलकुल आर्य का ही रूपांतर है।

इन दोनों दलों में नवीन दल बहुत ही काले रंग का था। वह असभ्य भी था, इसीलिए उसे अनार्य कहा करते थे। दुर्दैव से रावण और उसके बहनोई अर्थात् सूर्पणखा के पति से युद्ध हो गया। युद्ध में रावण के हाथ से सूर्पणखा का पति मारा गया। सूर्पणखा विलाप करती हुई, रावण के पास गई और कहने लगी कि तूने मुझे विधवा कर डाला, अब मैं क्या करूँ। सान्त्वना के लिए रावण ने सूर्पणखा से कहा कि तू शोक मत कर, मैं तुझे खर नामक योद्धा की सरदारी में चौदह सहस्र फ़ौज देकर भारत के दक्षिण अरण्य की स्वामिनी बनाता हूँ। वहाँ जा और आनन्द कर। तदनुसार वह राक्षसों की फ़ौज के साथ दण्डकारण्य में रहने लगी +। इस तरह से रावण का सैनिक बल आर्यों के देश में जम गया। इसी बीच में कारणवशात् रामचन्द्र को वनवास हुआ।

× पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः।
पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादिव पितामहः॥
स तु धर्मप्रसंगेन मेरोः पार्श्वे महागिरेः।
तृणबिन्द्वाश्रमं गत्वाप्यवसन्मुनिपुंगवः॥ (वाल्मीकि–रामायण)

+ अब्रवीत् किमिदं भद्रे वक्तुकामासि मां द्रुतम्।
सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत्॥
कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात्।
स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे॥
एवमुक्तो दशग्रीवो भगिन्याक्रोशमानया।
अब्रवीत् सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः॥

ये घूमते हुए दण्डकारण्य पहुँचे। उन पर सूर्पणखा आसक्त हुई और आगे जो हाल हुआ, वह सबको मालूम है। इस तरह से मद्रास प्रान्त में वैदेशिक अनार्यों का आगमन और सम्मिश्रण हो गया। अय्यर और नय्यर सब एक ही प्रकार के हो गये और वनवासी आर्य तपस्वियों की दुर्गति करने लगे। बहुत दिन के बाद समय पाकर नागा पर्वत के नाग लोग भी इन में आ मिले और अन्त में इनकी एक शाखा अफ़रीका से भी निकल कर मेसोपोटामिया होती हुई यहाँ आ गई +। इस तरह से इनका एक अच्छा जमाव यहाँ हो गया। आस्ट्रेलिया से आये हुए इन लङ्कानिवासियों का क्या स्वभाव था, और यहाँ के रहनेवालो के साथ उनका क्या व्यवहार था, यह सब लिखने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ये आस्ट्रेलियानिवासीय हैं या नहीं। हमारे देश का इतिहास जो हमने वाल्मीकि रामायण से उद्धृत करके पिछले पृष्ठ में लिखा है, यही कहता है कि ये लोग दक्षिण मेरु के पास स्थित एक पहाड़ी देश के रहनेवाले थे, जहाँ का राजा तृणबिन्दु था। वहाँ से लंङ्काद्वीप होते हुए बहुत पहिले ही ये द्रविड देश में बस गये थे। महाभारत में लिखा है कि—

नन्दिन्या गोस्तनात्पूर्वं जातैर्म्लेच्छैर्विनिर्मितः।
द्राविडाख्यो महादेशः स्ववासायेति निश्चितम्॥ (महाभारत)

अर्थात् वसिष्ठ की नन्दिनी गौ की कथा के पूर्व ही म्लेच्छ जातियों ने द्रविड देश आबाद कर लिया था। वाल्मीकि रामायण और महाभारत के इन दोनों प्रमाणों से इनका आस्ट्रेलिया से आना सिद्ध होता है। इन प्रमाणों के अतिरिक्त इनकी भाषा, रूप, गठन आदि के मिलन से पाश्चात्य विद्वानों ने भी निश्चित कर दिया है कि ये आस्ट्रेलियानिवासी ही है। भारतवर्ष के इतिहास में ई० मार्सडन बी० ए० लिखते हैं कि, कुछ लोग ख्याल करते है कि द्रविड लोग दक्षिण से आये, अथवा उस देश से आये, जो अब दक्षिणी महासागर मे डूब गया है और दिखलाई नहीं पडता। या उन टापुओं से आये, जो एशिया और आस्ट्रेलिया के दक्षिण–पूर्व में जुड़े थे और अब समुद्र में डूब गये हैं ×। इसी तरह

अलं वत्से रुदित्वा ते न भेतव्यं च सर्वशः।
भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पार्श्वतः॥
चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति।
आगच्छन् खरः शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः॥
स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम्।
सा च शूर्पणखा तत्र न्यवसद्दण्डके वने॥ (वाल्मीकि रामायण)

+ इसी को वेदम वेंकट चालिया बी० ए० ने लिखा है कि, ५०० वर्ष ईस्वी सन् पूर्व भारत में आई, पर यह बात ग़लत है। इसको आये बहुत दिन हुए।

× Others think that the Dravids came from the south, either from a great country which very long ago stretched far into the Indian Ocean to the south of India, but now lies sunk beneth the sea and cannot be seen, or from the islands which stretch away from the south-east of Asia to Australia, and were formerly joined to it by land now sunk beneath the sea. (History of India by E. Marsden, B. A.)

मिस्टर मैनिंग अपने 'प्राचीन और मध्यन्तरीय भारत' नामी ग्रंथ में अनेक विद्वानों की सम्मतिओं को उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि मिस्टर नॉरिस की सम्मति है कि द्रविड भाषाएँ सब एक दूसरी से सम्बन्ध रखती हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत वे आगे बढ़कर यह कहते हैं कि द्रविड और आस्ट्रेलिया की भाषाओं मे निश्चित रूप से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मिस्टर जान हट्ट भी जो बहुत दिन तक आस्ट्रेलिया में रहे हैं, वे भी इसी तरह कहते हैं। साथ ही डॉक्टर रोस्ट का भी यही विचार है। वे भी कहते हैं कि आस्ट्रेलिया-निवासियों, मंगोलियनों और भारतीय द्रविडों की भाषा के व्याकरण का साँचा बिलकुल ही एक है ×। मिस्टर क्लैडवेल कहते हैं कि इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है कि सीलोन—लंका—से आकर लोगों ने दक्षिणी ज़िलों में निवास किया है +। इन प्रमाणों से अच्छी तरह प्रकट हो जाता है कि ये द्रविड दक्षिणी टापुओं के अर्थात् आस्ट्रेलिया आदि के रहने वाले हैं। इन्ही को यहाँवाले असुर, राक्षस, नाग, महिष और कपि आदि कहते थे *। इनके ये नाम अन्यायवश नहीं रक्खे गये थे, किन्तु इनके कर्म ही इस प्रकार के थे। यह बात बहुत पुराने ज़माने से प्रसिद्ध है कि इन असुरों, राक्षसों, यक्ष, रक्ष और पिशाचों का स्वाभाविक खाना पीना मांस मद्य था। मनुस्मृति अध्याय ११, श्लोक ६५ में लिखा है कि **'यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्'**। अर्थात् मद्य मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ ही यक्ष, रक्ष और पिशाचों का अन्न है। इसी तरह वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि—

× Mr. Norris fully concurs in this opinion but further observes decided relationship between these languages and those of Australia.

Mr. John Hutt, who was long resident in Australia, has simultaneously made the discovery and for the truth of these observations Dr. Rost of the Royal Asiatic Society of London may be cited as another independent witness, he having in 1847, submitted a memori on the subject to the late Chevalier Bunsen. Dr. Rost considers it an undeniable fact that the grammaitical skeleton of the Australian, Mongolian, and South Indian languages is essentially the same. (Ancient and Medieval India.)

+ It is undeniable that immigration from Ceylon to the southern districts of India has occasionally taken place. (Comparative Grammer of Dravidian Languages, p. 118.)

* They are called Dasas, other native tribes are called Nagas, Asuras, Danvas and Deityas. They are said to be black-skined, to have a vile caloar, to eat raw flesh, to have flat noses and to have no religion. (History of India, by E. Marsden.)

भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः।
ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः॥ (वा० रामायण)

अर्थात् ये मनुष्यमांस खानेवाले राक्षस दण्डकारण्यवासी मुनियों को खा जाते हैं। इन्हीं लोगों में से मारीच और सुबाहु विश्वामित्र के यज्ञ में क्या क्या कृत्य करते थे, वह भी देखने योग्य है। वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड में लिखा है कि '**तौ मांसरुधिरौघेण वेदिं तामभ्यवर्षताम्**' अर्थात् मांस और रुधिर से यज्ञवेदि को पाट दिया था। विश्वामित्र रामचन्द्र से कहते हैं कि '**इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव**'। अर्थात् हे रामचन्द्र! इन लोगों ने इसी तरह इन दोनों राज्यों का सत्यानाश कर दिया है। इसी तरह रामचन्द्र जिस समय दण्डकारण्य में पहुँचे, उस समय भी वहाँ के तपस्वियोंने उनसे कहा कि—

रक्षांसि पुरुषादानि नानारूपाणि राघव।
वसन्त्यस्मिन् महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः॥
उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं ब्रह्मचारिणम्।
अदंत्यस्मिन् महारण्ये तान्निवारय राघव॥ (वा० रामायण)

अर्थात् हे रामचन्द्र! अरण्य में अत्यन्त क्रूर और मनुष्यभक्षक लोग रहते हैं। वे हम तपस्वियों और ब्रह्मचारियों को मारके खा जाते हैं। अतः किसी प्रकार इनका निवारण कीजिये। रामचन्द्र को एक दिन इन में से विराध नामक एक राक्षस मिला। वह '**वसनं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम्**'। अर्थात् चर्बी और रुधिरसे सना हुआ व्याघ्रचर्म पहने हुआ था। इसी तरह एक दिन ऋषियों ने रामचन्द्र को अस्थियों का एक ढेर दिखलाकर कहा कि—

एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भवितात्मनि।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने॥
पंपानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत्॥
ततस्त्वा शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः॥ (वा० रामायण)

अर्थात् राक्षसों द्वारा खाये हुए ऋषियों की हड्डियों के ढेर देखिये। पंपा नदीसे चित्रकूट तक तमाम अरण्यवासियों का इन्होंने नाश कर दिया है। अतः हम आपके शरणागत हैं, इनको मारकर हमें बचाइये। इन अत्याचारों के अतिरिक्त ये आर्यों की कन्याओं को जबरदस्ती अपने घर में डाल लेते थे। उनका कौमार्य नष्ट हो जाता था और वे हारकर उन्हीं को अपना पति मान लेती थीं। इसलिए राक्षस, असुर और पैशाच विवाह भी धर्मशास्त्र में सम्मिलित करने पड़े थे। ×। इनके कर्मों का चित्र तुलसीदास ने भी खूब खींचा है। वे कहते हैं कि —

× **हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।**
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
समाविष्टो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते॥

कामरूप जानहिं सब माया । सपनेहु जिनके धर्म न दाया ।
जेहि विधि होय धर्म निर्मूला । सो सब करहिं वेद प्रतिकूला ।
जेहि जेहि देश देव द्विज पावहिं । नगर ग्राम पूर आगि लगावहिं ।
शुभ आचरण कतहुँ नहि होई । वेद विप्र गुरु मान न कोई ।
हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापन कौन मिति
रावण माँगे कोटि घट मद अरु महिष अनेक ।
महिष खाय करि मदिरा पाना । गर्जेउ वज्रघात अनुमाना ।
जाय कपिन देखा सो वैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ।
सुरा पान अरु परतिय भोगा ।

उपर्युक्त वर्णन से उनके कर्म, प्रवृत्ति और आचरण आदि का पता मिलता है । आरम्भ में उनके ये कर्म स्वाभाविक थे, पर पीछे से आर्यों से द्वेष के कारण वे अधिक बढ़े और अन्त में वही धर्म बन गये । धर्मरूप से इस प्रकार के दो तीन रिवाज इन में अब तक बाक़ी हैं ।

ता० २६ नवम्बर सन् १९१६ के 'गुजराती' पत्र में एक ख़बर इस प्रकार छपी थी कि 'श्री जीवरक्षा ज्ञानप्रचारक फंड' (दक्षिण हैदराबाद) की ओर से मिस्टर के० एन्० जोषी लिखते हैं कि यहाँ के विश्वनामी ब्राह्मणों में यह रिवाज है कि, किसी भी शुभ अवसर पर बकरे का मांस अपनी जाति बिरादरी को खिलाते हैं और मदिरा पिलाते हैं'। इनके यहाँ एक और रिवाज है जो अनार्यों का ही है । इसके संबंध में 'भारतना स्त्री रत्नों' नामी गुजराती पुस्तक के पृ० ६२० में राणी लक्ष्मीबाई की कथा में लिखा है कि 'दक्षिण में मलबार प्रदेश है वहाँ के निवासी मलियाली कहलाते हैं । मलबार में कोचीन और ट्रावनकोर दो देशी राज्य हैं ।

ट्रावनकोर राज्य में स्त्रियाँ बहुत स्वतन्त्र हैं । वहाँ वारसे (दायभाग) में स्त्रियों का हक़ मुख्य है । विवाह में वर को स्त्री ही पसन्द करती है मलबार के हिन्दुओं मे हिंदू–शास्त्रसम्मत विवाहपद्धति प्रचलित नहीं है । नाम्बुद्री ब्राह्मणों में सबसे बड़ा लड़का ही विवाह कर सकता है, दूसरे लड़के नहीं । दूसरे लड़के शूद्र (नय्यर) जाति की लड़कियों से विवाह करते हैं । वे उन स्त्रियों के हाथ का पानी नहीं पीते । वे स्त्रियाँ अपने माबाप के घर पर ही रहती हैं । पति रात के समय स्त्री के घर और दिन के समय अपने घर में रहता है । इसलिए उनकी सन्तति माता को ही अधिक जानती है , पिता को नहीं । वे मामा को ही अपना कुटुम्बी समझते हैं । यही कारण है कि वहाँ मामा का वारिस भानजा ही होता है । इस तरह से नय्यर स्त्रियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक पति वरण करके मातापिता के ही घर रहकर जीवन बिताती हैं । ऐसे विवाहों के लिए शास्त्रानुसार संस्कार नहीं करना पड़ता ।

इन वर्णनों से प्राचीन राक्षसों और वर्तमान पतित द्रविडों का मेल बहुत कुछ मिलता है । यद्यपि विशुद्ध द्रविड सब कार्य आर्योचित रीतिसे ही करते हैं, किंतु उनमें ये आर्योचित रीतियाँ नवीन ही हैं । प्राचीन अनार्यों ने तो रावण के समय में अपनी प्रवृत्ति के अनुसार आर्यों के द्वेष से जो अत्याचार किये थे, उनका यदि वर्गीकरण करें, तो मालूम पड़ेगा कि

उनके स्वभाव में मनुष्यमांस खाना और पशु मारना था। वे महा व्यभिचारी थे, शराब पीते थे, मांस रुधिर से यज्ञ करते थे और जंगलों का नाश करते थे। पञ्चतन्त्र में ठीक ही कहा है कि राक्षस लोग **'वृक्षांश्छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्'**। अर्थात् जंगल काटना, पशु मारना और मनुष्यों का खून करना, तो उनके बायें हाथ का खेल था। वृक्ष, पशु और ऋषि, मुनि, जो आर्यों की प्रधान सम्पत्ति है, ये उसी को नष्ट करते थे। इनमें ऐसे अनेकों अवगुण थे। परन्तु इनमें से कई एक आर्यों के समागम तथा ऋषि पुलस्त्य आदि के कारण संस्कृत भाषा भी सीखते थे। रावण बहुत बड़ा संस्कृत का पण्डित था। यही कारण है कि इनके यहाँ दोनों भाषाएँ चलती थी। आर्यों में घुसने के लिए ये संस्कृत को अपनाते जाते थे पर इनके घर की भाषा द्रविड थी। यह बात अब तक बनी हुई है। द्रविड और कोल दोनों जातियाँ अपनी और आर्यों की भाषा साथ ही सीखती हैं। वे संस्कृत अथवा प्रान्तिक आर्य भाषा अवश्य जानती हैं इनसे सम्बन्ध रखनेवाले गोंड़ो ने सन् १८९१ की मर्दुमशुमरी में अपने को रावणवंशी लिखाया है। छत्तीसगढ़ के गोंड़ राजा संग्रामशाह के जो सिक्के मिले हैं, उनमें उसका पौलस्त्यवंश खुदा हुआ है। कहने का मतलब यह है कि ये रावणवंशीय विदेशी यहाँ आकर, संस्कृत सीखकर और ब्राह्मणक्षत्री बनकर आर्यों में मिल गये हैं, उसमें सन्देह नहीं।

विदेशियों के द्वितीय दल का आगमन।

चितपावन कौन है ?

अफ़रीका देश के एक प्रान्त का नाम मिश्र है, जिसको आजकल इजिप्ट कहते हैं। कोई सोलह सत्रह सौ वर्ष पूर्व वहाँ के निवासियों ने आकर इस देश में प्रवेश किया। पहिले तो उनके आने से कुछ भी ज़ाहिर न हुआ। वे चुपके चुपके देश में रहे, किन्तु अन्त में उनकी एक शाखा ने इस देश में एक बहुत बड़ा राज्य स्थापित कर दिया। ये मिश्र-निवासी जाति के यहूदी थे, ये लोग सबसे प्रथम दक्षिणी मलबार में आकर रहे। इनके विषय में जेम्स बरजिस नामी एक योरोपियन शोधक कहता है कि 'ये यहूदी लोग ईसवी सन् की तीसरी या चौथी शताब्दी में दक्षिणी मलाबार के किनारे पर आकर बसे' ×। ये लोग जब मिश्र से चले थे, उस समय ये कई एक नावों में सवार होकर निकले थे। उसमें से एक तरणी (नाव) भारतीय समुद्र के किनारे पर पहुँचते ही पहुँचते टूट गई और जो लोग उस पर सवार थे, वे बह चले। ये बहे हुए मनुष्य सह्याद्रि के पश्चिमी किनारे पर आकर लगे। वहाँ एक गाँव में जिसमें अन्त्यजों के १४ कुटुम्ब रहते थे, ये भी टिके। इस कथा का सारांश स्कन्दपुराण में दिया हुआ है। वहाँ लिखा है कि—

एवं निवासं कुर्वत्सु अकस्माद्दैवयोगतः।
नीत्वा सागरमध्यस्थैर्म्लेच्छैर्बर्बरकादिभिः॥

× Trichur is the capital of Cochin.........where Jews and Syrian Christians have been established since the 3rd or 4th century A. D. It is the principal residence of the black and white Jews.

बहून्यब्दान्यतीतानि तेभ्यो जाता च संततिः ।
जातिं पृच्छसि हे राजन् जातिकैवर्तकः स्मृतः ॥
सिंधुतीरे कृतो वासो व्याधकर्मविशारदः ।
चतुर्दश गोत्रकुलं स्थापितं चातुरंगके ॥
सर्वे च गौरवर्णास्ते सुनेत्राश्च सुदर्शनाः ।

अर्थात् दैवयोग से अफ़रीका देश के बर्बरादि अनार्य लोग हिन्दुस्थान के पश्चिमी मार्ग से आकर सह्याद्रि किनारे पर बसे। बहुत वर्षों के बाद उनसे जो संतति हुई, उसने उस समय के परशुराम नामी राजा के पूछने पर कहा कि हे राजा ! हम लोग मल्लाह हैं, समुद्र के किनारे पर रहते हैं और शिकार करना हमारा काम है। सब को गौर वर्ण, सुन्दर और सुन्दर नेत्रवाले देखकर परशुराम ने चितपावन बनाया। दूसरी जगह 'माधव-शतप्रश्न-कल्पलतिका' नामी पुस्तक में लिखा है कि—

शाखायुग्मं च संस्थाप्य शाकलांस्तैत्तिरीयकान् ।
निषिद्धकर्मनिरता मत्स्यभक्षणतत्पराः ॥
कन्याविक्रयकारांश्च इन्द्रियाणामनिग्रहात् ।
कलभाषी पालनाच्च कर्कलाख्याः प्रकीर्तिताः ॥

अर्थात् ये लोग निषिद्ध कर्म करनेवाले, मत्स्य, मुरग़ी, बतख़ आदि मधुर ध्वनि करनेवाले पालतू पक्षियों का मांस खानेवाले, कन्याविक्रय करनेवाले और अगम्यगामी हैं। इन वर्णनों से पाया जाता है कि, ये लोग यथार्थ में बाहर से ही आकर बसे हैं। कुछ दिन तो ये लोग उसी स्थिति में रहे, पर जब देखा कि इस देश में ब्राह्मणों की बड़ी प्रतिष्ठा है, तब ब्राह्मण बन जाना अच्छा समझा। अतः सब ब्राह्मण बन गये और अपने को 'चितपावन ब्राह्मण' कहने लगे और संस्कृत भी पढ़ने लगे। उधर इनके साथ ही बहे हुए अन्य लोग भी समुद्र के अन्य किनारे पर ठहरे। बहुत दिनके बाद उन्होंने इतिहास लिखा। उस इतिहास में लिखा है कि, 'बेनी इसरायल कहते हैं कि उनके बुजुर्ग लगभग सोलह सौ या अठारह सौ वर्ष पूर्व विजयी समूहों के लगातार आक्रमणों के दुःखों से बचने के लिये उत्तर की ओर से या उत्तरी सूबों से भारतवर्ष में आये। उनके यहाँ आने का कारण जान और माल की रक्षा ही था। परन्तु आपत्ति ने उनका पीछा न छोड़ा। वे जिस जलयान के द्वारा भारतवर्ष को आ रहे थे, वह हिंद महासागर के हेनेरी और केनेरी द्वीपों के निकट टूट गया। ये द्वीप उस च्यूल बन्दर से लगभग पन्द्रह मील की दूरी पर हैं, जो लगभग दो हजार वर्ष पूर्व लाल समुद्र के साथ व्यापार करने के बहुत बड़े केन्द्र थे। जलयान के टूटने से केवल सात पुरुष और सात स्त्रियाँ ही बचीं। इन बचे हुओं ने हेनेरी और केनेरी द्वीपों से छे मील की दूरी पर समुद्र के किनारे नौगाँव नामक गाँव में आश्रय ग्रहण किया। डूबे हुओं में से और भी बहुत से बहते हुए उसी नौगाँव तक पहुँचे, जहाँ उक्त सात जोड़ों ने आश्रय लिया था। इनके अतिरिक्त दूसरे डूबे हुए अन्य किनारों को बह गये; पर उनके

विषय में अब तक कुछ भी ज्ञात नहीं है × । कुछ दिन के बाद पता लगने पर उन्होंने फिर अपने इतिहास में लिखा कि 'नवीन ढूँढतलाशों से ज्ञात हुआ है कि, कोकणस्थों या चितपावन ब्राह्मणों के बुजुर्ग किसी डूबे हुए जहाज़ के विदेशी यात्री थे, जो बहकर सह्याद्रि पहाड़ी के नीचे आ लगे थे। हिन्दू दन्तकथाओं और पुराणों के अनुसार परशुराम ने इन विदेशियों के चौदह मुर्दे एक चिता पर जीवित कर दिये थे। इन चितपावनों की बस्ती चिपलूण में बसाई गई। ऐसा मालूम होता है कि, चितपावनों के बुजुर्ग भूमि के मार्ग से कोकण में नहीं आये, पर बहुत दूर समुद्र पार से आये हैं। उनका गौर वर्ण, भूरे नेत्र और नाव डूबने की कथा उपर्युक्त बात को पुष्ट करती है। कुछ लोग कहते हैं कि इस जाति के बुजुर्ग जहाज़ के द्वारा मिश्र से या मिश्र होते हुए आये हैं। दूसरे कहते हैं कि, वे अफ़रीक़ान्तर्गत बारबरी के यहूदी हैं और मिश्र से यहाँ आये हैं + ।

× Beni Israels say that their ancestors came to India sixteen or eighteen hundred years ago from a country northward (see Lands of the Bible, vol, II, page 667) or from the northern provinces to avoid persecution that followed in the train of its constant invasions by a host of conquerars. Thus their motive in coming to India was the sefty of their lives and property; but although they went to a new place or to a new country, they brought with them their misfortunes, and consequently the ship in which they came to their Indian refuge was wrecked near the Henery Kenery Islands in the Indian Ocean. These islands are about 15 miles distant from Cheul, which was a great emporium of trade with the Red Sea about 2,000 years ago. Of the ship-wrecked only seven men and seven women were seved who took refuge on the shore of Navgaon, a village on the coast about six miles from Henery Kenery Islands. Many of the drowned were washed away to the shore of the very village where the seven pairs took refuge, while others were carried to other shores, of which nothing was known until recent times.

+ Recent researches have discovered that the ancestors of the Kokanastha or Chitpavan Brahmins were probably same ship wrecked foreigners, who were cast ashore at the foot of Sahyadri hills. The fourteen corpses of these foreigners were according to a Hindoo legend, animated with life on a prey or, chita by Parashuram as mentioned in the Hindoo Purans.

इस विषय में हमें अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इसी जाति के एक बहुत बडे नामी चितपावन ब्राह्मण, विश्वनाथ नारायण मंडलीक ने अपनी जाति का जो विवरण ऐशियाटिक सोसाइटी के पास भेजा है, उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि ऐतिहासिक ग्रंथों से ऐसा प्रतीत होता है कि चितपावन जाति के प्रथम पूर्वज हिंदुस्थान के पश्चिम ओर से अर्थात् अफ़रीका के सामनेवाले किनारे से बहुत करके नावों के द्वारा आये। इसके अतिरिक्त अभी हाल में केलकर महोदय ने जो लोकमान्य तिलक का बृहत् जीवनचरित्र लिखा है, उसमें भी ये बातें स्वीकार की हैं। आप लिखते हैं कि 'सच्चे इतिहासज्ञ कोंकणस्थों के लिए कहते हैं कि वे इस देश के नहीं, प्रत्युत बाहर के हैं। हीन दशा बतलानेवाली इस बात से गुस्सा मालूम होना स्वाभाविक है। पर ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात असत्य नहीं है। कोंकणस्थों के सम्बन्ध में स्वर्गवासी विश्वनाथ नारायण मंडलीक ने सन् १८६५ के उस अँगरेज़ी निबंध में जो उन्होंने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के पास भेजा था, खुद स्वीकार किया है कि चितपावन ब्राह्मणों के आदि पूर्वज अन्य देश से जहाज़ों के द्वारा आये। अथवा चाहे हिंदुस्थान के ही किसी दूर बंदर से आये हों, या कोंकण के पश्चिमी अरब समुद्र के द्वारा दक्षिण अफ़रीका से आये हों।

'हिंदुस्थान में आ जाने पर द्रविडोंके साथ मेलजोल होने से उनकी गणना पंच द्रविडों में हो गई।

'जहाँ नई बस्ती होती है, वहीं पर सब जातियों की वर्गवार बस्ती बन सकती है। इस तरह की पद्धतिवार बस्तीवाले गाँव कोंकण में ही हैं। इससे सिद्ध हो जाता है कि कोंकणस्थ ब्राह्मण कहीं बाहर से आकर बसे।

'प्रोफ़ेसर कर्वे ने अपने जीवनचरित्र में ऐसे एक गाँव का विस्तारपूर्वक बड़ाही मनोरंजक वर्णन किया है और बतलाया है कि कब, क्यों और कैसे वह गाँव जंगल काट कर बसाया गया।

'चिता से चित्पावन हुए अथवा कोंकणस्थों में अभिमानबुद्धि व्यक्त करनेवाली 'जिसका चित्त पावन अर्थात् पवित्र हो, वह चित्पावन है' ऐसी व्युत्पत्ति हो सकती है, परन्तु वास्तव में ये दोनों प्रकार के शब्दसाधन कल्पनामात्र ही है' ×।

The colony of these Chitpavans was established at Chiplon. It seems that the ancestors of the Chitpavans did no enter Kokan by land but came in from far beyond the sea. Their fair complexion, their light and grey eyes and the legend of their shipwreck corroborate the above statement. Some say that the ancestors of the tribe have probably came by ship either from Egypt or through Egypt; while others maintain that they are the descendants of Jews from Barbary, a province in Africa and that they came through Egypt.

× सत्यशोधक लोक हे दक्षिणी ब्राह्मणांना, विशेषतः कोकणस्थ ब्राह्मणांना, उद्देशून 'हे या भूमींतलेच नव्हेत, परके आहेत,' असें हिणवण्याच्या बुद्धीने म्हणतात; म्हणून त्यांचा कोणास राग येवो; परन्तु इतिहासदृष्ट्या ही गोष्ट कांही अगदींच खोटी नाही.

इन प्रमाणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि चितपावन ब्राह्मण मिश्रदेशनिवासी यहूदी हैं। ये वहाँ से दक्षिण देश में आये और ब्राह्मण बन गए। यद्यपि ब्राह्मण बन गये, पर उस समय किसी ब्राह्मण ने इनको ब्राह्मण नहीं माना। क्योंकि इनका आचार व्यवहार बहुत नीच था। ये अपने कुत्सित और नीच व्यवहार का प्रचार भी करने लगे, इसलिए दक्षिण में बहुत बड़ा कोलाहल मचा और तुरन्त ही वहाँ के निवासियों की एक बड़ी सभाद्वारा कनारी भाषा में **'आफ्रिका खण्डद इजिप्तदेश दिन्द बन्दिरुव इजिप्तवान जिप्तवान या चितपावन एवं जातिय निर्णयवु'**। अर्थात् ये अफ़रीका खण्ड के इजिप्त देश के रहनेवाले हैं, इसीलिए इनको इजिप्तवान या जिप्तवान अथवा चितपावन कहते हैं, इस शीर्षक का एक विस्तृत घोषणापत्र निकाला गया और उसमें लिखा गया कि 'चितपावन जाति के सम्बन्ध में अब तक चले हुए आद्यन्त कागज़पत्रों को देख करके और ऐतिहासिक प्रमाणों तथा अन्य अनेक विषयों पर विचार करके इस सभा ने जो निष्पत्ति दी है, उसको अच्छी प्रकार अवलोकन करने से सिद्ध होता है कि चितपावन जाति भरतखण्ड की मूलनिवासिनी नहीं है। वह अफ़रीका देशान्तर्गत इजिप्ट प्रदेश की रहनेवाली है। इसके अतिरिक्त उनकी जाति के ही शोधकों के कबूल करने तथा सभा को भी वैसा ही प्रतीत होने से यही सिद्ध होता है कि वे लोग भारतवर्ष के निवासी नहीं हैं। भारतवर्ष के दश प्रकार के ब्राह्मणों को इनके साथ मिलकर रहना सदाचार के अनुकूल नहीं है। इन चितपावनों के बारे में अब तक कोई भी निश्चयात्मक फ़ैसला किसी की तरफ़ से नहीं हुआ। चितपावनों की तरफ़ से जो कुछ लिखा हुआ इस सभा में आया है, उसमें कुछ भी आधार नहीं है। आधार न होते हुए भी सबकी सम्मति लाने के लिए जो सभा की आज्ञा थी, न तो वही लाई गई और न

कोकणस्थांसंबंधानें खुद्द कै० विश्वनाथ नारायण मंडलिकांनी १८६५ सालीं रॉयल एशियाटिक सोसाइटीपुढे इंग्रजी निबंधांत असें कबूल केलें आहे की, चित्पावन ब्राह्मणांचे आद्य पूर्वज हे पर प्रांतांतून जहाजांवर बसून आले खास; मग ते हिंदुस्थानच्या किनाऱ्यावरीलच एखाद्या दूरच्या बंदरांतून जहाजांवर चढले म्हणा, किंवा कोकणपट्टीच्या पश्चिमेस अरबी समुद्रापलीकडे असलेल्या दक्षिण आफ्रिकेच्या किनाऱ्यावरून चढले म्हणा! हिंदुस्थानांत आल्यावर मग येथील पूर्वीच्या द्रविड ब्राह्मणसंघांत—पंचद्रविडांत त्यांची गणना होऊं लागली.

नवीन वसाहत होते, तेव्हाच तिची वर्गवार रचना होऊं शकते. यामुळे पद्धतशीर ब्राह्मणवस्तीचे गांव कोकणांत आढळतात. यावरूनच कोकणांत कोकणस्थ ब्राह्मण बाहेरून येऊन वसाहत करून राहिले, असें सिद्ध करण्यास मदत होते.

प्रो. कर्वे यांनी आपल्या आत्मवृत्ताच्या परिशिष्टांत मूळ मराठींत छापली आहे. त्यांत जंगल तोडून वसतिक्षेत्र कसें सिद्ध केलें व कोणच्या पद्धतीनें, हेतूनें गांव कसा बसविला याचें मोठें मनोरंजक वर्णन आहे.

चितेपासून झालेले म्हणून 'चित्पावन' असें म्हणावें किंवा कोकणस्थाविषयी अभिमानबुद्धि व्यक्त करावयाची, तर 'ज्यांचें चित्त पावन म्हणजे पवित्र ते चित्पावन' अशी व्युत्पत्ति लढवितां येते. वास्तविक हें दोन्ही प्रकारचें शब्दसाधन काल्पनिक आहे. (लो० टिळक यांचें चरित्र.)

कोई आधार ही पेश किया गया । इसलिए इस सभा की ओर से यह घोषणा की जाती है कि, इस चितपावन जाति के लोक अफ़रीका खंड नामी द्वीप से आये हैं । चितपावन लोग भरतखंड के ब्राह्मण लोगों में मिल जाने और उनमें अधर्मी तथा स्वार्थी आचारविचार फैलाने के लिए बड़ी बड़ी नीच युक्तिप्रयुक्ति से प्रयत्न कर रहे हैं, इसलिए भारतवासी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों को चाहिए कि इनकी नीच चातुरी को बड़े ध्यान और बारीकी से देखते रहें । अर्थात् उनके साथ मिलकर धर्म, कर्म, जाति और सत्य से भ्रष्ट न हों ×। इस प्रकार की चरचा और प्रचार से महाराष्ट्र ब्राह्मणों के दो भेद हो गये । **जो असल थे वे देशस्थ और जो बनावटी थे वे कोकणस्थ कहलाने लगे।** महाराष्ट्र में ये दोनों जातियाँ मौजूद हैं और एक का दूसरी के साथ विवाहसम्बन्ध प्रायः नहीं है । कोकणस्थों ने ब्राह्मण बन चुकने पर राज्य लेने का प्रयत्न जारी किया । अन्त में यही पेशवा नाम के राजा हुए और पूना शहर इनका अड्डा हुआ ।

विदेशियों के तृतीय दल का आगमन।

कऱ्हाडे कौन हैं ?

दक्षिण में चितपावन जाति से सम्बन्ध रखनेवाली एक तीसरी जाति और है, जिसका नाम 'कऱ्हाडे' है । ये भी बाहर के रहनेवाले हैं । विद्वानों का अनुमान है कि वे चीन देश के रहनेवाले हैं । आगे के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि ये चीन के ही हैं । क्योंकि हेमाद्रि में जिन चीनी ब्राह्मणों का जिक्र है + ' वे यही हैं । ये लोग नरबलि देनेवाले थे और अपने दामाद को भी विष देकर मार डालते थे । इनके विषय में लिखा है कि—

× चितपावन जातिय विषयवागि नडदिरुव रिकार्डनुं साद्यंतवागि सभेयवरु विमर्शे माडिनोडिद्दायितु । मत्तु प्रतिवंदु विषयद मेलु विचार माडि सभेयवरु पट्टिरुव अभिप्रायवू नमगे सल्पट्टदे, इवु गळन्नु पर्यालोचीसलु चितपावन जातियु भरतखंडदल्लि आफ्रिका खंडदेन्दु निर्णय- वागिरुत्तदे । मत्तु अवर जातियवराद शोधकरु ओप्पिरुवन्ते इ सभेय वरिगु निज वागि कंडु बंदद्दरिंद भरतखंडद ब्राह्मणरल्लवेंदु निर्णय वागिदे । ई आफ्रिकाखंडदवर संसर्गदल्लि भरतखंडद दशविधरु शेरिद्दु इरुवदु सदाचारक्के योग्य वागिदे ।

ई चितपावन जातिय विषय वागि इष्टु खंडितवाद निर्णयवु ईवरीगू यारिंदलू माडल्पट्टिर- लिल्ल । चितपावनरिंद ईग सभेगे बंदिरुव जवाबिनाल्लि निराधारवागिये यल्ल पट्टिरुत्ते । आधारवू इल्लदे होदरे यल्ला ब्राह्मणर संमति इल्लादरु कळुहिसबेकेन्दु सभेइन्द केळल्ल पट्टित्तु । अदरन्ते सम्मतियन्नु अथवा आधारवन्नु सुद्धा कलुहिस लिल्ल, आद्दरिन्द सभेयधरु विचार माडि चितपावन जातीयु आफ्रिकाखंड मुन्नाद द्वीपांतरदिंद बंदद्देंदु निर्णयइसल्ल पट्टित्तु । चितपावनरु भरतखंडद ब्राह्मणरोळगे शेर बेकेंब असत्य साधन वन्नु माडुत्तारे, आदकारण भरतखंडद ब्राह्मणादि चातुर्वर्णदवरु इंथा असत्यक्के अवकाश उंटागदहागे दक्षते दक्षते इंद सत्य साधनवन्नु माड बेकागिरुत्तदे । सत्यमेव जयति नानृतम् ।

+ त्रिशंकून् बर्बरानन्ध्रान् चीनद्रविडकोंकणान् ।
कर्णाटकांस्तथा भीरान् कलिंगांश्च विवर्जयेत् ॥ (हेमाद्रि)

अर्थात् कह्राड देश दुष्ट देश है। वहाँ रहनेवाले कठिन, दुर्जन और पापी होते हैं। इनके विषय में महाराष्ट्र-देशवासियों की यह उक्ति प्रसिद्ध है कि **'कसायाचा विश्वास धरवेल; पण कह्राडयाचा धरवणार नाही.'** अर्थात् क़साई का विश्वास करना पर कह्राडे का विश्वास नहीं करना। इनके विषय में प्रसिद्ध विद्वान् बालाजी विठ्ठल गावस्कर कहते हैं कि 'मिस्टर विलफ़र्ड और कैंबेल का मत है कि ये लोग बारह सौ वर्ष पूर्व चीन से आये। यह बात मुझको भी सत्य प्रतीत होती है। क्योंकि मनुष्य मारने की जो प्रथा उन देशों में है, वही इनमें भी पाई जाती है। हेमाद्रि के श्लोकों में जिन चीनी ब्राह्मणों का वर्णन है, वे यही कह्राडे ही हैं' ×। इनके विषय में रत्नागिरी गेजेटियर में भी लिखा है कि 'प्राचीन समय में वे कभी कभी अपने दामादों, मुलाक़ात करनेवालों और अतिथियों को विष देकर अपनी देवी को इसलिए बलिदान देते थे कि वंशवृद्धि के लिए उनके संतान उत्पन्न हो' *। इस प्रकार की एक घटना का वर्णन मिडफ़र्ड नामी विद्वान् ने बड़ी ही विचित्रता के साथ किया है। वह लिखते हैं कि कंपनी के राज्य में नरमेघ अब तक गुप्त रीति से परन्तु बहुतायत से प्रचलित है दशहरा के उत्सव में कह्राडे लोगों का यज्ञ होता है, वह नरमेघ कहलाता है। डॉक्टर कॉलियर ने मुझसे नीचे लिखी हुई घटना कही है, जो गत पेशवा के पिता बालाजी बाजीराव के समय ख़ास पूना में हुई थी। वह असाधारण बात बतलाती है कि किस प्रकार प्रत्येक पवित्र मनोभाव अत्यन्त क्रूर धर्मांधता के तीर्थ में अपवित्र किये जाते थे। एक दिन एक कन्हाडे ने अपने दरवाज़े से एक मुसाफ़िर को सामनेवाले कुएँ पर बैठा हुआ देखा और सोचा कि आनेवाले दशहरे मे बलि देने के लायक वह अच्छा शिकार है। उसने उस मुसाफ़िर को अपने घर बुलाया और बहुत कुछ कह सुनकर घर में ठहरा लिया। कुछ दिन के बाद उस मुसाफ़िर ने अपने आदर, आतिथ्य करनेवाले गृहस्वामी से छुट्टी लेकर अपने घर जाना चाहा। परन्तु दशहरा दूर होने से और उसको शंकाहीन करने के अभिप्राय से कन्हाडे महाशय ने उसका ब्याह अपनी लड़की के साथ कर दिया। मुसाफ़िर को अन्धा बनाने के लिए यह उपाय काफी था। मुसाफिर फँस गया और मुसाफिर का ससुर अपना दुष्ट हेतु सिद्ध करने के लिए दशहरे के उत्सव की राह देखने लगा। परन्तु उसकी लड़की अपने इस बलिपशु पति को बहुत ही चाहती थी। जब बलि का समय आ गया, सब तैयारी हो गई, उसके पिलाने के लिए ज़हर का प्याला भी बन गया और उस स्थान में जाने का

× हे लोक बहुधा चीनाहून सुमारें १२०० वर्षांपूर्वी आलेले असल्याबद्दल मि. विलफर्ड, कॅम्बेल अशा शोधक युरोपिअनांचें म्हणणें आढळतें, तें बऱ्याच अंशीं संभवनीय दिसतें; कारण त्या देशांत असे क्रूर व नीच आचरण करणारे लोक बरेच आहेत व तद्वत्च या कन्हाड्यांना मनुष्यांचा साक्षात् प्राण घेण्याची कांहीच पर्वा वाटत नाही व मग्नां हेमाद्रीचा जो श्लोक सांगितला, तर अशांपैकी जे चीनी ब्राह्मण सांगितले तेच हे कन्हाडे होत.

* In former times they occasionally poisoned their sons-in-law visitors and strangers as sacrifices to their goddess in the hope of securing offspring, Vansha-vridhi. (Ratnagiri Gazetteer.)

मौका भी आ गया, जहाँ उसका गला काटकर भवानी के चरणों में उसका शरीर अर्पण होनेवाला था, जिससे बलिदाताओं का कल्याण हो, तब उसकी स्त्री ने वह ज़हर का प्याला बदल दिया। फल य हुआ कि वह पति के स्थान में भाई को पिला दिया गया। इस घटना से सारा रहस्य खुल गया और अपराधी पकड़कर पेशवा की अदालत में लाये गये। पेशवा सरकार ने इनको सज़ा दी और इस सम्प्रदाय के समस्त व्यक्तियों को पूना से निकाल दिया +। महाराष्ट्र प्रान्त में कह्राड़े लोग अब तक बहुतायत से रहते हैं।

\+ Human sasrifices are still common in the Company's territories in India, although the practice is kept more secret. (One instant is cited here.) On the festival of Dasara the Karhada's sacrifice is called Narmedha. Dr. Collier related to me the following story which took place in the time of Balaji Bajirav, the father of the late Peshva, in Poona itself; this extraordinary case exhibits the desecration of every hallowed sentiment and feeling at the shrine of the most atrocious superstition.

A Karhada sitting at his door, when he observed a Brahmin traveller sit down to rest at the well in front of his house, the thought struck him that this man would answer well as a victim at the next Dasara and he accordingly invited him to his house and eventually induced him to remain as his guest; after remaining a considerable time, the young man wished to take leave of his hospitable host. The festival was yet distant and the crafty Karhada, finding no other means of detaining him and perhaps imagining he might be suspected, actually bestowed on him his daughter in marriage; this besides blinding the eyes of his victim, was an effectual way of detaining him. The father-in-law only waited for the festival day to consummate his diabolical plot; however, there was a lady in the case and what was more, she loved her new husband and was not inclined to part with him so easily.

When the heart is engaged it would be an insult to the most beutiful half of the creation to suppose that a woman could not outwit a priest. Every thing was arranged for the concluding scene; at a great banquet a narcotic or poisonous draught was to be administered and the victim was to be carried before the idol of Bhawani, where his throat was to be

विदेशियों के चतुर्थ दल का आगमन।

इस चौथे आगमन में हम कई स्फुट जातियों का वर्णन करना चाहते हैं। इसमें अमेरिका के नाग, मद्र और वाह्लीक के असुर, मंगोलिया और तातार के मग, शक और हूण तथा यूनान (ग्रीस) के यवनों का समावेश है। इनके सिवा मिश्रनिवासियों और ईरानवासियों का भी वर्णन है। भारतीय आर्यों के साथ इन जातियों का सम्मिश्रण वैवाहिक कारणों से ही हुआ है। यहाँवालों ने उपर्युक्त देशों की स्त्रियों के साथ विवाह करके, उनसे शादी की हुई स्त्रियों के भाई भतीजों के साथ खानपान और सम्मेलन करके उनकी जाति को आर्यों में घुसने का मौक़ा दिया है।

चन्द्रवंशी क्षत्रिय सुंदर स्त्रियों के साथ विवाह करके सुन्दर और बलवान् प्रजा उत्पन्न करने के बड़े अभिलाषी थे। इन्होंने जहाँ पाया है, वहीं शादी कर ली है। इसी आदत के वशीभूत होकर अर्जुन ने अमेरिका की उलोपी नामी स्त्रि के साथ विवाह किया। उसके साथ अनेक पातालनिवासी नाग यहाँ आकर आबाद हो गये। यह पहिला सम्मेलन नागों का है।

इसी तरह का दूसरा सम्मेलन मद्रों और वाह्लिकों का है। पांडु की एक शादी मद्र देशमें हुई थी! इसीसे उनकी एक स्त्री का नाम माद्री था। माद्री का भाई शल्य कौरवदल की ओर से लड़ता था, एक दिन वह कर्ण का सारथी बना। उस समय कर्णने मद्रदेशवासियों के आचार की जो निन्दा की है, वह महाभरत में लिखी है। उसमें से यहाँ थोड़ा सा उद्धृत करते हैं। कर्ण कहता है कि—

पितापुत्रश्च माता च श्वश्रूश्वशुरमातुलाः ।
जामाता दुहिता भ्राता नप्ता ते ते च बान्धवाः ॥
वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासी दासं च संगतम् ।
पुंभिर्विमिश्रानार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया ॥
येषां गृहेष्वशिष्टानां सक्तुमत्स्याशिनां तथा ।
पीत्वा सीधुं सगोमांसं क्रन्दन्ति च हसन्ति च ॥
तथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम् ।
तथैव संगतिं कृत्वा नरः पतति मद्रकैः ॥

---

cut and his body afterwards buried at the feet of the idol to insure prosperity to his murderers for the ensuing year. The lady had far more pleasing prospects in view for him and on the day of the festival succeeded in changing the poisoned cup, which fell to the lot of the brother, who was poisoned instead of the intended sacrifice; thus unexpected development caused an uproar and was the means of making the whole affair public and bringing it before the Peshva, who punished the guilty individuals and banished the whole ect from Poona.

वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो याः मद्यमोहिताः ।
तासां पुत्रः कथं धर्मं मद्रको वक्तुमर्हति ॥
पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसुल ।
आपृच्छता मया राजन् वाह्लीकेष्वाश्रमसामितं ॥
तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा पुनर्भवति क्षत्रियः ।
वैश्यशूद्रश्च वाह्लीकः ततो भवति नापितः ॥
नापितश्च पूनर्भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः ।
द्विजो भूत्वा तु तत्रैव पुनर्दासो व्यजायत ॥
गांधारा मद्रकाश्चैव वाह्लीकाश्चाप्यचेतसः ।
एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसंकरकारकाः ॥

अर्थात् यहाँ स्त्रीपुरुषों में विवेक नहीं, सत्र से सत्र मिलते हैं, जहाँ सत्तू के साथ मछली खाई जाती है, जहाँ लोग गोमांस खाते, शराब पीकर नाचते हँसते हैं, और जहाँ के रहनेवालों का साथ करने से अधोगति होती है, उस देश का रहनेवाला तू नीच ! क्षत्रियाधम ! निर्बुद्धि ! मुझे शत्रुओं की बड़ाई करके डराना चाहता है। मैंने सुना है कि वहाँ वर्णव्यवस्था की मर्यादा नहीं है। वहाँ कभी ब्राह्मण क्षत्रिय हो जाता है, कभी वैश्य, शूद्र अर्थात् नापित हो जाता है और नापित फिर ब्राह्मण हो जाता है। द्विज का दास और दास का द्विज हो जाता है। इस तरह से इन गान्धार, मद्रक और वाह्लीक लोगों ने धर्म को सङ्कर कर दिया है। इन लोगों के इस वर्णन से वहाँ के अनाचार का पता लगता है और अनुमान करना सहज हो जाता है कि इनके सम्मेलन से आर्यों में दुर्गुण दाखिल हो गये।

तीसरा मिश्रण मग, शक और हूणों का है। मग मङ्गोलिया देश के रहनेवाले हैं। बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न ने लिखा है कि मग ब्राह्मण मङ्गोलिया के हैं। शाकद्वीपी ब्राह्मण अवध में मौजूद हैं। अयोध्या के राजा साहब शाकद्वीपी ही हैं। ये अपने को मग कहते हैं। इनके इतिहास में लिखा है कि—

लवणोदात्परं पारे क्षीरोदेन समावृतः ॥
जम्बूद्वीपात्परं तस्माच्छाकद्वीप इति श्रुतः ।
तत्र पुण्याजनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमाश्रिताः ॥
मगाश्च मामगाश्चैव मानसामन्दगास्तथा ।
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मामगाः क्षत्रियास्तथा ॥
वैश्यास्तु मानसा ज्ञेया शूद्रास्तेषान्तु मन्दगाः ।
विवस्वतं पूजयन्तो धूपगन्धादिभिः शुभैः ॥
अष्टादशकुलानीह मगानां वेदवादिनाम् ।
यास्यन्ति च त्वया सार्द्ध यत्र सन्निहितो रविः ॥
(साम्बपुराण अ० २५)

अर्थात् लवणसागर के पार क्षीर सागर से घिरा हुआ और जम्बुद्वीप से दूर शाकद्वीप है। उस पुण्य राज्य में चारों वर्ण हैं। मगब्राह्मण, मगक्षत्री, मगवैश्य, और मगशूद्र बसते हैं वे। सूर्य की पूजा करते हैं। उनके अठारह कुल वेदपाठी हैं। यही शक हैं। नवीन

इतिहासकार इन्हीं को सिथियन कहते हैं *। हूण प्रत्यक्ष ही तातारी हैं। कलचुरी नामी क्षत्रियजाति के साथ हूणों का विवाह सम्बन्ध था। 'सरस्वती' अगस्त १९१४ में लिखा है कि रीवाँ राज्य में एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें लिखा है कि कलचुरी राजा कर्ण ने (जिसने काशी का कर्णमेरु बनवाया है), तातारी हूणों को परास्त करके उनकी कन्या के साथ विवाह किया +। खत्रियों में और राजपूतों में हूण संज्ञा अब तक मौजूद है।

चौथा मिश्रण यूनान के यवनों का है। यह ऐतिहासिक प्रसिद्धि है कि राजा चन्द्रगुप्त ने यूनानी सिल्यूकस की कन्या से शादी कर ली थी ×। अनेक यूनानी पाटलिपुत्र (पटना) में रहा करते थे। फलित ज्योतिष का इन्होंने ही यहाँ प्रचार किया है। इतिहास जाननेवालों क ख़याल है कि बहुत से यवन हिन्दू बन गये हैं।

पाँचवाँ मिश्रण ईरानवालों का है। उदयपूर राज्य के राजा गोह की शादी ईरान के प्रसिद्ध बादशाह नौशेरवाँ की पौत्री के साथ हुई थी। लोगों का ख्याल है कि ज़िला बस्ती के रहनेवाले कलहंस क्षत्री भी ईरान के ही रहनेवाले हैं।

छठा मिश्रण मिश्रनिवासियों का है। कहते हैं कि कण्व ऋषि ने मिश्रदेश (ईजिप्ट) में जाकर वहाँ के दश हज़ार निवासियों को यहाँ का धर्म और भाषा सिखलाकर आर्य बनाया। पहिले उनको शूद्रकोटि में रक्खा, फिर उनमें से कुछ को वैश्य बनाया और कुछ को क्षत्रिय। इस प्रकार से मिश्रनिवासियों का हिन्दुओं में सम्मिश्रण पाया जाता है। यह सारी कथा भविष्यपुराण में लिखी हुई है *।

---

* Sythia is only a corruption from Sakawastha or the abode of the Sakas. (मानवेर आदि जन्मभूमि पृ० १३)

शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावत् इह पार्थिव। तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः।
मङ्गाश्च मशकाश्चैव मन्दगा मानसास्तथा। मङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप।
(महाभारत)

\+ पुत्रोऽस्य खड्गदलितारिकरीन्द्रकुम्भ
मुक्ताफलैः स्म ककुभोर्चति कर्णदेवः।
अजनि कलचुरीणां स्वामिना तेन हूणा-
न्वयजलनिधिलक्ष्म्यां श्रीमदावल्लदेव्यां॥ (राजपूताने का इतिहास से उद्धृत)

× चन्द्रगुप्तस्तस्य सुतः पौरसाधिपतेः सुताम्॥
सुलूकस्य तथोद्वाह्य यावनीं बौद्धतत्परः॥ (भविष्यपुराण)

* सरस्वत्यासया कण्वो मिश्रदेशमुपाययौ।
म्लेच्छान् संस्कृत्य चाभाष्यत्तदा दशसहस्रकान्॥
सपत्नीकांश्च तान् म्लेच्छान् शूद्रवर्णाय चाकरोत्।
द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे।
तेषां चकार राजानं राजपुत्रं पुरंदरम्। (भविष्यपुराण)

इस संक्षिप्त वर्णन से इतना परिणाम निकालने में अब कोई बाधा प्रतीत नहीं होती कि संसार के प्रायः सभी प्रधान प्रधान देशों के रहनेवाले लोग (जिनके आचार–व्यवहार, रीति–रस्म, खान–पान अवैदिक थे), आर्यों में मिल गये और उनके अनेकों आचार विश्वास धीरे–धीरे आर्यों में दाख़िल हो गये। अतः भारत के आर्य इस मिश्रण से आर्य न रहकर हिंदू हो गए। मिश्रण सभी वर्णों में हुआ। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र सभी विदेशियों के मिश्रण से मिश्रित हुए। परन्तु क्षत्रियों में इन विदेशियों का मिश्रण बहुतायत से हुआ। ई॰ डब्लू॰ थामसन 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में लिखते हैं कि, 'इस अध्याय में हम विशेष कर राजपूतों का वर्णन करेंगे। राजपूत लोग विशेष कर उन मरु मैदानों और पहाड़ी प्रदेशों में रहते हैं जो सिन्धु और गङ्गा के बीच में हैं। उनके देश दक्षिण में नर्मदा तक फैले हुए हैं। वे भिन्न भिन्न जातियों से सम्बन्ध रखते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ प्राचीन आर्यों की संतान हैं और कुछ सिथियन, हूण तथा द्रविड़ों के गिरोह में से भी हैं' * ।

यद्यपि यही हाल ब्राह्मणों का भी है—उनमें भी द्रविड, चितपावन, कह्राडे, मग, शाकद्वीपी आदि अन्य देशीय जातियाँ पाई जाती हैं, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है, पर उनका मिश्रण वैसा नहीं है, जैसा होना चाहिये।

विदेशियों के पंचम दल का आगमन।

इस आगमन में मुसलमान कहलानेवाली जाति से सम्बन्ध रखनेवाली लोदी, पठान, मुगल आदि जातियाँ सम्मिलित हैं। इनका इतिहास नया है। इनकी उत्पत्ति और भारत–आगमन आदि का हाल सबको ज्ञात है। इनके अत्याचार और कठोर शासन, लूट और साहित्यविध्वंस की कथा भी सब जानते हैं। इन्होंने हिंदुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया, यह बात भी प्रसिद्ध है। हम यहाँ इनमें से एक का भी वर्णन नहीं करना चाहते। हम तो यहाँ केवल इसी बात का ज़िक्र करना चाहते हैं कि इनका आर्यों में प्रवेश किस प्रकार हुआ। हिन्दुओं में इनका प्रवेश होना अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से सिद्ध है। यह प्रसिद्ध है कि स्वामी रामानन्द ने अयोध्या में सैकड़ों मुसलमानों को हिन्दू बनाया था। भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व, अध्याय २१ में लिखा है कि रामानन्द का शिष्य अयोध्यापुरी में गया और म्लेच्छों के मन्त्रप्रभाव को उलट करके उन सब मुसलमान हुए हिन्दुओं को फिर

---

* In this chapter we must deal chiefly with the Rajputs. The Rajputs are the tribe and clans who live in the deserts, mountain ranges and valleys that lie between the Ganges and Indus. Their country reaches southward almost as far as Narmada. They belong to several races. Some of the clans may be descended from the old Aryan chieftains, others are sprung from the Sythian and Hun invaders while others again are probably Dravidian tribesmen.

(History of India, by E. W. Thomson.)

वैष्णव धर्म में दाखिल कर दिया। उनके माथे में त्रिशूल की शकल का तिलक देकर, गले में तुलसी की माला पहिनाकर और मुख में रामनाम का मन्त्र डालकर सुन्दर वैष्णव बना दिया। सब मुसलमान रामानन्द के प्रभाव से श्रेष्ठ आर्य बन गये और अयोध्या में रहने लगे +। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं के साथ मुसलमानों के अनेकों सम्बन्ध हुए। 'चाँद' नामक हिंदी मासिक पत्र में डॉक्टर ताराचन्द के 'विप्रवाविवाह' लेख के आधार पर 'गुणसुन्दरी' नामक गुजराती पत्र के सम्पादक ने वर्ष १, अंक १ में एक नोट लिख दिया है। उस नोट में लिखा है कि 'सवाई माधवराव की शादी में सब सरदारों को निमन्त्रण दिया गया और हिन्दुमुसलमानों ने एक ही जगह पर बैठकर भोजन किया, तथा पेशवा बाजीराव ने हैदराबाद के नवाब की कन्या 'मस्तानी' के साथ विवाह किया' *।

इन घटनाओं से इस बात का दिग्दर्शन हो गया कि, मुसल्मान हिन्दू बने और उनकी लड़कियों के साथ विवाह हुए, तथा उनके साथ पंक्तिभोजन हुआ। यह सब कुछ करनेवाले वही ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं, जो हिन्दूजाति के अगुवा समझे जाते हैं। इनके अतिरिक्त रसखान आदि अनेक मुसलमानों ने हिन्दू साधू होकर हिन्दूसमाज में प्रवेश किया। इस तरह से मुसलमान तत्त्व का हिन्दूसमाज में दाखिल होना, इस बात की सिद्धि का प्रबल प्रमाण है कि, हिन्दुओं की प्राचीन आर्यता की जड़ हिलाने में इसने भी कम नहीं किया।

विदेशियों के षष्ठ दल का आगमन।

छठा और अन्तिम आगमन योरपनिवासी ईसाइयों का है। इन्होंने इस देश में आकर कहाँ तक राजनैतिक और व्यापारिक हानि पहुँचाई है, इसका वर्णन हम यहाँ नहीं करना चाहते। हम तो आगे यही दिखलाने का यत्न करेंगे कि, इनके द्वारा हमारी नैतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक क्या क्या हानियाँ हुई हैं, तथा हमारे आर्यत्वके नष्ट करने में इनका आगमन भी कहाँ तक कामयाब हुआ है। इनका सम्मिश्रण भी हममें हो रहा है। सैकड़ों योरोपीय गौरांग महिलाएँ आर्यों के घर पवित्र कर रही हैं और मद्यमांस से उनके पितरों का सत्कार कर रही हैं। जिन घरों में इनका प्रवेश है, वे घर, उन घरों के पड़ोसी और वह पड़ोसी समाज जिसके वे एक अङ्ग हैं, इनकी छूत से कैसे पाक रह सका होगा? हमें तो यही प्रश्न हैरान कर रहा है। हमने यहाँ तक आदिम काल से लेकर वर्तमान समय तक उक्त छ अनार्य प्रवेशों में दसबारह जातियों का सम्मिश्रण बतलाया।

+ रामानन्दस्य शिष्यो वै अयोध्यायामुपागतः॥
कृत्वा विना मतं मंत्रं वैष्णवांस्तानकारयत्।
भाले त्रिशूलचिह्नं च श्वेतरक्तं तदा भवेत्॥
कण्ठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता।
म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्दप्रभावतः॥
संयोगिनश्च ते ज्ञेया रामानन्दमते स्थिताः।
आर्याश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे॥ (भविष्यपुराण)

* 'सवाई माधवराव ना विवाह मां बधा सरदारोने नोतरूँ देवायुं अने मराठा तथा मुसलमान एकज स्थानपर बेसीने जम्या। पेशवा बाजिरावे हैदराबादना नवाबनी कन्या मस्तानी साथे लग्न कर्युं।

साथ ही प्रविष्ट हुए लोगों के विश्वास, रीतिरिवाज और कर्मधर्म भी लिखे। इससे सहज ही जाना जा सकता है कि, इनके मिश्रण से आर्यों में भी इनके गुणदोषों का सम्मिश्रण हुआ होगा और आर्यों के पतन का कारण बना होगा। आगे थोड़ासा आर्यों के पतन के प्रधान कारण मिश्रित दर्शन का वर्णन करते हैं।

सम्प्रदायप्रवर्तन और आर्यसाहित्यविध्वंस।

इस देश की धार्मिक अवस्था को देखकर यह बात विना ध्यान में आये नहीं रह सकती कि, हिन्दू आर्य जाति का धर्म अव्यवस्थित है, उसकी कोई सङ्गति नहीं है। पशुहिंसा, मद्यपान, स्त्रीसमर्पण, गुप्तेन्द्रियपूजन, वामियों का व्यभिचार, जगन्नाथपुरी की चित्रशाला, यज्ञों में पशुवध, गोवध, मनुष्यवध, ब्राह्मणवध और कुमारीवध आदि उत्पातों का वर्णन देखकर एकाएक ऐसी शंकाएँ उत्पन्न होने लगती हैं कि, क्या आर्यों में सभ्यता का प्रचार बिलकुल ही न था ? क्या वे निरे जंगली ही थे ? क्योंकि जहाँ विश्वामित्र, पराशर आदि व्यभिचारी हों, जहाँ राजा रन्तिदेवके घर हज़ारों गौओं का रोज़ वध हो, शिव और कृष्ण व्यभिचार करें, इंद्र और चंद्रमा ऋषिपत्नियों के साथ मुँह काला करें, एक एक स्त्री के बाईस बाईस बार विवाह हों, तिस पर भी तुर्रा यह कि यह सब अनाचार और अत्याचार करते हुए भी वे लोग ऋषि, मुनि, परमेश्वर, ईश्वरावतार और देवता कहलाते ही रहें और उनकी बड़ाई के पुल रातदिन बाँधे जायँ, ऐसी दशा में उन पुरातन हिन्दुओं के जंगली होने में सन्देह ही क्या है ? निश्चय ही वे जङ्गली और असभ्य थे। उनका इतिहास ही उन्हें असभ्य और जङ्गली बता रहा है। हिन्दू साहित्य को देखकर कोई भी मनुष्य बिना ऐसा ख्याल किये रह ही नहीं सकता।

जो लोग कहते हैं कि पराशरजी कुहर पैदा कर देते थे, विश्वामित्र ने नई सृष्टि बना दी थी और कृष्ण ने गोवर्धन उठा लिया था, इसलिए सामर्थ्यवान् होने से उनको दोष नहीं लगता, वे लोग यदि कुछ बुरा भी करते थे, तो वह भी उनकी महत्ता ही थी। ऐसा कहकर ये लोग मानो उनकी वह बुराई पक्की कर रहे हैं और यह सिद्ध कर रहे हैं कि, मांसाहारी, व्यभिचारी और शराबख़ोर भी सिद्ध, योगी और अवतार या महात्मा होते हैं और मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। क्या कभी व्यभिचारी, मांसाहारी, शराबख़ोर, पतित और नष्ट मनुष्य ऋषि, मुनि, देवता और अवतार हो सकता है और सिद्धि प्राप्त कर सकता है ? कभी नहीं। क्योंकि सिद्धि तो योग से प्राप्त होती है और योग का आरम्भ ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि से होता है। अहिंसा, योग और सिद्धि आदि का विस्तृत वर्णन योगशास्त्र में पतञ्जलि मुनि ने कर दिया है। अतः सोचना चाहिये कि जब विना उक्त पापकर्मों के त्याग किये योग में प्रवेश ही नहीं हो सकता और जब साधारण सिद्धियों तक पहुँच ही नहीं हो सकती, तब भला पतित कर्म करते हुए इस क्षुद्र मनुष्य को ऋषित्व, देवत्व और परमेश्वरत्व कैसे प्राप्त हो सकता है ? इस विचार से स्पष्ट हो जाता है कि, ऋषिमुनि कुमार्गी न थे। कुमार्गी और पापी मनुष्य ऋषि, मुनि, देवता आदि हो ही नहीं सकता। वह इस प्रकार की उन्नति कर नहीं सकता, जिस प्रकार की उन्नति आर्य ऋषियों ने याज्ञिक काल में की थी। इसलिए इस प्रकार के वर्णनों और इस प्रकार की अधोगति का कारण विदेशियों का सम्मेलन ही है— दार्शनिक मिश्रण ही है— वेद और

वैदिक ऋषि नहीं।

गत पृष्ठों के वर्णन से यह ज्ञात हो चुका है कि, पृथिवी के भिन्न भिन्न देशों से अनेक जातियाँ भारत में आकर आर्यों में मिल गई हैं। साथ ही यह भी ज्ञात हो गया है कि, उनके आचार, व्यवहार और चरित्र कैसे थे। अब आगे हम उनमें से सिर्फ़ चार जातियों का साहित्यप्रचार दिखलाना चाहते हैं और बताना चाहते हैं कि, किस प्रकार उन्होंने नवीन ग्रन्थ रचे, पुराने ग्रन्थों में प्रक्षेप किया, उनका अभिप्राय बदला और किस प्रकार शुद्ध आर्यों में अनेकों सम्प्रदायों को प्रचलित करके अपना आचार व्यवहार फैलाया। यहाँ हम सबसे पहिले मद्रास प्रान्तनिवासिनी द्रविड जाति की साहित्यरचना दिखलाना चाहते हैं और बतलाना चाहते हैं कि, उनके सम्मिश्रण से किस प्रकार आर्यों की वैदिकता नष्ट हुई।

द्रविड और आर्य–शास्त्र।

हम इसके पूर्व बतला आए हैं कि आस्ट्रेलिया से लङ्का होते हुए विदेशियों का एक दल आकर मद्रासप्रान्त में आबाद हो गया था। इस आगत दल का राजा रावण था। वह पंडित और योधा होते हुए भी दुराचारी था। वह इस देश में राज्यकामना से आया था, पर रामचन्द्र के द्वारा युद्ध में मारे जाने के कारण उसकी राज्यश्री उससे और उसके वंशजों से सदा के लिए नष्ट हो गई। रामचन्द्र के पुत्र कुश ने कुशद्वीप के साथ इन तमाम देशों में क़ब्ज़ा कर लिया, इसलिए उनकी रही सही राज्यकामना भी लुप्त हो गई। इस प्रकार से राज्य और ऐश्वर्य को खोकर ये बचे हुए अनार्य अपने को हिंदू कहने लगे और ऋषि पुलस्त्य तथा रावण का सिलसिला (वंशपरम्परा) जोड़कर कुछ लोग ब्राह्मण भी बन गये, तथा अपने को आर्य बनाने के लिए आर्य जातिके मूल पुरुष वैवस्वत मनु को भी द्रविड बनाया। भागवत् में लिखा है कि—

> योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः।
> स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम्॥

अर्थात् सत्यव्रत नामी द्रविड राजा ही वैवस्वत मनु हो गया। इस जाली लेख का यह मतलब है कि, आर्यों की उत्पत्ति द्रविडों से ही सिद्ध की जाय। परन्तु शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि 'उत्तरगिरेः मनोरवसर्पणम्' अर्थात् मनु का प्रादुर्भाव उत्तरगिरि हिमालय पर हुआ। इससे प्रकट है कि उत्तरनिवासी मनु का दक्षिणी द्रविड राजा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और यह जाली कथा केवल आर्य बनने की अभिलाषा से ही लिखी गई है। इस एक ही कल्पित कथा से सिद्ध हो जाता है कि, उन्होंने आरंभ ही से आर्य बनने की कैसी चेष्टा की है। इसके अतिरिक्त रावण ने अपने राक्षसी सिद्धान्तों को आर्यों में प्रचलित करके दोनों जातियों को एक करने का भी प्रयत्न किया। उसने वेदों का भाष्य किया और उस भाष्य में वेदों का अभिप्राय बदलकर आसुरी सिद्धान्तों का प्रक्षेप किया, किन्तु अब वह भाष्य रावण के नाम से नहीं मिलता। रावण के नाम से एक भाष्य का कुछ अंश मिलता है, पर वह उस रावण का भाष्य नहीं है। हाँ, द्रविड़ों में एक कृष्णवेद अब तक अवश्य चल रहा है, जिसमें प्राचीन रावण के भाष्य का अंश प्रतीत होता है। यद्यपि उसका भाष्य अब अलग नहीं मिलता, पर उसका हिंसामय यज्ञ, सुरापान, मांसभक्षण, व्यभिचार, आर्य-

बलि, लिङ्गपूजन आदि धर्म जो वह मानता था, कृष्णवेद के साहित्य में लिखे हुए मिलते हैं। रावण इन्हीं धर्मों का माननेवाला था। क्योंकि चक्रदत्त नामक वैद्यक के ग्रंथ में रावणसम्प्रदाय की एक बात रावण के ही नाम से लिखी है *। इसमें मांस, मद्य और देवपूजा वैसी ही है, जैसी वाममार्गियों की होती है। वाममार्ग के ग्रंथों में रावण के पुत्र के नाम से 'मेघनाद उड्डीस' आदि अन्य ग्रन्थ भी प्रचलित हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि, रावण के राक्षसी धर्म से ही वाममार्ग चला है और रावणकृत ग्रन्थों में उसी का वर्णन होना चाहिये। कृष्णवेद में रावणभाष्य का बहुत बड़ा भाग विद्यमान है, इसमें सन्देह नहीं। यदि कोई इस बात से इनकार करे, तो उसे बताना चाहिये कि, रावणादि अनार्यों का साहित्य कहाँ गया। हम तो कहते हैं कि वह सारा साहित्य इस तैत्तिरीय में ही समा गया है। हमारा यह अनुमान बहुत ही स्पष्ट हो जाता है, जब हम उस वेद की उत्पत्ति, उसके अन्दर की गड़बड़ और उस पर विद्वानों की सम्मति की ओर दृष्टि डालते हैं। उसकी उत्पत्ति के विषय में महीधर ने अपने यजुर्वेदभाष्य की भूमिका में लिखा है कि, व्यास ने अपने वैशंपायन आदि चार शिष्यों को यजुर्वेद पढ़ाया। उन चारों में से वैशंपायन ने अपने शिष्य याज्ञवल्क्य को भी पढ़ाया। एक दिन वैशंपायन किसी कारण से क्रुद्धमान होकर याज्ञवल्क्य से बोले कि तू हमारी सिखाई हुई विद्या त्याग दे। इस पर याज्ञवल्क्य ने वेद को उगल दिया। उस उगलन को वैशंपायन के अन्य शिष्यों ने तीतर पक्षी होकर चुन लिया। वही यह तैत्तिरीय नाम का वेद है। इसके बाद याज्ञवल्क्य ने दुःखित होकर सूर्य के पास से जो दूसरा वेद सीखा, वही शुक्ल यजुर्वेद कहलाया +। इस प्रकार बे सिर पैर की एक गल्प (गप) रचकर तैत्तिरीय प्रचारकों ने तैत्तिरीय अर्थात् कृष्ण यजुर्वेद का महत्त्व बनाया। परन्तु इसमें कोई महत्त्व की बात नज़र नहीं आती। हम तो इसे बहुत ही नीच बात समझते हैं। वान्त सदृश इस ज्ञानजूठन की समता ईश्वरप्रदत्त अपौरुषेय ज्ञान के साथ कैसे हो सकती है। इस कल्पना से तो यही सूचित होता है कि, तैत्तिरीय वेद बनावटी है। इसके बनावटी

* बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लोदनः शुक्लपुष्पं शुक्लसप्तध्वजाः सप्तप्रदीपाः सप्तस्वस्तिकाः सप्तवटकाः सप्तशष्कुलिकाः सप्तजम्बुडिकाः सप्तमुस्तकाः गंध पुष्पं ताम्बूलं मांसं सुराप्रभक्तं च पूर्वस्यां दिशि चतुष्पथे मध्याह्ने बलिर्दातव्यः। ततः अश्वत्थपत्रं जलकुम्भे निक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नापयेत् रसेन सिद्धार्थकमेषश्रृङ्गनिम्बपत्रशिवनिर्माल्यैर्बालकं धूपयेत्। ओं नमो रावणाय, अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा। एवं दिनत्रयं बलिं दत्वा चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम्। (चक्रदत्त, बालरोगचिकित्सा)

\+ व्यासशिष्यो वैशंपायनो याज्ञवल्क्यादिभ्यः स्वशिष्येभ्यो यजुर्वेदमध्यापयत्। तत्र दैवात्केनापि हेतुना क्रुद्धो वैशंपायनो याज्ञवल्क्यं प्रत्युवाच, मदधीतं त्यजेति। स योगसामर्थ्यान्मूर्तां विद्यां विधायोद्वाम। वांतानि यजूंषि गृह्णीतेति गुरूक्ता अन्ये वैशंपायनशिष्यास्तित्तिरयो भूत्वा यजूंष्यभक्षयन् तानि तैत्तिरीयानि यजूंषि ज्ञातानि। ततो दुःखितो याज्ञवल्क्यः सूर्यमाराध्यान्यानि शुक्लानि यजूंषि प्राप्तवान्। (महीधरकृत यजुर्वेदभाष्य)

होने में अनेकों हेतु हैं, पर हम यहाँ दो चार ही प्रमाण उपस्थित करते हैं।

(१) इस तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद के विषय में नये और पुराने सभी विद्वानों ने कहा है कि, यह मलिन बुद्धि से रचा गया है, इसलिए यह द्रविडों का ही रचा हुआ है। वेदभाष्यकार महीधर कहते हैं कि **'तानि यजूंषि बुद्धिमालिन्यात्कृष्णानि जातानि।'** अर्थात् बुद्धि-मालिन्य से कृष्ण यजुर्वेद की उत्पत्ति हुई है। इसी तरह स्वामी विद्यारण्य कहते हैं कि, **'बुद्धिमालिन्यहेतुत्वात् तद्यजुः कृष्णमीर्यते'**। अर्थात् बुद्धि की मलिनतासे वह यजु 'कृष्ण' कहा गया है।

यही सम्मति प्राचीन भाष्यकार द्विवेदाङ्ग की भी है। वे कभी कहते हैं, कि, **शुक्लानि यजूंषि शुद्धानि यद्वा ब्राह्मणेन मिश्रितमन्त्रकानि०**। अर्थात् शुक्ल यजुर्वेद शुद्ध है, परन्तु ब्राह्मणमिश्रित मन्त्रों के कारण कृष्णवेद अशुद्ध है। 'आर्यविद्यासुधाकर' में भट्ट यज्ञेश्वर कहते हैं कि, **'यज्ञकर्मानुष्ठानमार्गस्य दुर्ज्ञेयत्वात् कृष्णत्वमिति'** अर्थात् यज्ञकर्म के अनुष्ठानमार्ग में दुर्ज्ञेयता उत्पन्न होने से ही उसको कृष्णत्व प्राप्त हुआ है। पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी 'निरुक्तालोचन' में लिखते हैं कि, **गुरुमुखतोऽधीताऽपि तत्परित्यक्ता प्राचीनतमा चरकाध्वर्य्युसंहितैर्वान्यैरान्ध्रादिदेशीयैस्तित्तिर्य्यादिसंज्ञकैर्गृहीता......एवं तत् तित्ति-र्य्यादिभिर्मन्त्रब्राह्मणश्रुतयश्च पृथक् पृथगधीता अपि यज्ञकार्येषु तद् व्यवहार सौष्ठवं साधयितुं विमिश्रीकृता इति द्वावेव मन्त्रब्राह्मणग्रन्थौ वान्तपूर्णाविव सम्पन्नौ अतएव कृष्णेति व्यपदेशभागिनौ'** अर्थात् गुरुमुख से पढ़ी हुई और त्याग की हुई, अथवा तैत्तिरीयसंज्ञक आन्ध्रादिकों द्वारा ग्रहण की हुई चरकाध्वर्युसंहिता, जो मंत्रब्राह्मणों का मिश्रण करके यज्ञसाधन के योग्य बनाई गई है, वान्त की तरह मिश्रित होने से कृष्णवेद कही गई है। इन सब प्रमाणों से प्रतीत होता है कि, तैत्तिरीयसंहिता मंत्रब्राह्मणों का मिश्रण करके आन्ध्रादिकों के द्वारा तैयार की गई है। इसलिए आदि में इसके रावणरचित होने में अधिक सन्देह नहीं रहता।

(२) ऊपर जितने प्रमाण दिये गये हैं, सबसे यही प्रतीत होता है कि, इस वेद में मंत्रभाग और ब्राह्मणभाग का मिश्रण है, परन्तु प्राचीन संहिताओं के ब्राह्मण अलग अलग हैं, मिश्रित नहीं। ऋग्वेद का ऐतरेय, यजुर्वेद का शतपथ, साम का ताण्ड्य और छान्दोग्य तथा अथर्व का गोपथब्राह्मण अलग अलग है। परन्तु तैत्तिरीय में यह बात नहीं है। इसकी संहिता के मंत्रभाग में ब्राह्मणभाग और ब्राह्मणभाग में मंत्रभाग मिला हुआ है। यही कारण है कि अब तक यह निर्णय नहीं हुआ कि तैत्तिरीय साहित्य में कौन सा मंत्रभाग है और कौन सा ब्राह्मणभाग है। जितने तैत्तिरीय शाखा के माननेवाले ब्राह्मण हैं और अपने वेद का ज्ञान रखते हैं, उतने ही प्रकार की बातें करते हैं। कोई किसी अंश को मन्त्र कहता है और कोई किसी भाग को ब्राह्मण कहता है। यही कारण है कि उस वेद की मन्त्र-संख्या का पता नहीं है। मंत्रसंख्यासम्बन्धी उनका प्रसिद्ध श्लोक यह है—

अष्टादशसहस्राणि मंत्रब्राह्मणयोः सह।
यजूंषि यत्र पठ्यन्ते स यजुर्वेद उच्यते॥

अर्थात् मन्त्रब्राह्मण के साथ जहाँ अठारह हज़ार यजु पढ़े जाते हैं, वही यजुर्वेद कहलाता है। इसमें मन्त्रब्राह्मण की संयुक्त संख्या अठारह हज़ार बतलाई गई है और समस्त संख्या यजुर्वेद ही कही गई है। परन्तु कहीं भी आज तक किसीने यजुर्वेद को ब्राह्मण नहीं कहा और

न ब्राह्मण को ही यजुर्वेद कहा है। इसलिए उक्त संख्या शुद्ध यजुर्वेद की नहीं है। शुद्ध यजुर्वेद की मन्त्रसंख्या इस संख्या से बहुत कम है। शुद्ध यजुर्वेद की मंत्रसंख्या के लिए स्पष्ट लिखा है कि—

द्वे सहस्रे शतन्यूनं मंत्रे वाजसनेयके।

अर्थात् यजुर्वेद के १९०० मन्त्रों का द्रष्टा वाजसनेय ऋषि है। इस तरह से शुद्ध यजुर्वेद की समस्त मंत्रसंख्या केवल १९०० है। कहाँ सौ कम दो हज़ार और कहाँ अठारह हज़ार? कुछ ठिकाना है, कितना बड़ा मिश्रण किया गया है? इन दोनों संख्याओं के मिलान से ही ज्ञात होता है कि कृष्ण यजुर्वेद रावणादि द्रविड़ों का ही बनाया हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

(३) वैदिकों की सनातन मर्यादा के अनुसार यज्ञ कराने के लिए चार विद्वानों की आवश्यकता होती है कि ये चारों विद्वान् एक एक वेद के ज्ञाता होते हैं। इनके वहदे का काम इस प्रकार होता है कि, 'ऋग्वेदेन होता करोति, यजुर्वेदेनाध्वर्युः, सामवेदेनोद्गाता, अथर्वैर्वा ब्रह्मा' अर्थात् ऋग्वेद से होता, यजुर्वेद से अध्वर्यु, साम से उद्गाता और अथर्व अथवा चारों वेदों से ब्रह्मा होता है। इसी मर्यादा के अनुसार पूर्वकाल में जब राजा हरिश्चन्द्र ने यज्ञ किया था, उस समय उनके यज्ञ में विश्वामित्र, जमदग्नि, अगस्त्य और वसिष्ठ आदि चार ही ऋषि क्रम से चारों पदों पर नियुक्त हुए थे। इसी तरह जब धर्मराज युधिष्ठिर ने यज्ञ किया था, तो उसमें भी याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, ब्रह्मदेव, और व्यास आदि चार ही ऋषि चारों कार्यों पर नियुक्त हुए थे। परन्तु इस सनातन वैदिक मर्यादा के विरुद्ध इस तैत्तिरीय साहित्य में उक्त चार कार्यकर्ताओं के स्थान में केवल एक चरक नामक आचार्य ही की योजना बतलाई गई है, यह कितनी बड़ी अनार्यता है?

पुराणों में जितने यज्ञों का वर्णन है, उन सबमें यजुर्वेद से अध्वर्यु की ही योजना पाई जाती है। विष्णु और वायुपुराण के देखने से ज्ञात होता है कि, जन्मेजय की दोनों यज्ञों में शुक्ल यजुर्वेद से अध्वर्यु की ही योजना हुई थी और धर्मराज के यज्ञ में याज्ञवल्क्य की ही योजना हुई थी। यदि प्राचीन काल में चरक की योजना का क़ायदा होता, तो जिन याज्ञ-वल्क्य आदि के द्वारा इस तैत्तिरीय वेद की उत्पत्ति बतलाई जाती है, उन्हीं के समय में उन्हीं के साथ चरक की ही नियुक्ति होती, परन्तु वहाँ चरक का कहीं पता नहीं मिलता! चरक की आर्यसमाज में नियुक्ति ही नहीं है। चरक तो अनार्य जाति का आचार्य है। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि, 'मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम' अर्थात् चरक तो मद्र देश के घूमनेवाले हैं। कर्ण ने भी मद्रों की निन्दा की है। अतः मद्य, मांस, व्यभिचार करने का प्रचार करनेवाले यही हैं। इसीलिए यजुर्वेद ३०। १८ के ब्राह्मणभाग में स्पष्ट लिखा हुआ है कि, 'दुष्कृताय च चरकाचार्यं' अर्थात् दुष्ट कर्म करनेवालों को चरकाचार्य कहते हैं। अतएव चरक को महत्व देनेवाला यह तैत्तिरीय वेद निश्चय ही दुष्कर्मी विदेशियों का—असुरों का—रावण का—द्रविड़ों का बनाया हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

(४) अगले ज़माने में जब वेदों का पठनपाठन था, उस समय ऋषियों ने वेदों के पठन पाठन करने की कई एक विधियाँ निर्धारित की थी। उन विधियों को शाखाभेद

कहा करते थे। शाखाभेद के प्रवर्तक ही गोत्रप्रवर्तक होते थे। जो विद्यार्थी जिस शाखा का अध्ययन करता था, वह अपने को उसी शाखा और उसी शाखा के प्रवर्तक ऋषि के गोत्र का कहता था। इसलिए उस ज़माने में एक वेद की अनेक शाखाएँ और अनेक गोत्र हो गये थे। और अनेक ब्राह्मण अनेक शाखाओं और अनेक गोत्रों में विभक्त हो गये थे। परन्तु इस तैत्तिरीय वेद की कोई भी भिन्न शाखा नहीं थी, न इनके कोई नवीन गोत्र ही बने थे। इसलिए द्रविडों में शाखाभेद नहीं पाया जाता। शाखाभेद के लिए उनके यहाँ उसी तैत्तिरीय वेद के तैत्तिरीय आरण्यक में लिखा है कि—

अस्याः शाखाभेदेन अनुवाकसंख्याभेदो वर्तते।
तत्र द्राविडैरस्याश्चतुःषष्टिसंख्याकानुवाकाः पठ्यन्ते।
आन्ध्रैरस्याशीत्यनुवाकाः। कर्णाटकैश्चतुः सप्तत्यनुवाकाः।
अन्यैरेकोननवत्यनुवाकाः परिपठ्यन्ते।

अर्थात् इसमें शाखाभेद के स्थान में अनुवाकों की संख्या का भेद रक्खा गया है। इस तैत्तिरीय वेद के ६४ अनुवाक द्राविडों के, ८० आन्ध्रों के, ७४ कर्णाटकों के और ८६ अन्य तैलङ्गादिकों के हैं। इस प्रमाण से यह स्पष्ट हो गया कि इस वेद की शाखाएँ नहीं हैं। साथ ही यह भी सिद्ध हो गया कि, वह समस्त वेद उन्हीं में चरितार्थ है और इस वेद का आर्य जनता से कुछ वास्ता नहीं है। हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि किसी भी आर्य ब्राह्मण की शाखा तैत्तिरीय कृष्ण वेद नहीं है। इसलिए यह वेद इन्हीं का या इनके पूर्वाचार्य रावणादि का बनाया हुआ है। इसके अतिरिक्त समस्त द्राविडों के वही गोत्र हैं, जो अन्य शुद्ध ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी ब्राह्मणों के हैं। क्या कारण है कि तैत्तिरीय से सम्बन्ध रखनेवाला कोई गोत्र नहीं है? कारण स्पष्ट है कि तैत्तिरीय का किसी ऋषिमुनि से वास्ता नहीं है। वह रावणादि द्राविडों की रचना है और उन्हीं के लिए है। क्योंकि मनुस्मृति में लिखा है कि **'यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्'** अर्थात् मद्यमांस आदि राक्षसों के ही खाद्य पेय पदार्थ हैं। उधर चारवाक कहता है कि **'मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्'** अर्थात् वेदों में मांसाहार निशाचरों का मिलाया हुआ है। इधर हम देख रहे हैं कि रावणादि राक्षस मद्यमांसभक्षी थे। अतः वेदों के नाम से मद्यमांस का प्रचार उन्हीं का किया हुआ है। आगे हम इस रावणादिकृत तैत्तिरीय साहित्य से मद्यमांस की लीला भी दिखलाने का यत्न करते हैं।

कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि **'वाचे पुरुषमालभते'** इस पर सायणाचार्य भाष्य करते हुए लिखते हैं कि **'वाग्देवतायै पुरुषं पूरकं स्थूलशरीरमित्यर्थः'** अर्थात् वाणी के देवता के लिए पुरुष का वध करे। उसी में फिर लिखा है कि **'ब्राह्मणे ब्राह्मणमालभते'** इस पर सायणाचार्य कहते हैं कि **ब्राह्मणजात्याभिमानी देवस्तस्मै कंचित् ब्रह्मवर्चसयुक्तं ब्राह्मणजातीयं पुरुषमालभते।'** अर्थात् ब्राह्मण अभिमानी देवता के लिये ब्राह्मवर्चसयुक्त ब्राह्मण का वध करे। उसी ग्रंथ में फिर लिखा है कि, **'आशायै जामिम्'**। इस पर सायणाचार्य भाष्य करते हुए लिखते हैं कि **'आशायै अलभ्यवस्तु-विषयतृष्णाभिमानिन्यै निवृत्तरजस्कां भोगायोग्यां स्त्रियमालभते'** अर्थात् अलभ्य वस्तु की तृष्णा के अभिमानी देवता के लिए जिस स्त्री का रजस्वला बंद हो गया हो, उसका वध

करें । उसी में फिर लिखा है कि 'प्रतीक्षायै कुमारीम् ।' इस पर सायणाचार्य कहते हैं कि 'प्रतीक्षायै लब्धव्यस्य वस्तुनो लाभप्रतीक्षणाभिमानिन्यै कुमारीमनूढां कन्यामालभते' अर्थात् लब्ध प्रतीक्षावाले देवतों के लिए कुमारी जो अभी युवा नहीं हुई उसका वध करें । इसके सिवा 'तैत्तिरीयापस्तंब हिरण्यकेशी' नामी उसी की एक पुस्तक के कांड ६ प्र० १ अ० ८ में लिखा है कि 'पशूनेवावरुन्धे सप्त ग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः सप्तच्छन्दाᳬस्युभयस्यावरुध्यै' अर्थात् यज्ञ में गाय घोडा आदि सात ग्राम्य पशु, काले हिरण आदि जंगली सात पशु अथवा दोनों प्रकार के सात पशुओं की योजना करे । फिर लिखा है कि 'आदद ऋतस्य त्वादेव हविः पाशेनाऽऽरभे० ।' इस पर सायण के भाष्य में है कि 'सावित्रेण रशनामादाय पशोर्दक्षिणाबाहौ परिवीयोर्ध्वमुत्कृष्य आदद इति । दक्षिणोऽधःशिरसि पाशेन क्ष्णया प्रतिमुच्य धर्षा मानुषानित्युत्तरतो यूपस्य नियुनक्ति दक्षिणत ऐकादशिनान् इति । अक्ष्णया परिहरति वध्यँ हि प्रत्यंचं प्रतिमुंचति व्यावृत्यै' अर्थात् 'देवस्य त्वा०' इस मन्त्र से रस्सी लेकर 'तत्सवितुः०' इस मन्त्र से पशु की दक्षिण बाहु बाँधकर ऊपर खींचे पश्चात् 'आदद०' इस मंत्र से रस्सी को सिर की तरफ़ ले जाकर दूसरे पैरों को बाँधकर पशु को अच्छी तरह जकड़ दे, जिससे हिले डुले नहीं । इसके बाद लिखा है कि 'वज्रो वै स्वधितिः शांत्यै पार्श्वतः० ।' इसके भाष्य में लिखा है कि 'वपोत्खेदनार्थं दक्षिणपार्श्वे छिन्द्यात् । शूलाग्रेण वपां छिन्द्यात् ।' अर्थात् उस पशु के चर्म को त्रिशूल से निकाले और शूल की नोक से चर्बी जुदा करे । जब मांस इकट्ठा हो जाय, तब 'सुकृतात्तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधᳬ शृतपाकं पँचन्तु' अर्थात् शमिता (मांस को साफ़ करनेवालों) से मांस साफ़ कराकर पकाया जावे और 'एतद्यज्ञस्य यदिडा साभिप्रश्नाति' अर्थात् उस मांस से होम करके शेष मांस को खाया जावे ।

इस तैत्तिरीय साहित्य में इस प्रकार पशुहिंसा और मांसयज्ञ तथा मांसभक्षण की विधि का वर्णन है । इसी साहित्य में मद्य (शराब) बनाने और पीने की विधि का भी उल्लेख है । वहाँ लिखा है कि 'अन्नस्य वा एतच्छमलं यत्सुरा । यस्य पिता पितामहादि सुरा न पिबेत् स व्रात्यः' । अर्थात् दो प्रकार की मदिरा को मिलाकर पिये क्योंकि जिसके पिता पितामहादि सुरा नहीं पीते, वे व्रात्य हैं—नीच हैं । इसके आगे मांस खाकर और मद्य पीकर फिर यजमान पत्नी के साथ क्या क्या व्यवहार करना लिखा है, वह हम यहाँ नहीं लिखना चाहते ।

इस तरह हमने इस तैत्तिरीय साहित्य से अच्छी तरह दिखला दिया कि, उसमें द्रविडों ने अपने आचार व्यवहारों का खूब वर्णन किया है । इतना ही नहीं कि उन्होंने यज्ञों के नाम से केवल मद्यमांस ही का प्रचार किया है, प्रत्युत उन्होंने वाममार्ग के समस्त अङ्ग—उपाङ्गों का प्रचार किया है । यह बात सब पर विदित है कि, रावण लिंगपूजक था । वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि—

यत्र यत्र प्रयाति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ।

अर्थात् रावण जहाँ जहाँ जाता है, वहाँ वहाँ सुवर्णमय लिंग ले जाता है । दूसरी जगह लिखा है कि 'वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिंगं स्थाप्य रावणः' । अर्थात् बालू की वेदी पर

रावण ने लिंग की स्थापना की। इन वर्णनों से ज्ञात होता है कि वह लिंग की पूजा करता था। उसकी जाति में यह रिवाज आज तक प्रचलित है। दक्षिण के कमाड़ी लोग सोने, चांदी और पाषाण के लिंग गले में डाले रहते हैं। इसी लिंगपूजा से ही शिवलिंग की पूजा प्रचलित हुई है। रायबहादूर चिन्तामणि विनायक वैद्य, एम्० ए० **'भारतमीमांसा'** के पृष्ठ ४५२ में लिखते हैं कि, 'ऐसा मानने के लिए गुंजायश है कि लिंगपूजा बहुधा अनार्य लोगों में बहुत दिन से प्रचलित थी और आर्यों ने उस पूजा का शङ्कर के स्वरूप में अपने धर्म में समावेश कर लिया।' इसी तरह **'भारतवर्ष का इतिहास'** भाग १, पृष्ठ ६८ में श्रीमान् मिश्रबन्धु लिखते हैं कि, प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से इतना अनुमान होता है कि यह अनार्य लोग भूत, प्रेत, पर्वत और वृक्ष आदि को पूजते थे। आर्यमत में रुद्र, काली आदि के पूजनविधान तत्कालिक अनार्य मत के छाया से समझ पड़ते हैं।' अतः यह स्पष्ट हो गया कि वाममार्ग का पूरा सामान अनार्य जातियों से ही आया है। क्योंकि 'कुलार्णव' मे लिखा हुआ है कि—

मद्यमांसविहीनेन न कुर्यात पूजनं शिवे।
न तुष्यामि वरारोहे भगलिङ्गामृतं विना।

अर्थात् हे पार्वती! मद्यमांस के विना मेरी (शिव की) पूजा न करना चाहिये। मैं विना......के सन्तुष्ट नहीं होता। यह घृणित पूजा आफ्रिकानिवासी प्राचीन सीरियन लोगों में प्रचलित थी। वहाँ से आये हुए रावणादि के चरित्र से भी यही बात पाई जाती है। इसलिए यह बात निर्विवाद हो गई कि, आर्यों में वाममार्ग का प्रचार अनार्यों से ही आया है और इसी वाममार्ग को लेकर इन्हीं द्रविड़ों के द्वारा भारत देश में अनेक अवैदिक मतमतांतर प्रचलित हुए हैं। यहाँ हम थोड़ासा मतमतान्तर अर्थात् सारे सम्प्रदायप्रवर्तन का इतिहास लिखते हैं और दिखलाते हैं कि भारत देश में किस प्रकार ऐसे मतमतान्तरों और सम्प्रदायों की प्रवृत्ति हुई और उससे आर्य जाति को हानि पहुँची।

सम्प्रदायप्रवर्तन।

ऊपर हम यह दिखला आये है कि आस्ट्रेलियानिवासी अनार्य लोग, मौका पाकर द्राविड होकर ब्राह्मण बन गये और अपने देश तथा जाति के असभ्य और अनार्य आचार-विचारों को आर्यों में वेद, धर्म और यज्ञ आदि के नाम से प्रचलित किया। वही आचार-विचार पहले पड़ोसी देशों में और फिर उड़ीसा, बंगाल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि में धीरे धीरे प्रचलित हुए। क्योंकि यह निश्चित बात है कि मनुष्यजाति यदि धर्म, शासन और सामाजिक बन्धनों से सीधे रास्ते पर न चलाई जाय, तो वह पतित होकर अनाचारिणी हो जाती है। विशेष कर ऐसी स्थिति में जब उसका धर्म और समाज खुद ही अधर्म और अनाचार को कर्तव्य तथा मोक्षप्रद मान ले, ऐसी दशा में उत्तम मनुष्यों को भी बिगड़ने में देर नहीं लग सकती। उत्तम मनुष्यों को बिगाड़नेवाले दुष्ट मनुष्य पहिले स्वयं दिखाने को उत्तम बनते हैं और फिर धीरे धीरे अपना दुष्ट स्वभाव उत्तम मनुष्यों में दाखिल करते हैं। नवीन सिद्धान्त के प्रचार करनेवालों ने हमेशा से इसी रीति का अवलम्बन किया है। उनका सिद्धान्त है कि जिस जाति को अपने सिद्धान्त सिखलाना हो, उसकी भाषा में ऐसे ऐसे ग्रन्थ लिखे जायँ, जिनमें

तीन बातों का सम्मिश्रण हो। पहिली बात यह हो कि, उस जाति के जो सिद्धान्त अपने प्रचार में बाधक न हों, वे सब मान लिए जायँ। उनकी प्रशंसा की जाय और विस्तार से उसका वर्णन किया जाय। दूसरी बात यह हो कि उस धर्म की सूक्ष्म बातें जो सर्वसाधारण की समझ में न आती हों, उनका अभिप्राय बदल कर उसमें अपने मत की आवश्यक बातें मिश्रित करके गूढ भाषा में वर्णित की जायँ और तीसरी बात यह हो कि साधारण बातों का खण्डन करके उनके स्थान में अपनी समस्त बातें भर दी जायँ। ये तीनों बातें इस क्रम से डाली जायँ कि पहली बात बहुत विस्तार से हो, दूसरी साधारण हो और तीसरी बहुत ही न्यून परिमाण में हो। इस प्रकार का बन्दोबस्त करने से एक जाति दूसरी जाति में अपने सिद्धांतों का प्रचार कर सकती है। ये सिद्धान्त इतने व्यापक और सच्चे हैं कि नवीन सिद्धान्तप्रवर्तकों को, यदि वे बुद्धिमान् हैं तो, काम में लाना ही पड़ता है। हम जिन जिन जातियों का साहित्यप्रचार इस प्रकरण में लिखना चाहते हैं, यद्यपि इन सबों ने इस सिद्धांत का अनुकरण किया है, तथापि यह बात द्रविडों के सिद्धांतप्रचार में विशेष रूप से देखी जाती है। द्रविडों ने आर्यों के विश्वासों को इसी क्रम से बिगाड़ा है। यह बात आर्यों के दार्शनिक विषयों के अवलोकन से अच्छी तरह ज्ञात हो जाती है। उपनिषद्, गीता और वेदान्तदर्शन में अनार्यदर्शन का मेल बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। अतः हम यहाँ इस प्रस्थानत्रयी की विस्तृत आलोचना करके दिखलाना चाहते हैं कि, किस प्रकार आर्य उपनिषदों में आसुर उपनिषदों का मिश्रण हुआ है।

हम गत पृष्ठों में लिख आये हैं कि, पूर्व काल ही में मद्रासप्रान्त में आस्ट्रेलिया, आफ्रिका और मेसोपोटामिया की हिट्टाइट जाति का जमाव हो गया था। इस जमे हुए द्रविडदल में असीरिया और मिश्र के असुरों के ही जैसे आचार और विचार अच्छी तरह भरे हुए थे, क्योंकि एक ही स्थान में उत्पन्न होने से इन सबके आचारविचार एक समान ही थे। उन विचारों में जो विचार दर्शनशास्त्र से सम्बन्ध रखते थे, वही आसुर उपनिषद् कहलाते थे। इस आसुर उपनिषद् का ज़िक्र छान्दोग्य उपनिषद् में है। वहाँ लिखा है कि 'असुराणां ह्येषा उपनिषद्' अर्थात् यह असुरों का उपनिषद् है। इससे प्रतीत होता है कि उपनिषदों में आसुर उपनिषद् का समावेश है। उपनिषदों में ही नहीं, वह गीता और ब्रह्मसूत्रों में भी मिश्रित है। कहने का मतलब यह कि उपनिषद्, गीता और वेदान्तदर्शन जिन्हें प्रस्थानत्रयी कहा जाता है, कुछ अंशों में आसुरी विचारों से भरे हुए हैं। इस प्रस्थानत्रयी की आलोचना करने के पूर्व जान लेना चाहिये कि इसका यह नाम क्यों रक्खा गया है।

प्रस्थानत्रयी नाम बौद्धों के त्रिपिटक नाम की नक़ल है। जिस प्रकार बौद्धों के तीन प्रकार के साहित्य को त्रिपिटक कहते हैं, उसी प्रकार वेदान्त से सम्बन्ध रखनेवाले तीन प्रकार के साहित्य को प्रस्थानत्रयी कहते हैं और जिस प्रकार आसुर धर्म हटाने के लिए त्रिपिटक की योजना हुई थी, उसी तरह आसुर धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए प्रस्थानत्रयी की योजना हुई है। त्रिपिटक बौद्ध साहित्य है, पर वह साहित्य जिस प्राचीन साहित्य के आधार पर तैयार हुआ है, वह चारवाक का बार्हस्पत्य साहित्य है। आसुरी आचार का सबसे प्रथम खण्डन करनेवाला चारवाक ही हुआ है। उसी ने कहा है कि—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।

अर्थात् यदि यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग को जाता है, तो यजमान अपने पिता को मारकर स्वर्ग को क्यों नहीं भेज देता? बृहस्पति कहता है कि '**मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्**।' अर्थात् वेदों में मांसाहार निशाचरों का मिलाया हुआ है। इसलिए वह कहता है कि '**त्रयो वेदस्य कर्तारः भण्डधूर्तनिशाचराः**।' अर्थात् उपर्युक्त प्रकार के मांसमद्यविधानयुक्त तीनों वेद धूर्त और निशाचरों के बनाए हुए हैं। उसने केवल कहा ही नहीं, प्रत्युत जिन वेदों में इस प्रकार की लीला है, उनमें कहे हुए धर्म कर्म आदि सभी शिक्षाओं का खंडन करते हुए वह उनसे अलग हो गया और अलग होकर अपना एक सम्प्रदाय खड़ा कर दिया, जिसके द्वारा आसुर धर्म का खंडन होता रहा। इसी सम्प्रदाय के उपदेशों ने बौद्ध और जैन सम्प्रदायों की सृष्टि की। इनमें बौद्धों ने बड़ी उन्नति की। उनका मत समस्त भारतवर्ष में फैल गया और पाँच छे सौ वर्ष तक धूम से प्रचलित रहा। इस बीच में जो कुछ साहित्य तय्यार हुआ, वह तीन भागों में विभक्त किया गया और उसी का नाम त्रिपिटक रक्खा गया। किन्तु मद्रासप्रान्त में एक गोष्ठी थी, जो आसुर धर्म का फिर से प्रचार करना चाहती थी। इस गोष्ठी का मूल प्रचारक बादरायण था। इसी की शिष्य और वंशपरम्परा में स्वामी श्री आदि शङ्कराचार्य का जन्म हुआ। 'The Age of Shankar' नामी ग्रन्थ के लेखक ने इस वंशपरम्परा के विषय में लिखा है कि बादरायण के शुक, शुक के गौड़पाद, गौडपाद के गोविन्द और गोविन्द के शङ्कराचार्य हुए। शङ्कराचार्य के द्वारा जिस साहित्य का विस्तारपूर्वक प्रचार हुआ, उसका मूल सम्पादक बादरायण ही था। बादरायण द्वारा सङ्कलित वेदान्तदर्शन प्रसिद्ध है।

हमारा अनुमान है कि गीता और उपनिषदों में भी मिश्रण इसी गोष्ठी के द्वारा हुआ है। इस प्रकार से यह समस्त मिश्रित साहित्य तैयार हुआ और इसी मिश्रित साहित्यद्वारा श्री शङ्कराचार्य ने प्रचार किया। उनके प्रचार से प्रभावित होकर कई राजाओं ने बौद्धों को नष्ट कर दिया। माधवाचार्यकृत 'शङ्करदिग्विजय' में लिखा है कि उस समय राजाओं का हुक्म था कि, हिमालय से लेकर समुद्रपर्यन्त बसे हुए आबालवृद्ध बौद्धों को जो न मारे वह मृत्युदण्ड के योग्य है ×। इस सख्ती का फल यह हुआ कि भारतवर्ष में बौद्धों का अभाव हो गया। इस प्रचार में सुविधा उत्पन्न करने के लिए शङ्कराचार्य ने पूर्वरचित साहित्य के तीनों विभागों का भाष्य कर दिया। अतः सभाष्य उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र प्रस्थानत्रयी के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

हमारा दृढ विश्वास है कि यदि वेदों का कोई विरोधी है, यदि आर्य सभ्यता का कोई नाश करनेवाला है और यदि आसुरी भाव फैलाकर जाति का कोई पतन करनेवाला है, तो वह प्रस्थानत्रयी का मिश्रण ही है। इसी की आड़ से देश में अनेकों संप्रदाय, अनेकों अनाचार और अनेकों भ्रम फैले हुए हैं। आज तक श्रुति, स्मृति और दर्शन आदि गम्भीर शब्दों से

× **आसेतुरातुषाराद्रिर्बौद्धानां वृद्धबालकम्।**
न हन्ति यः स हन्तव्यो भृत्य इत्येव सं नृपाः। (शंकरदिग्विजय)

प्रभावित होकर असली वृत्तांत को जानते हुए भी किसी ने इन ग्रन्थों के विरुद्ध कलम नहीं उठाई । सबने अर्थ बदल कर अपनी बातों को सिद्ध करने की झूठी पैरवी की है । पर अब वह समय नहीं है । हम चाहते हैं कि इस प्रस्थानत्रयी का भेद खोल दें और इन तीनों ग्रन्थों की असलियत लोगों के सामने रख दें ।

प्रस्थानत्रयी की पड़ताल ।

जिस समय वर्तमान प्रस्थानत्रयी का सम्पादन हुआ, उस समय न तो यह रूप इन उपनिषदों का था और न गीता तथा व्याससूत्रों का ही । हमारा विश्वास है कि सनातन से संहिताओं के मन्त्रों को ही श्रुति कहा जाता था । क्योंकि सब लोग उन्हीं को आज तक सुनते सुनते आ रहे हैं । उपनिषद् तो ब्राह्मणों के कतिपय भाग हैं, जो ऋषियों के बनाये हुए हैं । गीता में ही लिखा हुआ है कि, **'ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।'** अर्थात् अलग अलग छन्दों में उपनिषदों को अनेक ऋषियों ने कहा है । यही सब छन्द ब्रह्मसूत्रों में ग्रथित किए गये हैं । इस वाक्य से ही उपनिषदों की असलियत प्रकट हो जाती है कि, वे वेद नहीं प्रत्युत ऋषिप्रणीत ग्रन्थ हैं । शंकराचार्य स्वामी ने प्रायः सब प्रमाण इन्हीं उदनिषदों से ब्रह्मसूत्रोंके भाष्य में उद्धृत किए हैं । जिस प्रकार उपनिषदें ति बनाई गईं, उसी तरह गीता को स्मृति बनाया गया । पर गीता को अभी किसी में स्मृति कहीं नहीं कहा । प्राचीन समय की स्मृतियाँ मनु, याज्ञवल्क्य आदि हैं, पर इनमें वे बातें वर्णित नहीं हैं, जिनकी आवश्यकता बादरायण–गोष्ठी को थी । जिस प्रकार संहिता में आवश्यक बातों के न मिलने से उपनिषदें श्रुति बनीं, उसी तरह स्मृतियों में वे बातें न मिलने से स्मृति के लिए गीता ढूँढ निकाली गई और बनाई गई । व्याससूत्रों में जहाँ स्मृति के प्रमाणों की दरकार पड़ी है, वहाँ श्रीशंकराचार्य ने गीता के ही श्लोक उद्धृत किये हैं । इस तरह से इस नवीन श्रुति स्मृति की सृष्टि करके सिद्धांतों को दार्शनिक विचारों से पुष्ट करने के लिए ब्रह्मसूत्रों की रचना हुई । कहा नहीं जा सकता कि वेदव्यास का लिखा हुआ कोई सूत्रग्रन्थ था । यदि था तो उसमें बहुत थोड़े सूत्र थे । वर्तमान ब्रह्मसूत्रों के बहुत से सूत्रों में तो केवल उक्त उपनिषद् और गीता में आये हुए शब्दों का खुलासा ही है, अथवा उन श्रुतियों पर दार्शनिक प्रभाव डाला गया है, जो आसुर उपनिषद् से ली गई हैं । इस तरह से प्रस्थानत्रयी बनी है । आगे हम उक्त तीनों ग्रन्थों का विस्तारपूर्वक वर्णन करके दिखलाते हैं कि, इनमें किस प्रकार आसुर सिद्धांत भरे हुए हैं और किस प्रकार उनको हिन्दुओं ने स्वीकार किया है ।

उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्रों में मुख्य उपनिषद् ही हैं । क्योंकि यह प्रसिद्ध ही है कि कृष्ण भगवान् ने उपनिषद् रूपी गौओं को दूहकर गीतारूप दुग्ध अर्जुन को पिलाया और यह भी प्रसिद्ध है कि उपनिषदों में गाए हुए पद ही ब्रह्मसूत्रों में पिरोये गये हैं । तात्पर्य यह कि गीता और वेदान्तदर्शन बिलकुल ही उपनिषदों के आधार पर हैं । इसलिए उपनिषदों की ही आलोचना से यद्यपि दोनों की आलोचना हो जाती है, तथापि हम उपनिषदों के साथ साथ थोड़ाबहुत गीता और ब्रह्मसूत्रों की भी आलोचना करते चलेंगे । ये उपनिषद् यों तो सैकड़ों हैं, पर श्रीशंकराचार्य ने दश उपनिषदों पर ही भाष्य किया

है । इससे इन दशों की मर्यादा अधिक मानी जाती है । इन दशों उपनिषदों में आसुर उपनिषद् का मिश्रण है । आसुर भाग वेदों की उपेक्षा करते हैं, ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं, यज्ञों के करनेवालों को गालियाँ देते हैं और अनाचार का प्रचार करते हैं । आगे हम इन तमाम बातों को एक एक करके दिखलावेंगे और साथ साथ गीता और उपनिषदों की भी पड़ताल करते चलेंगे । हमारी इस आलोचना के दो विभाग होंगे । पहिले विभाग में गीता और उपनिषदों में मिश्रण दिखलावेंगे और फिर दूसरे विभाग में दिखलावेंगे कि यह मिश्रण असुरों का किया हुआ है और इस समालोचना के अन्तमें ब्रह्मसूत्रों की जाँच करेंगे ।

गीता और उपनिषदों में मिश्रण ।

जिन दश उपनिषदों पर श्रीशंकराचार्य ने भाष्य किया है, उनमें सबसे प्रथम ईशोपनिषद् है । यह वाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय है और 'ईशावास्य' वाक्य से आरम्भ होता है, इसलिए ईशोपनिषद् कहलाता है । यह मूल संहिता में से लिया गया है, इसलिए उसका स्थान सर्वप्रथम है । परन्तु इस में डेढ़ श्लोक की मिलावट की गई है । वेद में है कि—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
याऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।। (यजुर्वेद)

पर प्रचलित उपनिषद् में इसी मन्त्र के बीच में डेढ़ श्लोक मिलाया गया है । मिलाया हुआ डेढ़ श्लोक यह है—

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि ।
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि । (ईशोपनिषद्)

कुछ लोग कहते हैं कि ईशोपनिषद् काण्वशाखा से ली गई है और ऊपरवाला डेढ़ श्लोक काण्वशाखा में है । हमने भी काण्वशाखा देखी है, उसमें वह डेढ़ श्लोक है परन्तु यह डेढ़ श्लोक काण्वशाखा से नहीं लिया गया । हमारा तो अनुमान है कि यह काण्वशाखा में भी बाहर से ही आया है । आजकल यह बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता है । पर कहा नहीं जा सकता कि ब्राह्मणों अथवा आरण्यकों में यह कहाँ से आया है । इस समय यह बृहदारण्यक के ५ । १५ । १ में ज्यों का त्यों उपस्थित है । बृहदारण्यक उपनिषद् में आसुर उपनिषद् का अपरिमित मिश्रण है । इसलिए यह भी आसुर उपनिषदों से ही आया है, क्यों कि इसकी रचना भी विचित्र ही है । यजुर्वेद अध्याय ४० के जो अन्य मन्त्र हैं, उनके छन्दों का वज़न बराबर और सही है, पर यह तो गद्य-पद्य का एक विचित्र मिश्रण है, जो वाक्यरूप से लिख दिया गया है । इसका मिश्रण क्यों किया गया है, इस बात पर यहाँ विचार करने की आवश्यकता नहीं है । यहाँ तो केवल मिश्रण ही दिखलाना है, जो इस डेढ़ श्लोक से स्पष्ट हो रहा है । इस मिश्रण में कितनी बड़ी धृष्टता है, यह प्रत्यक्ष ही दिखलाई पड़ रहा है । जिस स्तोत्र का मूल—वेद—मौजूद है, जिस वेद

के एक एक अक्षर की गिन्ती मौजूद है और जो वेद, वेदपाठों को कण्ठ है, जब उसमें प्रक्षेप करने की हिम्मत पड़ गई, तो वे लावारिस उपनिषद् जिनका मूल भी अब ब्राह्मणग्रन्थों में नहीं मिलता, किस स्थिति में होंगे, उनमें क्या क्या मिलाया गया होगा और उस मिलावट में आसुर उपनिषद् की कितनी मात्रा होगी, कौन निर्णय कर सकता है ? यद्यपि मिलावट में ढूँढ़ना कठिन है, तो भी कुछ मिले हुए ऐसे स्थल हैं, जिनके देखने से तुरन्त ही ज्ञात हो जाता है कि इनमें मिलावट है । यहाँ हम दो एक नमूने दिखलाने का यत्न करते हैं ।

मुण्डक उपनिषद् का तृतीय मुण्डक पूर्ण वैदिक है । इसमें नवम खण्ड का एक श्लोक ऋचा के नाम से लिखा गया है । सभी जानते हैं कि वेद के मन्त्र ही ऋचा कहलाते हैं पर जो श्लोक ऋचा के नाम से लिखा गया है, उसका चारों वेदों में कहीं पता नहीं है । इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह श्लोक कहीं बाहर से लाकर ऋचा के नाम से प्रक्षेप किया गया है । प्रक्षेप करनेवाले वैदिक न थे । यदि वैदिक होते, तो प्रक्षेप में ऐसी गलतियाँ न होतीं । उनके वैदिक ज्ञान की अनभिज्ञता का एक नमूना तैत्तिरीय उपनिषद् में भी है । मिश्रण करनेवालों ने तैत्तिरीय उपनिषद् में वेदों से सम्बन्ध रखनेवाली एक भूल की है । तैत्तिरीय उपनिषद् १।५२ में लिखा है कि '**भूरिति वा अग्निः भुवरिति वायुः सुवरित्यादित्यः । भूरिति वा ऋचः भुव इति सामानि सुवरिति यजूꣳषि**' अर्थात् भूः अग्नि है, भुवः वायु है और स्वः आदित्य है । भूः ऋग्वेद है, भुवः सामवेद है और स्वः यजुर्वेद है । यहाँ भुवः को सामवेद और स्वः को यजुर्वेद बतलाना समस्त वैदिक संस्था के विरुद्ध है । वेदों में सर्वत्र भुवः वायुस्थानी होने से यजुर्वेद ही से सम्बन्ध रखता है और स्वः आदित्यस्थानी होने से सामवेद ही से सम्बन्ध रखता है । क्योंकि वैदिक साहित्य में सर्वत्र यही लिखा हुआ है कि '**अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ।**' अर्थात् अग्नि से ऋग्वेद, वायुसे यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद का सम्बन्ध है । किन्तु इस समस्त वैदिक संस्था के विरुद्ध, तैत्तिरीय उपनिषद् भुवः को सामवेद और स्वः को यजुर्वेद से सम्बन्ध बतलाता है, इसलिए मिश्रण करनेवाले की वैदिक अनभिज्ञता प्रकट होती है । मिश्रण करनेवालों का वैदिक ज्ञान इसी तैत्तिरीय उपनिषद् के आरंभ से भी प्रकट होता है । तैत्तिरीय उपनिषद् के आरंभ में लिखा है कि '**नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।**' अर्थात् हे वायु ! तू ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है, अतः तुमको नमस्कार है । इस पर भाष्य करनेवाले 'वायु' शब्द का अर्थ परमात्मा करते हैं, परन्तु यहाँ तो ब्रह्म के साथ 'प्रत्यक्ष' शब्द रक्खा हुआ है, इसलिए इसका अर्थ परमात्मा नहीं हो सकता । ब्रह्म को कभी किसी ने साक्षात् नहीं किया । वह तो आत्मा से ही जाना जाता है । इसलिए यह प्रत्यक्ष शब्द इस भौतिक वायु—हवा—के ही लिए आया है । प्रत्यक्ष वायु को नमस्कार करनेवाले ब्रह्मविद्या के कितने पण्डित थे और उनको वैदिकता का कितना ज्ञान था, यह इसी से जाना जा सकता है और मिलावट का निर्भ्रान्त अनुमान सहज ही हो सकता है ।

इसके अतिरिक्त उपनिषदों के परस्परविरोधी वाक्यों और विरोधी सिद्धांतों से भी मिश्रण ज्ञात हो जाता है । साधारण मनुष्य भी अपनी बात में विरोध बचाने का यत्न करते हैं, किन्तु ब्रह्मविद्या के आचार्यद्वारा यदि विरोध रखनेवाले सिद्धांत पास ही पास मिले तो यही

समझना चाहिये कि दोनों विचार दो भिन्न भिन्न संप्रदायों के आचार्यों के हैं। बृहदारण्यक १।१ में लिखा है कि 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत्' अर्थात् आरंभ में एक आत्मा ही था और दूसरी चीज़ जरा भी नहीं थी। इसके विरुद्ध छान्दोग्य ६।१।१ में लिखा है कि—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।' अर्थात् आरंभ में एक अकेला सत् ही था और दूसरी चीज़ नहीं थी। इन दोनों विरोधी सिद्धांतों का मतलब यह है कि एक आचार्य कहता है कि सृष्टि के पूर्व केवल एक आत्मा ही था और दूसरी वस्तु ज़रा भी नहीं थी अर्थात् दूसरी वस्तु का अत्यन्ताभाव था और दूसरे सम्प्रदाय का आचार्य कहता है कि नहीं, आरंभ में केवल एक सत् ही था। उसी से यह समस्त सृष्टि हुई। परन्तु इन दोनों के विरुद्ध उसी छान्दोग्य ६।१।१ में लिखा है कि 'तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सदजायत।' अर्थात् एक कहता है कि आरंभ में एक अकेला असत् ही था। उसी से सत् की उत्पत्ति हुई। एक कहता है कि एक अद्वितीय सत् ही पहिले था पर दूसरा कहता है कि पहिले एक अद्वितीय असत् ही था, उसी से सत् हुआ। इस सत् असत् की बहस पर छान्दोग्य ६।२।२ मे यह दलील दी गई है कि 'कथमसतः सज्जायेत। सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तत्तेजोऽसृजत् तदापोऽसृजत्।' अर्थात् असत् से सत् कैसे हो सकता है? अतः आगे एक अद्वितीय सत् ही था, उसी से अग्नि और जल की उत्पत्ति हुई है। इस विवाद से पाया जाता है कि उस जमाने में आत्मा, सत् और असत् पर विश्वास करनेवाले तीन सम्प्रदाय थे। एक ब्रह्म से, दूसरा सत् से और तीसरा असत् से संसार की उत्पत्ति मानता था। एक कहता था कि आरंभ में ब्रह्म ही था, अन्य वस्तु न थी। दूसरा कहता था कि सत् अर्थात् दूसरी वस्तु (प्रकृति) ही थी और उसी से सृष्टि हुई और तीसरा कहता था कि यह दूसरी वस्तु भी नहीं थी, केवल असत् से ही अर्थात् अभाव (शून्य) से ही सत् अर्थात् दूसरी वस्तु की उत्पत्ति हुई।

सत् और असत् शब्द बड़े मार्के के हैं। इनके दो दो अर्थ हैं। सत् का एक अर्थ भाव अर्थात् अस्तित्व है और दूसरा अर्थ सृष्टि की वर्तमान दशा है। इसी तरह असत् शब्द का एक अर्थ अभाव अर्थात् शून्य है और दूसरा सृष्टि पूर्व की प्रलयदशा है। ऊपर उपनिषद् के जिन सत् और असत् का वर्णन है, वे भाव और अभाव ही अर्थ रखते हैं। क्योंकि कहा गया है कि असत् से तेज और जल कैसे उत्पन्न हो सकता है। इस तेज और जल की दलील से स्पष्ट हो जाता है कि ये सत् और असत् प्रकृति के ही लिए हैं और भाव तथा अभाव ही अर्थ रखते हैं। परन्तु वेदों में असत् शब्द अभाव (शून्य) अथवा प्रलयदशा के अर्थ में भी आता है। ऋग्वेद में लिखा है कि 'नासदासीन्नो सदासीत्, नासीद्रजः तम आसीत्तमसा गूढमग्रे' अर्थात् न असत् था, न सत् था और न रज था, प्रत्युत तम ही तम था। यहाँ सृष्ट्यारम्भ के पूर्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय असत् नहीं था, अर्थात् उस समय अभाव या शून्य नहीं था और सत् तथा रज भी नहीं था। फिर क्या था? कहते हैं कि उस समय तम ही तम था। इसके विरुद्ध ऋग्वेद १०। ७२।३ में कहा गया है कि 'देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत।' अर्थात् आरम्भ-

६२

कालिक देवकाल में असत् से ही सत् हुआ और उससे ही सृष्टि हुई + । यहाँ असत् शब्द अभाव अर्थ में नहीं, प्रत्युत सत्, रज और तमवाले सत् के विरुद्ध, वर्तमान सृष्टि की पूर्वावस्था के अर्थ में आया है। यहाँ असत् का अर्थ अभाव (शून्य) नहीं है । इन दोनों प्रमाणों से ज्ञात हुआ कि सत् और असत् के दो दो अर्थ हैं । एक अर्थ भाव अभाव का और दूसरा सत्, रज तम का । यद्यपि सत्, रज, तम के विषय में भी लोगों में भ्रम फैला हुआ है, परन्तु ऊपरवाले ऋग्वेद के प्रमाण से ज्ञात हुआ कि सत्, रज, तम सृष्टि की स्थितियां हैं । सत्, रज, तम के इस जटिल प्रश्न को श्रीमद् भागवत ने बहुत ही अच्छी तरह सुलझाया । वहाँ लिखा है कि—

सत्त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया । बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं । कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये । (भागवत १०।३ ३०)

अर्थात् हे भगवन् ! आप अपनी माया से त्रिलोक की रक्षा के लिए सात्त्विक-शुक्ल-रूप धारण करते हैं, सृष्टि के हेतु सर्गारंभ में राजस गुणप्रधान रक्त रूप धारण करते हैं और नाश के लिए तामस गुणप्रधान कृष्ण रूप को धारण करते हैं । इस श्लोक से स्पष्ट हो गया कि बनी हुई सृष्टि सत् है और इसका रूप शुक्ल है । बनने के समय सृष्टि की आदि में यह सृष्टि राजस है और इसका रंग लाल है और प्रलय के समय यह तम है तथा इसका रूप कृष्ण है । शुक्ल, रक्त और कृष्ण रंगों की उपमा देकर रात, प्रभात और दिन के अलङ्कार से सृष्टि की तीनों स्थितियाँ समझा दी गई हैं। दिन का रंग शुक्ल है और वह बनी हुई सृष्टि की तरह है, अतएव वह सत् की दशा में है। प्रभात के ऊषाकाल का रंग लाल है और वह सृष्ट्यारम्भ की तरह है, अतएव रज की दशा में है और रात का रंग श्याम है, वह प्रलय की तरह है, इसलिए वह तम कहलाता है । अर्थात् सृष्टि की स्थिति सत् है, सृष्ट्यारम्भ रज है और प्रलयदशा तम है ।

सृष्टि की स्थिति, सृष्टि का आरंभ और सृष्टि की प्रलय आदि दशाएँ सब भौतिक (Material) ही हैं, इसलिए यह सत्, रज, तम भी भौतिक ही है—प्रकृति ही है । इसीलिए प्रकृति को कहा गया है कि 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां' अर्थात् एक न उत्पन्न होनेवाली प्रकृति है, जिसकी कार्यदशा शुक्ल है, आरंभ रक्त है और आरंभपूर्व दशा कृष्ण है । इस वाक्य ने वेद के मंत्रों का भाव स्पष्ट कर दिया है। वेद में जो कहा गया है कि असत् नहीं था, उसका यही मतलब है कि अभाव नहीं था, प्रत्युत 'अजा' अर्थात न उत्पन्न होनेवाली प्रकृति थी । उसीमें कहा गया है कि सत् और रज भी नहीं था । इसका मतलब यही है कि उस समय न तो सृष्टि की वर्तमान स्थिति ही थी और न सृष्टि का आरंभ ही था । परंतु मंत्र कहता है कि, उस समय तम ही तम था। इसका मतलब यही है कि उस समय प्रलयदशा थी । तात्पर्य यह कि उपनिषद्वाक्य के सत् और असत् शब्दों से परमात्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। परमात्मा के लिए सत्, असत् शब्दों का प्रयोग होता ही नहीं । गीता में स्पष्ट लिखा हुआ है कि—

+ ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् । देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ।
देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत । तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ।
भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त । अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्व दितिः परि ।
(ऋ० १०।७२।२,३,४)

ज्ञेयं य-तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न स-तन्नासदुच्यते।
(भ० गी० १३।१२)

अर्थात् जाननेयोग्य, जिसके जानने से मोक्ष मिलता है, वह अनादि परब्रह्म न सत् कहलाता है और न असत् कहलाता है। गीता के इस प्रमाण से ज्ञात हुआ कि, उपनिषदों का सत्–असत् का झगड़ा परमात्मासम्बन्धी नहीं है, प्रत्युत वह झगड़ा भौतिक है। क्योंकि उपनिषदों में परमात्मा के लिए तो पृथक् ही कह दिया गया है कि एक के मत से आदि में केवल आत्मा ही था। इस अकेले आत्मा से सृष्टि माननेवालों के अतिरिक्त उस समय एक दल ऐसा था जो कहता था कि असत् अर्थात् भौतिक पदार्थों के अभाव से सृष्टि हुई है और दूसरा दल ऐसा भी था, जो कहता था कि सन् अर्थात् भौतिक पदार्थों के भाव से ही सृष्टि हुई है। क्योकि विना भूतों के अग्नि और जल की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार के झगडे योरप के वैज्ञानिको मे आजकल भी होते हैं। एक दल कहता है कि मैटर (परमाणुओं) की उत्पत्ति इनर्जी (शक्ति) से ही हुई है, पर दूसरा दल कहता है कि प्रकृति के भौतिक परमाणु भी हैं। इस विषय मे साइंस के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० डब्लू० बी० ब्रॉटमली 'विज्ञान और धर्म' नामी पुस्तक मे कहते है कि विज्ञान शक्ति (Energy) के सिद्धांत तक पहुँचा है, परन्तु अनेक विद्वान् हैं, जो मूलप्रकृति (Matter) को अब तक परमाणुवाली ही मानते हैं। +

\+ But what has modern science to say as to what matter is ? All matter can be resolved into a form of energy and all the theories of matter advanced during the last twenty years are based on a conception– a postulate of the non–material. That is science ? That is the latest in science.

(Science and Raligion, p, 62)

The statement on page 62 that all matters can be resolved into a form of energy has been challenged as being contrary to the views held by modern physicists. I am told that " other men of science say that all matter is not resolvable into a form of energy, thet there is still an irreducible something, a surd, as it were, the dark Back ground, the substance of which energy is but an attribute. " The following quotations from some of the leading physicists of the day (Professor Cox, Professor Soddy and Sir Oliver Lodge etc.) are commended to the critics. (ibid p. 75)

Perhaps the statement that " all matter can be resolved into a form of energy " was too comprehensive for the critics. I might have said all matter is divisible into two parts, the known and the hypothetical. All known matter, the part made up of ' the smallest entities known to science, ' can be resolved

कहने का मतलब यह कि योरप की भाँति उपनिषदों में भी आत्मा, सत् और असत् आदि तीन सिद्धान्तों का वर्णन है, जिससे यही सूचित होता है कि उपनिषदों में इन तीन प्रकार के वर्णन करनेवाले तीन सम्प्रदायों के लोग हैं। तीनों के तीन सिद्धान्त लिखे हुए हैं, इसलिए तीनों सिद्धान्त एक ही धर्म के नहीं हो सकते। इन तीनों में आर्यों का एक भी सिद्धान्त नहीं है। आर्यों का वैदिक सिद्धान्त अनिश्चित हो ही नहीं सकता। अतएव ये सिद्धान्त मिश्रण से ही उपनिषदों में आये हैं, इसमें संदेह नहीं।

जिस प्रकार इस सिद्धान्तविरोध से प्रक्षेप ज्ञात होता है, उसी तरह उपनिषदों में नवीन बातों के होने से भी मिश्रण पाया जाता है। हमने प्रथम खण्ड में जहाँ लो० तिलक महोदय के ज्योतिषसम्बन्धी सिद्धान्तों की आलोचना की है, वहाँ ब्राह्मणग्रंथों में आये हुए प्रमाणों से बतलाया है कि ब्राह्मणों के कुछ भाग बाईस हजार वर्ष के प्राचीन हैं। उपनिषद् भी ब्राह्मणग्रन्थों के ही भाग हैं, परन्तु इनके बहुत से स्थल बहुत ही नवीन ज्ञात होते हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि, इनमें वे भाग पीछे से मिलाये गये हैं। बृहदारण्यक २।४।१० में लिखा है कि—

अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषद् श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि।'

अर्थात् ऋक्, यजु, साम, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्याख्यान आदि सब अपौरुषेय हैं। इस वर्णन में उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और व्याख्यान आदि पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इनमें भी सूत्रग्रन्थ तो बहुत ही आधुनिक हैं +। कोई भी सूत्रग्रन्थ, चाहे वह गृह्य हो या श्रौत, दर्शन हो या व्याकरण, ब्राह्मणग्रंथों के पूर्व का नहीं है। उन सूत्रों की व्याख्या तो बहुत ही नवीन है। परंतु ब्राह्मणग्रंथों से सम्बन्ध रखनेवाले ये उपनिषद्, सूत्रों और उनकी व्याख्याओं का वर्णन करते हैं, इससे प्रतीत होता है कि इनका यह भाग बहुत ही नवीन है। कुछ लोग कहते हैं कि वेदों में इतिहास, पुराण, श्लोक, सूत्र और व्याख्यान आदि सम्मिलित हैं। परंतु यदि ऐसा होता, तो ऋग्वेदादि कहने से ही सबका समावेश हो जाता, अलग अलग सबके नाम कहने की आवश्यकता न होती। इसके अतिरिक्त वेदों में न श्लोक है और न सूत्र ही हैं। ऐसी दशा में उपनिषदों का यह भाग बहुत ही आधुनिक सिद्ध होता है।

उपनिषदों की नवीनता का दूसरा प्रमाण तो बहुत ही स्पष्ट है। छान्दोग्य ३।१७।६ में लिखा है कि '**तद्धैतद् घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकीपुत्राय**' अर्थात् घोर आंगिरस के

---

into atoms of negative electricity," which are popularly spoken of as a form of energy. The hypotheical part consists of "purely hypothetical structural units of electricity," or "a positive charge" or "invented ether." (ibid, p. 75)

+ इन सूत्रों में से बौद्धायनसूत्र २।२२।९ में गीता के 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' वाले श्लोक का और वासुदेव की भक्ति का भी उल्लेख है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, सूत्रग्रंथ गीता की वासुदेवभक्ति के प्रचलित हो जाने पर बने हैं।

शिष्य देवकीपुत्र कृष्ण के लिए। इनमें देवकीपुत्र कृष्ण का नाम आया है। यह वाक्य कृष्ण के बाद ही लिखा गया है। हम प्रथम खण्ड में कृष्णकालीन महाभारतयुद्ध को लगभग ४१०० वर्ष पूर्व का सिद्ध कर आये हैं। इसलिए उपनिषद् का यह वाक्य उस समय के बाद का है। यह उस समय का है, जब कृष्ण भगवान् अवतार माने जा चुके थे और उनकी भक्ति अच्छी तरह प्रचलित हो चुकी थी। हमारा अनुमान है कि वैष्णव धर्म के आरम्भ के बाद और गीताप्रचार के साथ उपनिषदों में यह अंश मिलाया गया है। कहने का मतलब यह कि ऐतिहासिक घटनाओं से भी सिद्ध होता है कि उपनिषदों में मिश्रण है।

उपनिषदों में मिश्रण का यह प्रबल प्रमाण है कि, उपनिषत्काल ही में श्रोतागण उनके सिद्धान्तों को मोह में डालनेवाले मानते थे। बृहदारण्यक ४।५।१४ में मैत्रेयी ने स्पष्ट कहा है कि '**मा भगवन्मोहान्तम्**' अर्थात् मुझे मोह में न डालिये। मोह भ्रम को कहते हैं। भ्रम उत्पन्न करा देना यह नवीन धर्मप्रवर्तकों का सबसे पहिला काम है। गीता में भी लिखा है कि अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मुझे आपकी बातों से मोह होता है +। जिन बातों से मोह पैदा हो—भ्रम उत्पन्न हो—वे बातें इस महान् ब्रह्मविद्या में कभी भी उपयोगी नहीं हो सकतीं। पर ऊलजलूल बातों से तो भ्रम होता ही है। भ्रम को हटानेवाला तर्क ही है—न्यायशास्त्र ही है, पर उससे तो आसुर आचार्य घबराते हैं। कठोपनिषद् २।९ में लिखा है कि, '**नैषा तर्केण मतिरापनीया**' अर्थात् तर्क से यह मति प्राप्त होने योग्य नहीं है। जहाँ निरुक्तकार ने कहा कि '**तर्क एव ऋषिः**' अर्थात् तर्क ही ऋषि है, जहाँ न्यायशास्त्र बना हुआ है और जहाँ मनु जैसे धर्माचार्य कहते हैं कि '**यस्तर्केणानुसंधत्ते**' अर्थात् जो वैदिक ज्ञान तर्क से सिद्ध हो, वही धर्म है, वहाँ तर्क से घबराना और तर्क अप्रतिष्ठा का सिद्धांत बनाना उसी का काम हो सकता है, जिसका सिद्धांत लचर है, जो मोह—भ्रम—उत्पन्न करनेवाला है और जो नवीन अवैदिक सिद्धांत प्रचलित करना चाहता है। अन्यथा जहाँ परस्पर विरोधी दो सिद्धांत उपस्थित हों, वहाँ विना तर्क के कैसे जाना जा सकता है कि इनमें से कौन सत्य है और कौन असत्य ? कहने का मतलब यह कि तर्क से घबराना और भ्रम उत्पन्न करना वैदिक शैली नहीं है। उपनिषदों के ऐसे भाग निस्सन्देह प्रक्षिप्त हैं और आसुर हैं।

गीता भी तर्क से घबराती है। वह कहती है कि '**संशयात्मा विनश्यति**' अर्थात् संशयात्मा नष्ट हो जाता है। परन्तु हम देखते हैं कि, तर्कशास्त्र में संशय एक ज़रूरी विषय है × ' जो सत्यासत्य के निर्णय में काम आता है। विना संशय के तो किसी बात का निर्णय ही नहीं हो सकता और न कोई सत्य सिद्धांत पर पहुँच सकता है। परन्तु उपनिषदों के अनेक स्थल निस्सन्देह बुद्धिविरुद्ध और जगली है। उनके लिए तर्क से काम लेना समय खोना है। ऐसे विश्वास अवश्य तर्क की कसोटी से नहीं कसे जा सकते। इनसे अवश्य भ्रम होता है। यहाँ हम दो तीन बातें नमूने के तौर पर दिखलाते हैं। छान्दोग्य ६।१६।१ में लिखा है कि—

+ व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्। अर्थात् मिश्रित—अनिश्चित—गड़बड़ में डालनेवाली बातों से बुद्धि में भ्रम होता है—मोह होता है, अतः कोई एक निश्चित बात कहिये जिससे मेरा कल्याण हो।

× प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि जो तर्कशास्त्र के मूल सिद्धांत हैं, उनमें संशय तीसरा है। विना संशय के तो निर्णय हो ही नहीं सकता—सत्य मिल ही नहीं सकता।

'पुरुषꣳ सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत् स्तेयमकार्षीत् परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते । सोऽनृताभिसन्धोऽनृतेनाऽऽत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति । स दह्यतेऽथ हन्यते' ।

अर्थात् हे सोम्य ! राजकर्मचारी पुरुष को हाथ बाँधकर लाते हैं और कहते हैं कि इसने चोरी की है । राजा लोहे का परशु तप्त करवाकर उसके हाथमें रखवाता है । यदि वह सचमुच चोर है, तो जल जाता है । हम देखते हैं कि आग से गर्म किया हुआ लोहे का गोला उठवाने की चाल इस देश के मूर्खों में बहुत दिन तक रही है । यह बिलकुल जंगली रिवाज है । अग्नि ऐसी चीज़ है, जो चोर साहु सब को जलाती है । वह किसी को पहिचानती नहीं । यदि यह आर्य-धर्म होता, तो धर्म-शास्त्रों में गवाही लेने, चेष्टा देखने और पता लगाने का ज़िक्र क्यों किया जाता ? आज भी उसी तरह परीक्षा होती ; पर जब यह सिद्धान्त ही ग़लत है तब इसके द्वारा सत्य का निर्णय कैसे किया जा सकता है ? इसलिए यह रिवाज जंगली है, आसुर है और अज्ञानता का ज्वलंत प्रमाण है । दूसरी जगह उसी छान्दोग्य ५।२।९ में लिखा है कि—

यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति ।
समृद्धिं तत्र जानीया-तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥

अर्थात् स्वप्नमें यदि स्त्री दिखलाई पड़े, तो समझना चाहिए कि बहुत बड़ी समृद्धि होनेवाली है । दूसरी जगह लिखा है कि 'पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं स एनं हन्ति' अर्थात् स्वप्नमें काले दाँतवाले काले पुरुष को देखो, तो समझना चाहिए कि मेरी मृत्यु निकट ही है । ये स्वप्नपरीक्षा के वे विश्वास हैं, जिनकी ओर सिवा मूर्खों के पढ़े-लिखे लोगों का ध्यान भी नहीं जा सकता ।

इसी तरह की बात छान्दोग्य ८।१३।१ में लिखी है कि, 'चन्द्र इव राहोर्मुखात् प्रमुच्य' अर्थात् जैसे चन्द्रमा राहु के मुख से छूट जाता है । यह दृष्टांत भी उन्हीं गँवारू बातों को चरितार्थ करता है, जो चन्द्रग्रहण के विषय में प्रचलित हैं । अर्थात् चन्द्रमा को राहु खा जाता है और फिर उगल देता है । ऐसे विश्वासवाले ज्योतिष् और भूगोल-ज्ञान से बिलकुल शून्य थे । पर वैदिकों में सबसे पहिले ज्योतिष् का ज्ञान होना चाहिये । क्योंकि ज्योतिष् वेद का नेत्र है । वेदों में जितना ज्योतिष् का वर्णन है, उतना शायद ही किसी अन्य विषय का वर्णन होगा । पर इन ज्योतिषज्ञानशून्य असुरों को क्या खबर कि ग्रहणों के होने का क्या सिद्धान्त है ! इसी तरह की बात बृहदारण्यक ६।३।१२ में यह लिखी है कि, 'शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति तमेतं नापुत्राय वान्तेवासिने वा ब्रूयात्' अर्थात् सूखा काठ हरा करनेवाली वाजीकरण औषधि को अपने पुत्र या शिष्य के अतिरिक्त और किसी को न बतलाना चाहिये । ठीक है, न बतलाइये, पर यह तो बतलाइये कि सुखा काष्ठ हरा भी हो सकता है ? हमारी समझ में तो हरा वही होगा, जिसमें कुछ भी हरापन शेष होगा और उसमें कुछ भी जान होगी । किन्तु जिसका हरापन नष्ट हो गया है, जो मर गया है, वह कदापि हरा नहीं हो सकता । हाँ, अलबत्ता दवा के प्रलोभन से भोले आदमी फाँसे जा सकते हैं और इसीलिये ऐसी फँसानेवाली नवीन बातें उपनिषदों में मिश्रित की गई हैं । पर हमें तो यहाँ केवल उपनिषत्कारोंके ज्ञान का नमूना दिखलाना

है। हम समझते हैं कि ये सभी बातें मोह पैदा करानेवाली तर्के, विद्या, बुद्धि से कोसों दूर और प्रक्षेप करनेवालों के मनोभाव और उनकी स्थिति की यथार्थ सूचक हैं। हमने इन बातों को इसीलिए लिखा है कि, जिससे मिश्रण करनेवालों का भ्रम पैदा कराने और तर्क से घबराने का कारण विदित हो जाय और यह स्पष्ट हो जाय कि इन उपनिषदों में किसी आर्येतर जाति का हाथ रहा है।

इन बातों के अतिरिक्त उपनिषदों में वैदिक यज्ञों की निन्दा है। इससे भी उनमे मिश्रण विदित होता है। यह लीला मुण्डक उपनिषद् में अच्छी तरह दिखलाई पड़ती है। वैदिक कर्मकाण्ड का जहाँ पर खण्डन मिलाया गया है, वहाँ यह प्रकरण इस तरह शुरू होता है कि 'काली कराली च मनोजवा च' अर्थात् काली आदि अग्नि की सात जिह्वाएँ हैं। इन अग्नि की सात जिह्वाओं अर्थात् सात रंग की ज्वालाओं का वर्णन करते कहा गया है कि ये सात लपटें नित्य हवन करनेवाले को सूर्य की सात किरणों में प्रविष्ट करा देती हैं। उन के द्वारा वह सूर्यलोक को चला जाता है और वहाँ से ब्रह्मलोक को जाता है। अर्थात् नित्य हवन करनेवाला मोक्ष का भागी बनता है। पर इसके आगे सातवें श्लोक से दशवें श्लोक तक चार मंत्रों में यज्ञों पर विश्वास करनेवालों को हजारों गालियाँ दी गई हैं। गालियाँ देते हुए कहा गया है कि एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढाः पण्डितम्मन्यमानाः जघन्यमानाः मूढाः अन्धाः बालाः।' अर्थात् यज्ञ से गति माननवाले मूढ, अन्ध, बेवकूफ और जघन्य हैं। इसके साथ ही याज्ञिकों को बार बार पैदा होनेवाले और हीनतर योनियों में जानेवाले भी कहा गया है। इसके सिवा स्वर्ग और मोक्ष—धाम में एक ऐसा भेद उपस्थित कर दिया गया है कि, जिससे पता ही नहीं लगता कि, प्राचीन वैदिक सिद्धांतानुसार स्वर्ग और मोक्ष का क्या रहस्य है।

उपनिषदों में स्वर्ग और सृष्टि से सम्बन्ध रखनेवाले दो सेमिटिक सिद्धांत काम कर रहे हैं। एक तो यह कि सृष्टि के पूर्व क्षण में एक अकेला परमात्मा ही था और कुछ भी न था। दूसरा यह कि स्वर्ग अलग चीज़ है, जहाँ अनेक प्रकार के संसारी सुख एक अरसे तक मिलते हैं। सेमिटिक दर्शन में जिस तरह बहिश्त और नजात में अन्तर है, उसी तरह आसुर उपनिषद् में स्वर्ग और मोक्ष में अन्तर बताया गया है। परंतु प्रक्षेपरहित शुद्ध वैदिक उपनिषद् स्वर्ग और मोक्ष में कुछ भी अन्तर नहीं बतलाते। वे कहते हैं कि, सूर्य के उस पार स्वर्ग है और मोक्ष के जानेवाले सूर्यद्वार से वहाँ जाते हैं, इसलिए स्वर्ग और मोक्ष दोनों एक ही पदार्थ हैं। इस पर से भी ज्ञात होता है कि, उपनिषदों में इस प्रकार के विरोधी सिद्धांतों का मिश्रण हुआ है।

जिस तरह उपनिषदों में मिलावट है, उसी तरह गीता में भी मिलावट है। इस ज़माने में लोकमान्य तिलक जैसा गीता का विद्यार्थी और दूसरा नहीं हुआ। गीता की मिलावट के विषयमें गीतारहस्य भाग ३, पृ० ५३६ में आप कहेते हैं कि, 'जिस गीता के आधार पर वर्तमान गीता बनी है वह बादरायणाचार्य के पहिले भी मौजूद थी।' कोई गीता बादरायणाचार्य के पहिले मौजूद थी या नहीं और बादरायण कौन हैं, इन बातों की यहाँ व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो यही देखना है कि यह संपूर्ण वर्तमान गीता मूलगीता नहीं है। यह मूलगीता के आधार पर बनी है। वह मूलगीता कितनी थी इसका अनुमान करना कठिन है। हाँ, एक गीता

अभी हाल में प्रसिद्ध प्रवासी मिस्टर एन्० जी० देसाई को भारत से दूर बालीद्वीप में मिली है, जो भीष्मपर्व के अन्दर है और उसमें कुल ७० ही श्लोक पाये जाते हैं। यह भीष्मपर्व हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक है। किन्तु हम देखते हैं कि, वर्तमान गीता में ७०० श्लोक हैं। इससे ज्ञात होता है कि सिर्फ एक शून्य ही बढ़ाया गया है। बढ़ाने की बात तब और भी अधिक दृढ़ हो जाती है, जब हम देखते हैं कि इस पर शंकराचार्यसे पूर्व पृथक् रूपसे किसी अन्य की टीका नहीं मिलती और न शंकर के पूर्व महाभारत से पृथक् इसका अस्तित्व ही पाया जाता है। इसके अतिरिक्त गीता के १८ वें अध्याय के अन्त में संजय कहते हैं कि—

व्यासप्रसादात् श्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयम्॥

अर्थात् व्यास की कृपा से मैंने इस परमगुह्य योग को योगीराज कृष्ण से सुना। संजय ने कृष्ण से सुना, पर व्यास की कृपा से, यह कैसी बात है? क्या व्यास संजय को अपने साथ लेकर वहाँ गये थे, वहाँ कृष्ण अर्जुन को उपदेश कर रहे थे? ऐसा तो कहीं वर्णन नहीं है और न इस श्लोक ही से यह बात सिद्ध होती है। संजय तो खुद धृतराष्ट्र से युद्ध का हाल कह रहे हैं। व्यास से पहिले तो सारा हाल संजय को ही मालूम होता था। यह ठीक भी है। राजा के लिए तो उनको सब हाल पहिले मिलना ही चाहिये। संजय ने बंदोबस्त कर रक्खा होगा कि, जिससे सब हाल मिलता रहे ×। व्यास को तो संजय के द्वारा हाल मिला होगा, पर उनको व्यास के प्रसाद से गीता सुनने को मिली, यह बात बड़े ही सन्देह की है। इससे तो श्लोक का यह मतलब मालूम होता है कि कृष्ण का उपदेश जो व्यास के द्वारा लिखा गया था, वह संजय को सुनने या जानने को मिला। परन्तु समस्त गीता संजय और धृतराष्ट्र की बातचीत है इस बातचीत को यदि व्यास ने श्लोकबद्ध किया, तो श्लोकबद्ध करने के पहिले ही संजय ने व्यास की कृपा से कैसे सुना? इस गोलमाल से प्रकट होता है कि समस्त गीता दो सम्पादकों ने रची है। व्यासकृत गीता से कृष्ण का हाल संजय को मालूम हुआ, पर यह संजय–धृतराष्ट्र का वार्तालाप और व्यास की कृपा की बात दूसरे सम्पादक की रचना प्रतीत होती है। इसी तरह '**मुनीनां चाप्यहं व्यासः**' तथा '**असितो देवलो व्यासः**' आदि रचना भी व्यास की नहीं है। क्योंकि वेदव्यास अपने आपको कभी न कहते, कि सब मुनियोंमें व्यास परमेश्वर के तुल्य है अर्थात् परमेश्वर ही है। इसलिए गीता के ये प्रकरण प्रक्षिप्त ही है। इस तरहसे उपनिषदों और गीतामें मिश्रण दिखलानेके बाद अब हम यह प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करते हैं कि, उपनिषदोंमें आसुरोंने आसुर उपनिषद्का किस प्रकार मिश्रण किया।

आसुर उपनिषद् की उत्पत्ति।

छान्दोग्य उपनिषद् में विस्तारपूर्वक लिखा है कि इन्द्र (आर्य) और बिरोचन (अनार्य) दोनों मिलकर किसी के पास ज्ञान सीखने गये। गुरुने उनकी पात्रता और कुपात्रता

× श्रीधर आदि टीकाकारों ने लिखा है कि व्यासजी ने संजय को दिव्य दृष्टि दी थी। उस कृपा से वे दूर बैठे हुए कृष्ण की बात सुन सकते थे। परन्तु इसमें कुछ भी सत्य नहीं है। प्रथम तो दिव्य दृष्टि और दिव्य श्रवणशक्ति का प्राप्त होना ही विश्वासयोग्य नहीं है, फिर यह बात भी असत्य सिद्ध हो जाती है, जब हम देखते हैं कि यह शक्ति धृतराष्ट्र को न देकर संजय को क्यों दी गई?

की परीक्षा की । इन्द्र संस्कृत आत्मा और विरोचन मलिन आत्मा निकला और ज्ञान के ग्रहण करने में असमर्थ सिद्ध हुआ । गुरू ने परीक्षार्थ जितनी बातें उससे कही उन सब बातों को उसने सिद्धान्त ही समझा । ज़रा भी अपनी बुद्धि से काम न लिया । परन्तु इन्द्रने हर परीक्षा-वाक्य को एकान्त में तर्क से पडताल की और असत्य ज्ञात होने पर वापस आया । कई बार इस तरह परीक्षा और तर्क करने से वह सत्य ज्ञान को पहुँच गया । पर विरोचन एक ही बार आकर और जो कुछ उलटा सिधा सुना था, उसी को सिद्धांत मानकर चुप बैठ गया और उन्हीं संदिग्ध बातों का असुरों में प्रचार करने लगा । यहींसे आसुर उपनिषद् का आरम्भ हुआ । इस उपनिषद् की उत्पत्ति आफ्रिका खंड में हुई । क्यों कि असीरिया और इजिप्ट के निवासी असुर कहलाते थे । असीरिया में ही असुर वाणीपाल और असुर नासिरयाल नामी राजा हुए हैं । वे लोग अपने को असुर ही कहते थे । इजिप्टवालों से उनकी रिश्तेदारी भी थी । इजिप्ट आफ्रिका में ही है । वहाँ से ही आसुर उपनिषद् का सिद्धांत प्रचलित हुआ है । मद्रासी द्रविडों में आफ्रिकानिवासी हिट्टाइट (Hittite) जाति का मिश्रण है ही । वह जाति यद्यपि एशिया माइनर की वसनेवाली कही जाती है, पर यथार्थ में यह आफ्रिका और आस्ट्रेलिया की ही रहनेवाली है । क्योंकि हिट्टाइटों, आस्ट्रेलियानिवासियों और द्रविडों का रूप रंग और भाषा आदि सब एक समान ही हैं । इस तरह से ये आसुरी सिद्धांत आफ्रिका में उत्पन्न होकर मद्रास आये और वहाँ से भारत में फैले । छान्दोग्य में वर्णित उक्त विरोचन की कथा में लिखा है कि, अपने आपको ब्रह्म माननेवाले असुरों की यह पहिचान है कि वे मुरदों को वस्त्रालङ्कार से सजाकर गाडते हैं और इसी में दोनों लोकों की जय समझते हैं । यह इशारा मिश्रवालों की ममी और पिरामिडों का है । वहीं पर मुरदे इस तरह रक्खे जाते हैं और वहीं पर इस में लोक=परलोक की जय मानी जाती है । इस कथन की पुष्टि में हम यहाँ छान्दोग्य उपनिषद् से यह सारा प्रकरण लिखते हैं और बतलाते हैं कि किस प्रकार आसुर उपनिषद् की उत्पत्ति हुई । यह कथा छान्दोग्य उपनिषद् के आठवें खण्ड में है । वहाँ पुरुष है, वही आत्मा है । इस पर विश्वास करके दोनों ने दर्पण में देखा, तो जिस प्रकार के वे थे वैसे ही दिखे और लौटकर प्रजापति से कहा कि—

> तौ होचुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ
> परिष्कृतौ च एवमेवेमौ भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ
> परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्
> ब्रह्मेति तौ ह शांतहृदयौ प्रवव्रजतुः । (छान्दोग्य ८ । ८ । २)

अर्थात् जैसा यह शरीर साफ़ सुथरा पहिले था, वैसा ही अब भी देखते हैं । हे भगवन् ! जैसे हम दोनों विमल वस्त्रों से अलंकृत हैं, उसी प्रकार हम दोनों दर्पण में विमल और उत्तम वस्त्रों से अलंकृत दिखलाई पडते हैं । तब प्रजापति बोले कि यही आत्मा है, यही अमृत है, यही अक्षय है और यही ब्रह्म है । यह सुनकर वे दोनों शांतहृदय वहाँ से चले गये । इस पर प्रजापति ने कहा कि—

> तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचाऽनुपलभ्यात्मानमननुविद्य
> व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति । देवा वाऽसुरा
> वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसु-
> रान् जगाम । तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य

आत्मा परिचर्य्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मनं परिचरन्नुभौ ।
लोकाववाप्नोतीमञ्चामुञ्चेति ॥ (छान्दोग्य ८।८।४)

अर्थात् ये आत्मा को न पाकर और न जानकर जाते हैं । जो देवता अथवा असुर इस ज्ञानवाले होंगे, वे नष्ट हो जायँगे । अब वह प्रसिद्ध शान्तहृदय विरोचन असुरों के निकट पहुँचा और उनसे यह उपनिषद् कहने लगा कि, इस लोक में मनुष्य स्वयं ही पूजनीय और सेवनीय है, इसलिए यहाँ अपने आपको ही पूजता हुआ और सेवन करता हुआ मनुष्य दोनों लोकों को प्राप्त होता है । इस उपदेश के अनुसार लोग अपने आपको ही ईश्वर मानने लगे और दानयज्ञादिकों को बन्द कर दिया । इसके आगे लिखा है कि—

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो
बतेत्यसुराणां ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति
संस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्त इति ॥ (छान्दोग्य ८।८।५)

अर्थात् यही कारण है कि आजकल भी यहाँ असुर लोग न दान में श्रद्धा रखते हैं और न यज्ञ करते हैं । लोग उनके इस ज्ञान को आसुर उपनिषद् कहते हैं । वे मृत शरीरों को अनेक मसालों से सँवारते और वस्त्र आभूषणों से सजाते हैं और समझते हैं कि, इसी से हम परलोक जीत लेंगे । इस वर्णन में असुरों के ऐसा समझने और यज्ञादि बन्द करने का कारण स्पष्ट विद्यमान है । प्रजापति ने उनसे पहिले ही कह दिया था कि, '**एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति**' अर्थात् यही आत्मा है, यही अमृत है, यही अभय है और यही ब्रह्म है । बस, तभी से आफ्रिका, इजिप्ट, असीरिया और बेबिलन में अपने आपको ब्रह्म कहने की प्रथा चली और '**असुराणां ह्येषोपनिषद्**' अर्थात् यही असुरों का उपनिषद् कहलाया । यह अहंभाव और नास्तिकता की बात गीता की आसुरी सम्पत्ति के वर्णन से अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है । गीता में आसुरी सम्पत्ति की अनेक बातों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि—

असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरं । (भ० गी० १६।८)
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥ (भ० गी० १६।१४)

अर्थात् असुर लोग मानते हैं कि, यह संसार असत्य है । इसमें कोई ईश्वर नहीं है । मैं ईश्वर हूँ, मैं ही भोक्ता हूँ और मैं ही सिद्ध बलवान् और सुखी हूँ । इन उपनिषद् और गीता के प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि आसुर उपनिषद् का प्रधान सिद्धांत यही है कि अपने आपके अतिरिक्त परमेश्वर कोई वस्तु नहीं है । इसलिए सांसारिक सुखों में ही—खाने, पीने, भोग और ऐश्वर्य में ही जीवन व्यतीत करो । असुरों के इस सिद्धांत की तुलना करते हुए कुछ लोग कहते हैं कि वेदांत का यह सिद्धांत कि '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः**' अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ही ब्रह्म है, आसुर उपनिषद् का ही परिमार्जित रूप है । क्योंकि वेदांतियों का '**अहं ब्रह्मास्मि**' असुरों के गीतोक्त '**ईश्वरोहम्**' और असुरों के उपनिषदोक्त '**एष आत्मेति, एतद् ब्रह्म**' से अच्छी तरह मिल जाता है । इसलिए दोनों सिद्धांत एक ही हैं । जो हो, हम यहाँ इस बात पर बहस नहीं कर रहे । हम तो यहाँ केवल आसुर उपनिषद् की उत्पत्ति और उसका प्राचीन उपनिषद् और गीता आदि में

मिश्रण ही दिखला रहे हैं और प्रमाणित करना चाहते हैं कि, आसुर उपनिषदों के सिद्धांत वैदिक सिद्धांतों के विपरीत हैं । इतना ही नहीं, प्रत्युत यह भी दिखलाना चाहते हैं कि, आसुर उपनिषद् वेदों का अपमान भी करते हैं । आसुर उपनिषद् के रचयिता जानते थे कि अनादिमान्य वेदों को आर्यहृदयों से सहज में नहीं निकाला जा सकता । इसलिए उन्होंने यह प्रसिद्ध किया कि वेदों में ज्ञान की शिक्षा नहीं है । वे तो केवल यज्ञों की विधि बतलाते हैं और स्वर्ग की कामना कराते हैं । इस तरह उन्होंने वेदों की महत्ता और उच्चता को कम करने का उद्योग किया है । नीचे का वर्णन इस विषय में काफ़ी प्रकाश डालता है । मुण्डक उपनिषद् में लिखा है कि—

तस्मै सहोवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो
वदन्ति परा चैवापरा च । तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ।
ऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति ।
अथ परा यया यदक्षरमधिगम्यते ॥ (मु० उ० १ । १ । ४)

अर्थात् दो प्रकार की विद्याएँ हैं, एक परा दूसरी अपरा । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष् आदि अपरा विद्याएँ हैं और जिससे वह अक्षर प्राप्त होता है, वह परा विद्या है । इस वर्णन से ज्ञात होता है कि, वेदों में परा विद्या का वर्णन नहीं है, अर्थात् वेद परम तत्त्व का स्वरूप और उसके प्राप्ति की विधि नहीं बतला सकते । परन्तु ' **अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते** ' इस वाक्य से वह परा विद्या का ज्ञान परिचित कराया जा रहा है, जो परम तत्त्व की शिक्षा देता है । परन्तु परा विद्या का ज्ञान क्या है ? वह ज्ञान सिवा आसुर उपनिषद् के और कुछ नहीं है । दश, उपनिषदों में ईशोपनिषद् वेदभाग ही है । इसके सिवा वेदों में पुरुषसूक्त, नासदीय सूक्त आदि सैंकड़ों ऐसे स्तोत्र और स्थल हैं, जो बड़ी खूबी से जीव, ब्रह्म और प्रकृति के भेद सृष्टि की पूर्व अवस्था, उसकी रचना, पुनर्जन्म, मोक्ष का साधन और मोक्ष आदि जितने प्रकरण ब्रह्मविद्या से सम्बन्ध रखते हैं, सब का उत्तम वर्णन करते हैं । पर यहाँ तो आसुरी धर्म, आसुरी आचार और आसुरी सिद्धांतों का प्रचार करना है । इसलिए कहा गया है कि, वेदों में परा विद्या नहीं है ! इस तरह की बातों से आसुर उपनिषद् का परिचय कराया गया है । इसके अतिरिक्त छान्दोग्य १।४।३ में भी वेदों पर खासी चोट की गई है । वहाँ लिखा है कि—

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि
साम्नि यजुषि ते नु विच्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ।

अर्थात् जैसे मछली को जल में मत्स्यघाती देखता है, उसी तरह मृत्यु ने देवों को ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद में स्थित देखा । वे देव मृत्यु के इस आशय को जानकर ऋग्वेद, साम-वेद और यजुर्वेद से ऊपर स्वर को प्राप्त हुए । इस आख्यायिका का रचनेवाला इस अलंकृत भाषा के द्वारा कहता है कि, वेदों के आश्रित रहने से मृत्यु कभी नहीं छोड़ता । अर्थात् आवागमन बना रहता है । परन्तु वेदों के आगे स्वर का आश्रय लेनेवाला मृत्यु से छूटकर मुक्त हो जाता है । यहाँ भी वही परा और अपरा विद्यावाली बहुत बारीकी से कही

गई है । यदि यह स्वर ओंकार है, तो क्या वेदों में ओंकार की महिमा का वर्णन नहीं है? क्या यजुर्वेद में '**ओ३म् क्रतो स्मर**' नहीं कहा गया और क्या यजुर्वेद के अन्त में '**ओ३म् ख ब्रह्म**' उपस्थित नहीं है ? जब हम मूलसंहिताओं में ही ओंकार की इतनी महिमा देखते हैं, तब स्वर के लिए वेदों को छोड़कर किसी अन्य साहित्य की ओर इशारा क्यों है ? कहा नहीं जा सकता कि, यह 'स्वर' क्या है ? कहीं कबीर साहब का सा 'अनहत शब्द' तो नहीं है ? हमारी समझ में तो मिश्रण करनेवालों को जिस बात की आवश्यकता है, वह वेदों से पूरी नहीं होती, इसीलिए कहीं स्वर के नाम से, कहीं परा के नाम से आसुर सिद्धान्तों की ओर इशारा किया गया है और वेदों की निन्दा की गई है । जिस प्रकार यह वेदों की निन्दा उपनिषदों में है, उसी तरह वेदों की निन्दा गीता में भी मौजूद है । गीता के उस प्रकरण के पढ़ने से प्रस्थानत्रयी की भीतरी जालसाज़ी और आसुरी प्रचार की तरकीब पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । गीता में वेदों को किस प्रकार गालियाँ दी गई हैं, यहाँ हम उसका संक्षेप से दिग्दर्शन कराते हैं । गीता के दूसरे अध्याय में लिखा है कि—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन ।
बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥
यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ न्यायदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥
यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ४७ ॥

(भगवद्गीता अ० २)

अर्थात् बहुत शाखावाले अनन्त वेदों से बुद्धि चंचल हो जाती है । वेदवादरत जो इस प्रफुल्लित वेदवाणी के द्वारा कहते हैं कि, वेदों के सिवा और कुछ नहीं है, वे अज्ञानी हैं । वे काम, भोग और स्वर्ग के माननेवाले हैं और कर्म में अनेक प्रकार की विधि करनेवाले तथा भोग और ऐश्वर्य में ही प्रीति रखते हैं । ऐसे लोग समाधि को प्राप्त नहीं हो सकते । हे अर्जुन ! वेद त्रिगुणात्मक हैं, इसलिए तू निर्द्वन्द्व, शुद्धचित्त, योगक्षेम का त्यागी, आत्मनिष्ठ अर्थात् निस्त्रैगुण्य हो जा । वेद बहुत उपयोगी नहीं हैं । वे तो बड़े तड़ाग की अपेक्षा एक छोटे से कुएँ के ही बराबर हैं । वेद से तेरी मति मन्द हो गई है, अतः जब निश्चल बुद्धि होगी, तभी योग प्राप्त होगा ।

यह है गीता में वर्णित वेदों की कीर्ति । इस वर्णन में जितने विलासियों के लक्षण हैं, वे

सब वैदिकों में घटा दिए गये हैं और वेदों को मोक्षमार्ग के लिए महान् हानिकारक बतलाया गया है। वेदों की इस निन्दा का कारण स्पष्ट है। आसुर सिद्धांतप्रवर्तक वेदों की विधि और निषेध में बड़ी अड़चन देखते थे, इसीलिए उन्होंने वेद के विरुद्ध इस प्रकार की रचना की है। क्योंकि **'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन'** वाक्य पर कहा गया है कि **' निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः ? '** जिसका यही मतलब है कि, त्रिगुणातीत अर्थात् अवैदिक हो जाने पर फिर कोई विधि निषेध नहीं रहता।

यह सारा प्रपंच अधिक स्पष्ट हो जाता है, जब हम आसुर उपनिषद् में लिखा हुआ पाते हैं कि, उपनिषद्विद्या को ब्राह्मण नहीं जानते थे। छान्दोग्य ५।३।७ में लिखा है कि **' न प्राक् त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति '** अर्थात् तुम से पूर्व इस विद्या को ब्राह्मण नहीं जानते थे। इसी तरह बृहदारण्यक ६।२।८ में लिखा है कि **' अथेदं विद्येतः पूर्वं न कस्मिंश्च न ब्राह्मण उवासतां'** अर्थात् इसके पूर्व कोई ब्राह्मण इस विद्या को नहीं जानता था। इस वर्णन से यह ज्ञात हुआ कि इस आसुर उपनिषद् को, जो वेदों के विरुद्ध है, ब्राह्मण नहीं जानते थे। ठीक है, जो बात वेद में नहीं है, उसको ब्राह्मण कैसे जानते। किन्तु प्रश्न तो यह है कि इसे जानता कौन था और यह आर्यों की विद्या है या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर जब तक न गढ़ लिया जाता तब तक आर्यों में इसका प्रचार हो ही नहीं सकता था। इसलिए इन्होंने बेचारे क्षत्रियों को अपने अनुकूल बनाया। क्योंकि छान्दोग्य ५।३।७ में लिखा है कि **' सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूत्'** अर्थात् इस विद्या में सदैव क्षत्रियों का ही अधिकार रहा है। इसी तरह फिर छान्दोग्य ५।११।४ में लिखा है कि **' तद्धै तद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः। '** अर्थात् इस विद्या को ब्रह्मा ने प्रजापति को, प्रजापति ने मनु को और मनु ने प्रजा को बतलाया। इस तरह से यह विद्या क्षत्रियों से ही प्रचलित हुई और उन्हीं में रही। इस उक्ति का कारण यह है कि ये मिश्रण करनेवाले विदेशी भी पहले के प्रायः क्षत्री ही थे। हम आर्यों के विदेशगमन में लिख आये हैं कि क्षत्रिय जाति के कतिपय मनुष्य वृषल होकर आन्ध्रादि हो गये थे और आस्ट्रेलियादि देशों को चले गये थे। इस ऐतिहासिक सत्यता के आधार पर ही इन्होंने यह विद्या क्षत्रियों की बतलाई है और इसी आधार से इन्होंने कुछ क्षत्रियों को मिलाकर, उपनिषदों में मिश्रित आसुरी लीला का प्रचार करने के लिए गुप्त मण्डली भी बनाई थी ‡। इसी समस्त कार्यसाधन के लिये लिखा है कि यह विद्या क्षत्रियों की है। जो हो, बड़े ही दुःख की बात है कि इस आसुर उपनिषद् को इन जालसाज़ों ने हमारे आर्यमुकुट हिन्दूकुलपति पूज्य क्षत्रियों के नाम से प्रसिद्ध किया। यह प्रसिद्धि उपनिषदों तक ही नहीं रही। प्रत्युत यह ज़हर गीता में भी डाला गया है। गीता में स्पष्ट लिखा है कि—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥

---

‡ जुलाई सन् १९१५ की 'सरस्वती' में पण्डित जनार्दन भट्ट, एम० ए० लिखते हैं कि ' उपनिषद् ' रहस्य और गुह्य आदि शब्द उस गोष्ठी के सूचक हैं जो क्षत्रियों ने ब्रह्मविद्या के उपदेश के लिए बनाई थी'।

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥२॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥ भ० गी० अ० ४
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥
(भगवद्गीता अ० ४)

अर्थात् इस विद्या को, सूर्य ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को सिखलाया । इस तरह इक्ष्वाकु से वंशपरम्पराप्राप्त यह विद्या क्षत्री राजर्षियों में चली आ रही है । यह राजविद्या है और गुप्तविद्या है । तू मेरा मित्र है, इसलिये हे अर्जुन ! वह तुझे बतलाता हूँ ।

उपनिषद् और गीता के इस समस्त वर्णन से, कम से कम इतना तो निर्णय हो ही गया कि, उपनिषदों का बहुत सा भाग वैदिक नहीं है और न उनका बहुत सा भाग ब्राह्मणों द्वारा अनुमोदित ही है । इतना ही नहीं, प्रत्युत यह भी निर्णय हो गया कि, वह एक गुप्त मण्डली के द्वारा आसुर प्रवृत्तिवाले राजनैतिक पुरुषों में वंशपरम्परा से आ रहा है । पर हमारा दृढ विश्वास है कि, इसका आर्य क्षत्रियों से कुछ भी संबंध नहीं है । क्योंकि इन उपनिषदों में असुरों की आसुरी लीला काफ़ी परिमाण में पाई जाती है और इन उपनिषदों में असुराचार्यों की जो वंशावलियाँ दी हैं, उनमें आए हुए भालुकी, क्रौंचकी, आसुरायण और वैयाघ्रपदी आदि नामों से ही पाया जाता है कि, वे असुर हैं, क्षत्रिय नहीं । इसके अतिरिक्त ब्रह्मविद्या का स्वाँग करनेवाले इन अवैदिकों की रहनसहन से भी प्रतीत होता है कि, वे वैदिक नहीं हैं । इन्हीं उपनिषदों में वैदिक ब्रह्मपरायणता और लौकिक ऐश्वर्य में क्या भेद है, पारलौकिक साधन के योग्य कौन हैं और ब्रह्मप्राप्ति किसे होती है, आदि बातों का स्पष्ट वर्णन है । कठोपनिषद् में लिखा है कि, श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं । श्रेय को विद्या और प्रेय को अविद्या कहते हैं । दोनों परस्पर विरुद्ध हैं । श्रेय से निवृत्ति और निवृत्ति से मोक्ष होता है, तथा प्रेय से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से जन्ममरण होता है । धन, ऐश्वर्य आदि लौकिक सुखों का समावेश प्रेय में है और इन सबका त्याग तथा परलोकचिन्ता आदि का समावेश श्रेय में है + । इस भेद से प्रतीत होता है कि, ब्रह्मप्राप्तिवाले वैदिक ब्रह्मज्ञानी श्रेयमार्गी थे × । पर आसुर उपनिषद् के आचार्य प्रेयमार्गी थे । उनके पास बड़े बड़े मकान, वस्त्रालंकार रथादि यान, दास दासी, खूबसूरत औरतें और मांस शराब की पूरी भरमार थी । वे महा व्यभिचारी थे और उनके कृत्य आसुरी और राक्षसी थे । यहाँ हम क्रम से उनकी उपर्युक्त समस्त बातें उपनिषदों से ही उद्धृत करते हैं । सबसे पहिले हम यह दिखलाते हैं कि, उनके बड़े बड़े महल थे । छान्दो० ५।११।१ में उनको **'प्राचीनशालः औपमन्यवः । महाशाला महाश्रोत्रियः'** लिखा है । इसी तरह मुण्डक १।१३ में **'शौनको ह वै महाशालो'** लिखा हुआ है । इन वाक्यों में इनको बड़े बड़े महलवाले कहा गया है ।

+ कठोपनिषद् २।१–५

× यात्रा मात्र प्रसिध्यर्थं । (मनुस्मृति)

इसके सिवा कठोपनिषद् १।२५ में नचिकेता का आचार्य कहता है कि, हे नचिकेता ! तू मुझसे बड़े बड़े मकान, ज़मींदारी, ज़ेवर, हाथी, घोड़े, पुत्र, पौत्र और सुन्दर सुन्दर स्त्रियाँ माँग ले, पर यह प्रश्न न कर । इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि आसुर उपनिषद् के आचार्य बड़े ऐश्वर्यवान् थे और उनको चेलों से खूब धन मिलता था । क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् ४।२।५ में एक असुर आचार्य की आमदनी और चरित्र का हाल इस प्रकार वर्णित है कि, रैक्वनामी एक ऋषि के पास राजा जानश्रुति छे सौ गाएँ, सुवर्ण, मणि, रथ और बहुतसा धन लेकर गये । पर ऋषि ने कहा कि हे शूद्र ! यह हमको न चाहिये । राजा दुबारा एक हज़ार गौवें, बहुतसा धन, अपनी कन्या और उस गाँव का पट्टा जिसमें ऋषि रहते थे, लेकर गया और प्रणाम किया । कन्या को देखते ही ऋषि पिघल गये और—

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाऽऽजहारेमाः
शूद्रानेनैव मुखेनाऽऽलापयिष्यथा इति ॥

अर्थात् राजा की उस कन्या के मुख को प्यार से देखकर ऋषि बोले कि, हे शूद्र ! यह जो भेंट लाये हो सो ठीक है, अब इस कन्या के मुख से ही (इसके मुखकमल की ही बदौलत) आप मेरा भाषण सुन सकेंगे । इस घटना से सहज ही विचार होता है कि, यह किस प्रकार का ऋषि था, इसका क्या व्यवसाय था और उस समय के धर्मान्ध चेले कैसे थे ! हमारी समझ मे तो वे आजकल के धर्मान्धों से कम नहीं थे । उस समय बड़ा ही अत्याचार हो रहा था । इन असुराचार्यों के पास सिवा इस कामकला के और कोई काम ही न था । क्योंकि आसुर उपनिषद् का निम्न वर्णन कोकसार को भी मात कर रहा है । बृहदारण्यक ६।२।१३ में और छान्दोग्य ५।८।१-२ मे लिखा है कि—

योषा वा अग्निर्गौतम तस्य उपस्थ एव
समिल्लोमानि धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा
अभिनन्दा विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ
देवा रेतो जुह्वति तस्मादाहुत्यै पुरुषः सम्भवति ।
योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव
समिधदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति
तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः तस्मिन्नेतस्मिनग्नौ
देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ।

उक्त दोनों वर्णन एक ही भाषा मे एक ही भाव के व्यक्त करनेवाले हैं । इनमें अश्लीलता की पराकाष्ठा है । इनका अर्थ लिखने मे भी संकोच होता है । भाव यह है कि स्त्री अग्नि है, पुरुषेन्द्रिय ही समिधा है, स्त्री का गुप्तांग ही ज्वाला है, उसका आकर्षण ही धूम है, प्रवेश ही अंगार है, आनन्द ही चिनगारी है और रेत ही आहुति है । इस वर्णन में यज्ञ के लिए बड़ी ही घृणित उपमा दी गई है । यह उपमा नहीं है, प्रत्युत यज्ञों और कर्मकांडों की निन्दा करके इसी प्रकार के यज्ञों का प्रचार किया गया है । इसी के लिए लिखा है कि यह विद्या ब्राह्मण नहीं जानते थे । यह तो यज्ञ की उपमा हुई, अब ज़रा वेदपाठ की उपमा सुनिये । सभी जानते है कि, वेदपाठ में सामगान की महिमा महान् है । उस के गान की बहुत सी उपमाएँ भी हैं । पर आसुर उपनिषद् तो उपमा देता है और जिस

सिद्धांत का उपदेश करता है, वह महान अश्लील और भयंकर है। छान्दोग्य में लिखी है कि—

उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः
स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीसह शेते
स प्रतिहारः कालं गच्छति स निधनं पारं गच्छति ।
तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥

(छांदोग्य० २।१३।१)

अर्थात् संदेशा भेजना हिंकार, इशारह करना प्रस्ताव, रति उद्गीथ, हरएक स्त्री के साथ मुँह काला करना प्रतिहार और इमसाक तथा वीर्यपात निधन है। यह वामदेव्य गान मैथुन के द्वारा समझाया गया है। इसमें हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ आदि सामगायन की विधियाँ हैं। स्वरसाधन, राग का अलाप, सरिगम आदि जिस प्रकार प्रारंभ किये जाते हैं, उसी तरह सामगायन की विधि में भी हिंकार, प्रस्ताव आदि होते हैं। उनके साथ साथ मैथुन, सो भी हरएक स्त्री के साथ बतलाकर किस प्रकार पवित्र सामवेद को कलंकित किया गया है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है! इसके आगे फिर कहते हैं कि—

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति
मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान्
प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या न कांचन परिहरेत् तत् व्रतम् ॥

अर्थात् जो वामदेव्य गान को मैथुन में ओतप्रोत जानता है, वह मिथुनी (मैथुन में प्रवीण) होता है, इस मैथुन से सन्तानवाला होता है, सारी उमर सुखी रहता है, बहुत दिन जीता है, बड़ा धनी और कीर्तिवाला होता है, इसलिए किसी स्त्री को न छोड़ना चाहिये, यही व्रत है। इसका भाष्य करते हुए शंकराचार्य कहते हैं कि, '**न कांचन कांचिदपि स्त्रियं स्वात्मतल्पप्राप्तां न परिहरेत्समागमार्थिनीम्**' अर्थात् समागम चाहनेवाली जो अपनी शय्या पर आवे तो ऐसी किसी भी स्त्री को न छोड़े। अब भी कुछ बाक़ी रह गया ? हम नहीं कह सकते कि, इस में कौन सी खूबी है और ब्रह्मविद्या से इसका क्या सम्बन्ध है। क्या उपनिषदों में ऐसी बातें होनी चाहिये ? इस पर कई एक टीकाकारों ने '**न कांचन परिहरेत्**' का अर्थ यह किया है कि दम्पत्ति परस्पर किसी को न छोड़ें। लेकिन पहली श्रुति में '**प्रतिस्त्री सह शेते**' अर्थात् हरएक औरत के साथ सोवे, लिखा है। इस से किसी को भी न छोड़े, यह घृणित वाक्य पवित्र दम्पतिप्रेम में नहीं बैठता। यह तो सारा वर्णन व्यभिचार के ही प्रचार का है। क्योंकि बृहदारण्यक ६।४।१२ में लिखा है कि, **अथ यस्य जायायै जारः स्यात्तं चेद् द्विष्यादामपात्रेऽग्निमुपसमाधाय०** ।' अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्री को इस विधि से शुद्ध कर देना चाहिये। इस से यह सिद्ध होता है कि असुराचार्य व्यभिचारिणी स्त्री को इस विधि से शुद्ध कर देना चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि असुराचार्य व्यभिचार को हिकमत से बड़ी ही सरलता दे रहे हैं। यज्ञ और वेद के स्थान में प्रति स्त्री के साथ मुँह काला करना, किसी को न छोड़ना और उन स्त्रियों को इस विधि से शुद्ध कर के उनके घरवालों को समझा देना ही इनका उद्देश्य प्रतीत होता है। जहाँ वेद कहते हैं कि

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत' अर्थात् ब्रह्मचर्य से ही देवता अमृत को प्राप्त होते हैं और जहाँ छान्दोग्य ७।४।३ कहता है कि, 'तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' अर्थात् वे निश्चय ही ब्रह्मचर्य से ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं और ब्रह्मलोकवासी सब लोकों में जानेवाले इच्छाचारी होते हैं, वहाँ आसुर उपनिषद् की अश्लील और बीभत्स कामकथाएँ आकाशपाताल का अन्तर पैदा कर देती हैं। यही नहीं कि आसुर उपनिषदों ने व्यभिचार को ही स्थान दिया है, किन्तु वे मांस खाने का भी आदेश करते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में है कि—

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिं गमः
शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रुवीत।
सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सापष्मन्त-
मश्नीयातामीश्वरौ जनयित वा औक्षेण वाऽऽर्षभेण वा॥

(बृहदा० ६।४।१८)

अर्थात् यदि इच्छा हो कि मेरा पुत्र पण्डित, सभा में जानेयोग्य, अच्छा भाषण करनेवाला, सब वेदों का ज्ञाता और सारी उमर सुख से रहनेवाला हो, तो उसे चाहिये कि वह घोड़े या बैल का मांस घृत मिले भात के साथ खावे। गाय, बैल, घोड़ा, बकरी, भेड़ी, ये तो आर्यों की बड़ी प्यारी वस्तुएँ हैं। इनको मारना और खाना उनकी संस्कृति के विरुद्ध है, इसलिये यह कभी संभव नहीं है कि आर्यों ने इस प्रकार की शिक्षा दी हो। यह सारा हत्याकाण्ड तो अनार्यों का ही है। गीता में ठीक ही लिखा है कि '**यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्**' अर्थात् ये असुर यज्ञों में मांस, मद्य और व्यभिचार की ही प्रधानता रखते हैं। इसीलिए इन अनार्य असुरों ने समस्त राक्षसी लीला को ब्रह्मविद्या के नाम से उपनिषदों में बड़ी खूबी के साथ मिश्रित किया है। वे समझते थे कि सभी चाहते हैं कि हमारे घर में सर्वाङ्गसुन्दर और विद्वान् लड़का हो, अतः ऐसी शास्त्राज्ञा पाकर सभी की प्रवृत्ति मांस खाने की ओर हो जायगी। वही हुआ भी। आर्यजाति इसी प्रकार के आसुरी साहित्य के कारण मांसभक्षण जैसे आसुरी स्वभाव को शास्त्रीय माननेवाली हो गई। इतना ही नहीं हुआ प्रत्युत बृहदारण्यक ४.३।२१ और ४।३।३४ में ब्रह्मानन्द जैसे उच्चपद की उपमा स्त्रीभोग से देकर इन्होंने आर्यों को ब्रह्मप्राप्ति की ओर से भी हटाकर महाकामी बना दिया है और उसी प्रकरण के आगे लिख दिया है कि, '**तस्मिन् स्वप्ने रत्वा चरित्वा**' अर्थात् बेहोशी की हालत में—सुषुप्ति में—मनुष्य आनन्द प्राप्त करता है। इस वाक्य से ज्ञात होता है कि ये लोग शराब पीकर ही यह सुषुप्ति प्राप्त करते थे। क्योंकि जहाँ मांस हो और व्यभिचार हो, वहाँ सुरा होनी ही चाहिए! यही कारण है कि तैत्तिरीय ब्राह्मण में सुरा का खुलासा करते हुए लिखा है कि '**यस्य पिता पितामहादि सुरा न पिबेत् स व्रात्यः**' अर्थात् जिसके पिता पितामहादि शराब न पीते हों, वह नीच है।

इस तरह से यहाँ तक हमने उपनिषदों में आसुरी सिद्धान्तों के मिश्रण के अनेकों प्रमाण दिये। अब हम नहीं समझते कि इस प्रकार के प्रमाणों की और आवश्यकता है। गीता में जितने लक्षण आसुरी सम्पत्तिवालों के लिखे हैं, वे सब इन उपनिषदों में मिश्रण करनेवालों के

साथ मिल जाते हैं। कामी, दम्भी, धनलोलुप, मांसमद्य से यज्ञ करनेवाले और अपने आप को परमेश्वर मानकर इस लोक के सुखोपभोग में जीवन बितानेवालों को गीता में आसुरी संपत्तिवाला बतलाया गया है ×। वही सब बातें हमने इन मिश्रणकर्ताओं में भी देखीं। इसलिए अब यह माने बिना छुटकारा नहीं है कि ये समस्त सिद्धान्त आसुरी हैं। गीता में भी आसुरी सिद्धान्तों का मिश्रण है। क्योंकि उसमें भी दुराचारियों को मोक्षभागी बताया गया है +। इस तरह से हमने देखा कि प्रस्थानत्रयी के दोनों प्रधान साहित्य—उपनिषद् और गीता—आसुर सिद्धान्तों से परिपूर्ण हैं। इसके आगे अब हम ब्रह्मसूत्रों की आलोचना करते हैं और देखते हैं कि उनमें भी क्या क्या लीला हुई है।

ब्रह्मसूत्रों की नवीनता।

प्रस्थानत्रयी के प्रधान साहित्य उपनिषद् की विशेष रीति से और दूसरे साधारण साहित्य गीता की साधारण रीति से आलोचना हो गई। दोनों साहित्यों में आसुरी सिद्धान्तों का मिश्रण सिद्ध हो गया। अब उक्त दोनों पुस्तकों के आसुरी सिद्धान्तों को दार्शनिक रूप देने के लिए जो वेदान्तदर्शन नामी नवीन दर्शन गढ़ा गया है, उसकी भी आलोचना कर लेना चाहिये। वेदान्तदर्शन—उत्तरमीमांसा—ब्रह्मसूत्र आदि शब्द एक ही ग्रन्थ के वाचक हैं। यह प्रसिद्ध है कि ये सूत्र भी वेदव्यास के ही रचे हुए हैं। पर हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक साद्यन्त वेदव्यासकृत नहीं है। शायद इस बात में हम भूलते हों, तो इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं है कि, इसमें वेदव्यास की रचना बहुत थोड़ी है। रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए० 'महाभारतमीमांसा' के पृष्ठ ५५ पर लिखते हैं कि 'ब्रह्मसूत्र नामक भी कोई ग्रन्थ रहा होगा और वह वेदान्तसूत्रों में शामिल कर दिया गया होगा।' इससे पाया जाता है कि समग्र ब्रह्मसूत्र वेदव्यासकृत नहीं है। इसीलिए वेदान्तदर्शन के अधिकांश स्थल वेदानुकूल नहीं हैं। '**शास्त्रयोनित्वात्**' यह एक सूत्र है, जो ईश्वरसिद्धि के लिए इसमें दिया गया है। इसका मतलब यह है कि यदि ईश्वर न होता, तो संसार में ज्ञान कैसे आता? दूसरी दलील '**जन्माद्यस्य यतः**' की दी गई है। इसका मतलब यह है कि यदि ईश्वर न होता, तो संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय कैसे होती? बस, यही दो सूत्र ईश्वरसिद्धि के लिए हैं; इनमें वेदों की

× द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च। दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः। न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः। कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्। इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्॥ ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया॥ अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ॥ आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजंते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्। अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषतोऽभ्यसूयकाः॥ आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
+ अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(भ० गी०)

कोई बात नहीं है। इसके आगे तीसरी दलील यह है कि 'तत्तु समन्वयात्' अर्थात् उसका समन्वय होने से-वर्णन होने से-उसका अस्तित्व है। ब्रह्मसूत्रों में समन्वय के जितने प्रमाण उद्धृत किये गये हैं, वे सब उपनिषद् और गीता के ही हैं। उपनिषद् और गीता के भी अधिकतर वही स्थल उद्धृत हुए हैं, जो आसुर हैं। वेद से कुछ भी उद्धृत नहीं किया गया। यदि कहीं वेदोंका ज़िक्र आया है, तो भाष्यकारों की ओरसे आया है, मूलग्रंथ की ओरसे नहीं। ऐसी दशा में उसे वेदानुकूल कैसे कह सकते हैं? जो ग्रंथ जिसके अनुकूल होता है, वह उसकी बात अवश्य कहता है, पर यहाँ तो उपनिषदों के शब्दों की व्याख्या से ही सारा ग्रंथ भरा हुआ है और वेदों का नाम तक भी नहीं है। इस ग्रंथ ने उपनिषदों को श्रुति और गीता को स्मृति बनाने में बड़ा ज़ोर लगाया है। इमसे असली श्रुति और स्मृति की मान-मर्यादा का बहुत ही ह्रास हुआ है। क्योंकि जो उपनिषद् और गीता वेदों और ब्राह्मणों का तिरस्कार करते हैं, उन्हीं को श्रुति और स्मृति बतानेवाला यह ग्रन्थ वेदों के अनुकूल कैसे हो सकता है?

वेदांतदर्शन की वेदविरुद्धता इस बात से भी प्रतीत होती है कि, उसमें सब दर्शनों का न्याय-वैशेषिक, योग, सांख्य, मीमांसा का-खण्डन है। शंकराचार्यने वेदान्त के सूत्रों से ही समस्त दर्शनों का खण्डन किया है। परन्तु हम देखते हैं कि, वैशेषिक आदि दर्शन वेदों को बुद्धिपूर्वक बतलाते हैं, इसलिए वे वेदानुकूल हैं, पर उनका खण्डन करने-वाला वेदों के अनुकूल कैसे हो सकता है? योगदर्शन पर वेदव्यास ने भाष्य किया है। यदि योगदर्शन खण्डन करने के योग्य होता, तो वे उसका भाष्य क्यों करते? इससे तो यही सूचित होता है कि, योग का खण्डन करनेवाला वेदान्तदर्शन वेदव्यास की रचना भी नहीं है। क्योंकि यदि वह वेदव्यास की रचना होती, तो उसमें बौद्धों के सिद्धान्त का खण्डन न होता। परन्तु वेदांतदर्शन मे बौद्धों के उभय समुदाय का खण्डन है, इससे वह वेदव्यासकृत नहीं है। बौद्ध शास्त्रों का स्वाध्याय करनेवाले जानते हैं कि, बौद्ध धर्म के चार भेद हैं। इन चारों में से दो दल ज्ञानादिक पदार्थों को क्षणिक मानते हैं। ये दोनों दल संसार में दो प्रकार के समुदाय मानते हैं। पहिले समुदाय में भूमि, जल, तेज और वायु के परमाणु सम्मिलित हैं और बाह्यसमुदाय कहलाते हैं। दूसरे समुदाय में रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार के पाँच स्कन्ध सम्मिलित हैं और अन्तःसमुदाय कहलाते हैं। यही दोनों समुदाय इस सृष्टि का कारण बतलाये जाते हैं और इन्हीं दोनों समुदायों पर वेदान्तदर्शन २।२।१८ में 'समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः' सूत्र की रचना हुई है। इस सूत्र का अर्थ यह है कि दोनों समुदायों के जड होने के कारण उन दोनों से संसार की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस वर्णन से स्पष्ट हो गया कि वेदांतदर्शन वेदव्यासकृत नहीं है। क्योंकि वेदव्यास के पन्द्रह सौ वर्ष बाद बुद्ध भगवान् का जन्म हुआ है और उनके चार सौ वर्ष बाद बौद्धों में चार प्रकार के सम्प्रदायों का विस्तार हुआ है। ऐसी दशा में ये सूत्र व्यासकृत कैसे हो सकते हैं?

वेदांतदर्शन के अनेक सूत्र तैत्तिरीय और बृहदारण्यक उपनिषद् के आधार पर बने हैं, इसलिए भी वेदांतदर्शन वेदव्यासकृत नहीं हो सकता। क्योंकि हम रावणकृत कृष्णयजुर्वेद की उत्पत्ति के इतिहास में लिख आये हैं कि, वह व्यास के शिष्य के शिष्य याज्ञवल्क्य के समय में वर्तमान रूप में सम्पादित हुआ है। उसके बहुत दिन बाद उसका ब्राह्मण बना और ब्राह्मण

के बहुत दिन बाद उसके उपनिषद् का पृथक् अस्तित्व हुआ । अर्थात् तैत्तिरीय उपनिषद् वेदव्यास के बहुत दिन बाद इस रूप में आया । परन्तु वेदांतदर्शन का द्वितीय सूत्र तैत्तिरीय उपनिषद् के '**यतो वा इमानि भूतानि०**' वाक्य के आधार पर बना है । इसलिए वेदांतदर्शन व्यासकृत नहीं हो सकता । इसी तरह बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्त में उसी कृष्णयजुर्वेद की उत्पत्ति से संबंध रखनेवाला '**आदित्यानि इमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते**' यह वाक्य लिखा हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि यह उपनिषद् भी वेदव्यास के बहुत दिन बाद सङ्कलित हुआ है । परंतु वेदांतदर्शन का तृतीय सूत्र बृहदारण्यक उपनिषद् के '**एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेवैतत्**' वाक्य के आधार पर बना है । इसलिए भी वेदांतदर्शन वेदव्यास का बनाया हुआ सिद्ध नहीं होता ।

इसके अतिरिक्त वेदांतदर्शन में अनेक जगह वेदव्यास के नाम से उनकी राय उद्धृत की गई है । उनकी ही नहीं, प्रत्युत उनके पुत्र शुकदेव मुनि की और उनके पिता पराशर जी की भी राय लिखी गई है । जिन सूत्रों में वेदव्यास की रायों का वर्णन है, वे ये हैं—

पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात् । (वेदांत० ३ । २ । ४१)
पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः । (वेदांत० ३ । ४ । १)
अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः । (वेदांत० ३ । ४ । १९)
द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः । (वेदांत० ४ । ४ । १२)

यह प्रसिद्ध है कि वेदव्यास का नाम बादरायण भी था । ऐसी दशा में वेदव्यास ही अपनी रचना में अपनी राय कैसे उद्धृत करते ? इसलिए यह निर्विवाद है कि, यह रचना वेदव्यास की नहीं । वेदव्यास की रचना न होने का एक यह भी प्रमाण है कि उस पर किसी प्राचीन भाष्यकार का भाष्य नहीं । लोग कहते हैं कि, इस पर कोई बौद्धायनी टीका थी, पर पता नहीं है कि, वह थी या नहीं । इसके अतिरिक्त जाली ग्रंथ जितने बने हैं, उनमें अधिकांश वेदव्यास के ही नाम से बने हैं । ब्रह्मसूत्र भी वेदव्यास के ही नाम से प्रसिद्ध हैं, परंतु ये भी किसी दूसरे के ही बनाए हुए हैं । यह बात उस समय अधिक पुष्ट हो जाती है, जब हम देखते हैं कि, भागवत और इस वेदान्तसूत्र का आरम्भ एक ही वाक्य से होता है । भागवत का '**जन्माद्यस्य यतः**' और वेदान्तदर्शन का '**जन्माद्यस्य यतः**' दोनों एक ही हैं । भागवत के कर्ता का अब तक कोई पक्का पता नहीं लगा, इसलिए इस वेदान्तसूत्र के रचयिता का भी कोई पता नहीं है । लोग कहते हैं कि गीता भी वेद व्यासकृत है । परंतु उसमें आये हुए—

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ (भ० गी० १३।४)

इस श्लोक से पाया जाता है कि, उनके समय में भी कोई ब्रह्मसूत्र थे । इधर देखते हैं कि वेदांतसूत्रों में अनेक सूत्र गीता के श्लोकों के आधार पर भी रचे गये हैं, ऐसी दशा में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि, वेदव्यास ने पहिले कौन सा ग्रंथ रचा । गीता के पूर्व ब्रह्मसूत्र उपस्थित हैं और ब्रह्मसूत्रों के पूर्व गीता उपस्थित है । ऐसी दशा में यही कहना सरल प्रतीत होता है कि, ये दोनों ग्रंथ वेदव्यास की रचना नहीं हैं । यहाँ हम थोड़े से वे सूत्र उद्धृत करते हैं, जो गीता के श्लोकों के आधार पर बनाये गये हैं । जैसे—

सूत्र १।२।६ का 'स्मृतेश्च' सूत्र गीता के 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' के आधार पर बनाया गया है। और 'अपि च स्मर्यते' (वेदांत० २।३।४५) सूत्र 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' के आधार पर बनाया गया है। इसी तरह 'अपि च स्मर्यते' (वेदांत० १।३।२४) सूत्र, गीता के 'न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।' के आधार पर बनाया गया है। इन सब सूत्रों में स्मृति के प्रमाणों की जिज्ञासा पाई जाती है और वह गीता से ही पूरी की जाती है। जिस प्रकार श्रुति का स्थान उपनिषदों को दिया गया है, उसी तरह स्मृति का स्थान गीता को दिया गया है। शङ्कराचार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि, स्मृति शब्द से गीता का ही ग्रहण है। वदांतसूत्र के २।३।४५ वे और १।३।२४ वें सूत्र के भाष्य में वे खुद लिखते हैं कि, 'स्मर्यते भगवद्गीतासु गीतास्वपि च स्मर्यते' अर्थात् गीतास्मृति में यह बात है। इन वर्णनों से पुष्ट हो जाता है कि, उक्त सूत्र गीता के ही आधार पर बने हैं। पर गीतामें भी ब्रह्मसूत्रों का वर्णन मौजूद है, इसलिए वेदांतसूत्र गीतावाले व्यास के बनाए हुए नहीं हैं। ये उन बादरायण के बनाये हैं, जिनका वर्णन हम प्रस्थानत्रयी की उत्पत्ति के साथ कर आये हैं। वे मद्रासनिवासी द्रविड थे। उन्हीं से प्रस्थानत्रयी के स्कूल की परम्परा चली है। इनका स्मरण अब तक शङ्कराचार्य की गुरुपरम्परा में किया जाता है ×।

हमने यहाँ तक प्रस्थानत्रयी की पड़ताल करके देखा कि, उसमें आसुर दर्शन का मिश्रण है और वह मिश्रण रावण के समय में आरम्भ हुआ था, जो बादरायण, शुक, गोविंदनाथ और शंङ्कराचार्य के समय तक चलता रहा और प्रस्थानत्रयी के नाम से सम्मानित हुआ। इसी के द्वारा बौद्धों और जैनों को नष्ट किया गया और इसी के द्वारा भारतवर्ष में अनेक सम्प्रदायों को जन्म दिया गया। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैताद्वैत आदि दर्शनों तथा शाक्त, शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदायों को इसी दल और इसी साहित्य ने उत्पन्न किया। शंकराचार्य ने रावणकृत लिंग-पूजा को शिवलिंग-पूजा में परिवर्तित किया और यज्ञों में गोवध तथा मांसाहार को सहारा दिया। बात आ पड़ने पर वे कह देते थे कि—

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतौ नायं हंति न हन्यते ॥

अर्थात् जो मारनेवाले को हिंसक समझते हैं और जो हत को मारा हुआ समझते हैं, वे दोनों ही अज्ञ हैं। इनमें न किसी ने मारा है और न कोई मरा है। इन बातों से और 'कूटस्थ, चेतन' और 'चिदाभास' आदि नवीन पारिभाषिक शब्दों की रचना से लोगों में कोलाहल मच गया। लोगों ने कह दिया कि शंकराचार्य वर्णाश्रम को नहीं मानते। क्योंकि वे कहते हैं कि वर्ण, आश्रम, वेद, यज्ञ आदि कुछ भी नहीं है *, इसलिए शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्ध हैं ×।

× व्यासः पराशरसुतः किल सत्यवत्यां। तस्मादभूच्छुकमुनिः प्रथितानुभावः।
तच्छिष्यतामुपगतो किल गौडपादः। गोविन्दनाथमुनिरस्य च शिष्यभूतः ॥
(शङ्करदिग्विजय)

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणाध्यानयोगादयोपि।
न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति ॥

× मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च।

उनके विरुद्ध अनेक श्लोक स्कन्दपुराण के उत्तराखण्ड में स्कन्द के मुँह से कहलाकर लिखे गये हैं। वे हमें एक मरहटी पत्र में मिले हैं, जो अशुद्ध और अस्तव्यस्त प्रतीत होते हैं, परन्तु हम उनको ज्यों के त्यों फुटनोट में लिखे देते हैं†। हमारे इस समस्त विवेचन का केवल इतना ही कारण है कि यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाय कि नवीन दर्शन और नवीन सम्प्रदायों का जन्म मद्रास से ही हुआ है। हम यहाँ द्वैत और अद्वैत पर बिलकुल बहस नहीं करते। क्योंकि वैदिकों के मत में न तो द्वैत ही होता है न अद्वैत ही; वेदों में द्वैत अद्वैत का झगड़ा ही नहीं है। वेदोंके सिद्धांतानुसार द्वैत में अद्वैत और अद्वैत में द्वैत सदैव बना रहता है। वेद में तो स्पष्ट लिखा है कि '**तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः**' अर्थात् वह परमात्मा इस सब के भीतर भी है और बाहर भी है। जो सब के भीतर और बाहर भी भरा है और जो '**यत् किञ्च जगत्यां जगत्**' अर्थात् यत्किञ्चस्थान में भी उपस्थित है, उसके अतिरिक्त अन्य वस्तु की कहाँ गुंजायश है और अन्य वस्तु उसके अस्तित्व के अतिरिक्त कहाँ रह सकती है। इसी तरह अनिर्वचनीय माया और मायाविशिष्ट चेतन के विना उस व्यापक का अस्तित्व ही कहाँ रह सकता है और वह विना व्याप्य के किसका व्यापक हो सकता है ? इसीलिए कोई ऐसा अद्वैतवादी नहीं है, जो अनिर्वचनीय जैसी कोई वस्तु और मायामोहित जीव जैसा एक पदार्थ अनादि न मानता हो और कोई ऐसा द्वैतवादी नहीं है, जो तीनों पदार्थों को व्याप्य-व्यापक भाव से एक न मानता हो। हमारी समझ में तो अनिर्वचनीय माया और मायाविशिष्ट चेतन को अनादि मान लेने पर और दोनों में परमात्मा को ओतप्रोत व्यापक मान लेने पर द्वैत-अद्वैत में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। इस प्रकार के समतोल सिद्धान्त में जो मनुष्य ज़रा सा भी सुधार करने जायगा, वह आर्यों की प्राचीनतम तत्त्वज्ञान विषयक परिस्थिति में बहुत बड़ा धक्का लगायेगा। इसलिए वैदिकों में द्वैत-अद्वैत के नाम से सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। द्वैत-अद्वैत के सम्प्रदायों की सृष्टि तो वैदेशिक है और अनार्य है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि शैव धर्म और आसुर उपनिषद् के प्रचार से बौद्धों का नाश हो गया। किन्तु जो शूद्र बौद्ध होकर अच्छी स्थिति में पहुँच चुके थे, वे हिंदू धर्म में फिर आने से शूद्र ही रह गये और उच्च जाति के लोगों के द्वारा सताये जाने लगे। क्योंकि बौद्ध होकर शूद्रों ने द्विजातियों की समानता करना आरंभ कर दिया था। इसलिए उच्च हिंदुओं ने इन पर अत्याचार करना शुरू किया। वेद पढ़ने पर उनकी जिह्वा काटी जाने लगी और वेदके सुनने से उनके कानों में गर्म शीशा ढलवाया जाने लगा ×। यही कारण है कि अब तक उनको अस्पृश्य बताकर रास्ता बंद करना, उनकी छाया से परहेज़ करना और उनके साथ बोलने में भी संकोच करना मद्रास प्रान्त में ही प्रचलित है, अन्यत्र

---

† मणिमत्पूर्वका दुष्टा दैत्या आसन् कलौ युगे। ते कुशास्त्रं प्रकुर्वन्तो हरिवायुविरोधिनः ॥
तेषां मध्ये शंकरस्तु पूर्वं यो मणिमान् खलः। सौगन्धिकवने दिव्ये भीमसेनहतोऽसुरः ॥
यः क्रोधतंत्रको दुष्टो मिथ्या शास्त्रं वदन् पुनः। कृष्णो भीमे च विद्वेषं कुर्वन् भूमावजायत ॥
कालडी ग्रामके रुद्र नराञ्जगद्विमोहयन्। बौद्धशास्त्रपरो विप्रो यः कश्चिद्द्वापरशिष्यकः ॥
स शंकरश्च संन्यस्य तस्मात्संन्यासरूपिणः। वेदान्तमतमित्येतद् दुष्ट शास्त्रं चकार ह ॥

× वेदान्तदर्शन १।३।३८ के '**श्रवणाध्ययनप्रतिषेधात्स्मृतेश्च**' के भाष्य में शङ्कराचार्य कहते हैं कि, 'अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम्। उच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे हृदय-

नहीं। अगले समय में यह अत्याचार और भी अधिक भयंकर था। इस अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए नीचकुलोत्पन्न शठकोपाचार्य आदि साधु पुरुष उद्योग कर रहे थे। उनमें अरबदेशनिवासी, ब्राह्मणकुलोत्पन्न और अलक्ज़ेंड्रिया विद्यालय का ग्रेजुएट यवनाचार्य आ मिला। इन सब ने मिलकर तथा अत्याचारी स्मार्तों से पृथक् होकर बौद्ध और नवीन हिंदुओं के कुछ कुछ तत्त्व एकत्रित करके वैष्णव धर्म की नींव डाली। इसीलिए भागवत् के माहात्म्य अध्याय १, श्लोक ४८ के अनुसार भक्ति कहती है कि—

उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित् क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतागता।

अर्थात् मैं द्रविड देश में पैदा हुई, कर्णाटक में बढ़ी, थोड़ा बहुत महाराष्ट्र में भी बढ़ी और गुजरात में आकर वृद्ध हो गई। यहाँ भक्ति से अभिप्राय वैष्णव-सम्प्रदाय से ही है। इसे सब से प्रथम मद्रासप्रान्तनिवासी विष्णु स्वामी ने सन् ईस्वी की तीसरी शताब्दी में चलाया। परन्तु इसको इस सम्प्रदाय के दूसरे आचार्य रामानुजाचार्य ने रौनक़ दी। ये भी मद्रासप्रान्त ही में पैदा हुए और उन्होंने भी उसी प्रस्थानत्रयी का सहारा लिया। वैष्णवों का तीसरा सम्प्रदाय निम्बार्क स्वामी ने चलाया। ये भी मद्रासी ही थे। इनका जन्म हैदराबाद राज्य के बेदर गांव मे हुआ, जिसे कोई कोई वैदूर्यपत्तन और पंढरपुर भी कहते हैं। वैष्णवधर्म का चौथा सम्प्रदाय वल्लभसंप्रदाय कहलाता है। यह भी मद्रासप्रान्तनिवासी तैलङ्गी ब्राह्मणों से ही चला। इन चारों के दार्शनिक सिद्धांत भिन्न भिन्न हैं। कोई द्वैत, कोई विशिष्टाद्वैत, कोई शुद्ध द्वैत और कोई द्वैताद्वैत के माननेवाले हैं। जिस प्रकार अद्वैतदर्शन का शैव सम्प्रदाय मद्रासप्रान्त से चला है, उसी तरह वैष्णवधर्म भी वहीं पर पैदा हुआ और उसकी सभी शाखाओं के आचार्य वहीं के रहनेवाले द्रविड ही हैं। रावणादि का वाममार्ग, शंकराचार्य का शैव मत और वैष्णवों-का भक्तिमार्ग द्रविडों से ही पैदा हुआ है। अर्थात् भारतवर्ष में द्वैत, अद्वैत आदि दार्शनिक और शैव, वैष्णवादि जितने संप्रदाय हैं, सबकी उत्पत्ति का स्थान मद्रास प्रान्त के द्रविडों के ही घर है। रामानुज वैष्णव होते हुए भी यज्ञों में पशुवध को मानते थे। यह बात उन्होंने स्पष्ट रूप से लिख दी है। अर्थात् मांसमद्य को ये समस्त सम्प्रदायप्रवर्तक उसी तरह मानते आ रहे हैं, जिस प्रकार पूर्व समय के रावणादि मानते थे।

उसी तरह रावण की भगलिङ्गपूजा भी शंकराचार्य की शिवपार्वती होकर, रामानुजाचार्य की लक्ष्मीनारायण बनकर अन्त में वल्लभाचार्य के द्वारा राधाकृष्ण हो गई। राधाकृष्ण व्यभिचार के देवता बने और उसी वाममार्ग का प्रचार होने लगा, जो रावण के समय मे था। जिस प्रकार वाममार्गी कहते हैं कि, '**अहं भैरवस्त्वं भैरवी**' उसी तरह वल्लभ-कुलवाले भी कहते हैं कि '**कृष्णोऽहं भवती राधा आवयोरस्तु संगमः**' अर्थात् मैं कृष्ण हूँ, तू राधा है... । इनकी समस्त लीला का रहस्य उस मुक़द्दमें से खुलता है, जिसका

विदारणम्। यद्युह वा एतद् श्मशानं तस्मात् शूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्' अर्थात् यदि शूद्र वेद को सुन ले, तो उसके कानों में गर्म सीसा और लाख डाली जावे, यदि पढ़े तो जिह्वा काट ली जावे और यदि याद करे, तो हृदय फाड़ डाला जावे, क्योंकि शूद्र श्मशान के तुल्य अपवित्र है, इसलिए उसके निकट खुद भी न पढ़े।

नाम 'महाराज लाईबल केस' है । यह प्रसिद्ध है कि बंबई में इनके अत्याचारों से घबराकर इन के शिष्यों ने ही इन पर एक मुक़द्दमा चलाया था । उसमें इन लोगों के जो इज़हार हुए थे और उस पर हाईकोर्ट जज ने जो फ़ैसला सुनाया था, उस समस्त मिसिल को एक अँगरेज़ ने पुस्तकाकार छपा दिया है । उसी का नाम 'महाराज लाइबल केस' है । यहाँ हम उसी का कुछ भाग लेकर थोड़ा सा वर्णन करते हैं और दिखलाते हैं कि यह वल्लभसंप्रदाय वाममार्ग का ही रूपान्तर है । इस मुक़द्दमे में हाईकोर्ट के जज कहते हैं कि, वल्लभ और उसका पिता लक्ष्मणभट्ट दोनों तैलङ्गी ब्राह्मण हैं । वल्लभ एक नवीन सम्प्रदाय का स्थापक हुआ + । इन लोगों ने पाशविक अत्याचार के लिए शास्त्र बना रक्खा है, उस को भी जजों ने इस प्रकार उद्धृत किया है—

> तस्मादादौ स्वोपभोगात्पूर्वमेव सर्ववस्तुपदेन भार्यापुत्रादिनामपि समर्पणं कर्तव्यं विवाहानंतरं स्वोपभोगे सर्वकार्ये सर्वकार्यनिमित्ते तत्तत्कार्योपभोगी वस्तुसमर्पणं कार्यं समर्पणं कृत्वा पश्चात्तानि तानि कार्याणि कर्तव्यानीत्यर्थः ।

अर्थात् वर को चाहिये कि अपनी सद्योविवाहिता पत्नी को अपने भोग के पूर्व अपने महाराज के पास भेजे । भार्या, पुत्र, धनादि अर्पण करे, अर्थात् जिस जिस भोग की जो जो वस्तु हो, उस उस भोग की वह वह वस्तु महाराज के पास भेजे । पाणिग्रहणसंस्कार होने के बाद अपने संभोग के प्रथम, वर अपनी वधू को महाराज के पास भेजे, पश्चात् अपने काम में लावे × । अन्त में हाईकोर्ट जज ने लिखा है कि 'स्त्रियाँ चाहे अविवाहिता कुमारी हों या विवाहिता हों, उनका धर्म है कि वे महाराजों से उनकी इच्छानुसार व्यभिचारिक प्रेम और विषयलालसा से मुहब्बत करें । महाराजों के साथ व्यभिचार करना केवल विहित ही नहीं है, प्रत्युत वह अत्यन्त आवश्यक है । उसके बिना कोई भी लोक परलोक के सुख की आशा नहीं कर सकता । यह पाशव व्यभिचार का मार्ग ही उनके लिए स्वर्गीय सुख है । वे शैतान के जीवित अवतार हैं' * । इस तरह से वैष्णव सम्प्रदाय भी वाममार्ग ही बन गया और अन्त में अपना आसुर रूप प्रकट कर दिया ।

\+ Laxman Bhat (a Teling) the father of Vallabh and Vallabh himself were excommunicated by the Teling for founding a new sect. (Maharaja Libel Case.)

× Consequently before he himself has enjoyed her, he should make over his own married wife (to the Maharaja). After having got married he should, before having himself enjoyed his wife, make an offering of her (to the Maharaja), after which he should apply her to his own use.

(Maharaja Libel Case.)

* It is the duty of the female members to love the Maharajas with adulterive love and sexual lust whensoever called upon or required by any of the latter so to do, albeit such female members are or may be unmarried maidens or wives of other man.

द्रविडों का वेदभाष्य ।

कृष्णवेद और उसका साहित्य, रावण का गुप्तेन्द्रियपूजन, शंकराचार्य का मांसयज्ञ और वैष्णवों का तनमनअर्पण अच्छी प्रकार प्रचलित होने लगा और यह समस्त आधुनिक रचना हिंदू धर्म बन गई। यद्यपि यह सब कुछ हो गया, तथापि कभी कभी विद्वानों को मूल संहिताओं के देखने, पढ़ने और अर्थ करने का प्रसङ्ग आया ही करता था और शुद्ध वेदों से तथा आसुरी धर्म से विरोध दिखने ही लगता था। इसलिए द्रविडों को इस बात की आवश्यकता हुई कि, मूल संहिताओं को भी अपने अनुकूल कर लिया जाय। इस विचार के पहिले अनन्त ज्ञानभण्डार वेदों का भाष्य कभी किसी ने नहीं किया था। पूर्व समय के लोग वेदों के कुछ मन्त्र चुनकर अमुक अमुक विषय की पद्धतियाँ बना लेते थे और विद्यार्थियों को वेदार्थ करने का नमूना बतलाने के लिए निरुक्त अथवा ब्राह्मणग्रन्थों की तरह छोटे छोटे पाठ्य पुस्तक बना लिए जाते थे। पर समग्र वेदों का भाष्य करके वेदोंके अभिप्राय की इयत्ता निर्धारित करने का साहस कभी आर्यों ने नहीं किया। परन्तु सन् ईस्वी की चौदहवीं शताब्दी में सायण नामी एक द्रविड ब्राह्मण ने यह साहस किया। सायणाचार्य विजयनगर के राजा बुक्क के दिवान थे ×। इन्होंने पण्डितों की सहायता से समस्त वेदों और ब्राह्मणों का भाष्य किया। उस भाष्य में मनुष्यबलि, पशुबलि, इतिहास और दग्ध छाप आदि जितने आसुरी सिद्धांत हैं, सबको वेदमन्त्रों से ही खींचखाँचकर अपने भाष्य में मिश्रित कर दिया।

सायणाचार्य के बाद उवट भी दक्षिण में ही पैदा हुए। उन्होंने भी यजुर्वेद पर भाष्य किया। इनका भी भाष्य सायणाचार्य के ही आधार पर है। उवट के बाद महीधर हुए। इन्होंने भी सायणाचार्य और उवट के ही आधार पर भाष्य किया। महीधर ने अपने भाष्य के आरम्भ ही में लिख दिया है कि '**भाष्यं विलोक्यौवटमाधवीयम्**' अर्थात् मैंने सायण और उवट के भाष्यों को देखकर ही यह भाष्य लिखा है। यजुर्वेद पर सायणाचार्य का भाष्य इस समय नहीं मिलता, पर उवट और महीधर के भाष्य मिलते हैं। दोनों के भाष्यों में कुछ भी अन्तर नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि, सायणाचार्य का भाष्य भी इसी प्रकार का रहा होगा। कहने का मतलब यह कि सबने सायणाचार्य का ही अनुकरण किया है।

Adultery with the Maharaja is not only enjoined, but an absolute necessity without which no man can expect happiness in this world or bliss in the next. A course of bestial licentiousness is their beautitude of heaven. They (Maharajas) may be described as living incarnation of Satan.

(Maharaja Libel Case.)

× The great scholiast Sayana who was Prime Minister at the court of the King Bukka of Vijainagar in what is now the Madras District of Bellary in the fourteenth century of our era...

(Introduction, Hymns of the Rigveda by Ralph T. H. Griffith, M. A.)

आधुनिक भाष्यकारों में सबके अगुआ सायणाचार्य ही हैं। आगे हम यजुर्वेद से महीधर के भाष्य का और ऋग्वेद से सायणाचार्य के भाष्य का नमूना दिखलाते हैं और बतलाते हैं कि उनका भाष्य कैसा है। 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' इस प्रसिद्ध मंत्र का भाष्य करते हुए महीधर लिखते हैं कि—

> अस्मिन्मंत्रे गणपति शब्दादश्वो वाजी गृहीतव्य इति। तद्यथा महिषी यजमानस्य पत्नी यज्ञशालायां पश्यतां सर्वेषामृत्विजामश्वसमीपे शेते शयाना सत्याह हे अश्व गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहं आ अजानि आकृष्य क्षिपामि त्वं च गर्भधं आ अजासि आकृष्य क्षिपसि।

अर्थात् यजमानपत्नी सबके सामने यज्ञमंडप में घोड़े के पास सोवे और घोड़े से गर्भ धारण करने के लिए कहे। महीधर और उवट दोनों भाष्यकारों ने इस स्थल के कई एक मन्त्रों का अर्थ इसी तरह अश्लील ही किया है। परंतु शतपथब्राह्मण में इन्हीं मन्त्रों का अर्थ बहुत ही शुद्ध और आर्योचित किया गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह सारा प्रकरण अपने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' नामी ग्रन्थ में अच्छी तरह लिख दिया है। तथापि यह स्मरण रखना चाहिये कि, दूसरी जगह शतपथादि ग्रंथों में भी उवट और महीधर के अनुसार ही अर्थ मिलता है। इससे अनुमान करने का पूरा मौक़ा मिल जाता है कि उपनिषदों की भाँति ब्राह्मणग्रंथों में भी मिश्रण है। अन्यथा एक ही ग्रंथ में एक ही प्रकार के मन्त्रों का भाव भिन्न भिन्न स्थलों में परस्परविरोधी क्यों होता ? एक ही सम्पादक इस प्रकार की भयङ्कर ग़लती नहीं कर सकता। इसलिए यह स्पष्ट है कि शतपथादि में अश्लील प्रकरण बादरायणकालीन है और उस पर भाष्य सायणकालीन है। उवट और महीधर के भाष्य में इसी प्रकार के अनेक अश्लील, असभ्य और क्रूर वर्णन हैं, जिनको लिखकर हम व्यर्थ ग्रंथ-विस्तार नहीं करना चाहते। जिस प्रकार महीधर के भाष्य का नमूना आर्योचित भावके प्रतिकूल है, उसी तरह सायणाचार्य के भाष्य का नमूना भी क्रूर कर्म की पराकाष्ठा बता रहा है।

सायणाचार्य ने ऋग्वेद मं० १, सू० १४ से ३० तक के भाष्य में शुनःशेप की कथा लिख कर मनुष्यबलि का एक भयङ्कर आदर्श सामने खड़ा कर दिया है। परन्तु वेद में इन बातों का कहीं नामोनिशान भी नहीं है। निरुक्त में शुनःशेप का अर्थ विज्ञानवेत्ता किया गया है, पर सायणाचार्य ने शुनःशेप का अर्थ कुत्ते का......किया है। इस पर मिस्टर मूर कहते हैं कि, डॉक्टर रोसिन को अनुमान करने का मौक़ा मिला है कि रामायणोक्त अजीगर्त की कथा से वेदों का कुछ भी वास्ता नहीं है +। इस के आगे वही मूर साहब कहते हैं कि ब्राह्मणग्रंथों के अन्दर अजीगर्त का वर्णन इतना भयङ्कर है, जो भारत के अनार्यों का एक नमूना कहनेयोग्य है ×। इन साक्षियों से स्पष्ट हो जाता है कि, वेदों में नरबलि का

+ Hence the Doctor Rosin was led to infer that Vedic Hymns bore no relation to the legend of the Ramayan and offered no indication of a human victim deprecating death. (Text Book of Sanskrit Literature.)

× So revoling indeed, is the description given of Ajigarta's behaviour in the Brahman that we should rather recognize in him a specimen of the un-Aryan population of India. (ibid)

कुछ भी उल्लेख नहीं है, पर अनार्य जातियों में नरबलि होता है, अतः उन्होंने वेदों से भी यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। रामायण और ब्राह्मणग्रन्थों में तो प्रक्षेप संभव है, पर संहिताओं में एक एक अक्षर की गिन्ती होने से उनमें प्रक्षेप नहीं हो सकता। इसी लिए उनके मन्त्रों से भाष्य के द्वारा खींचतान करके ऐसे क्रूर कर्म प्रवर्तक कृत्य का वर्णन किया गया है। यह सायणाचार्य का काम है। सायणाचार्य ने 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' मन्त्र से वामन अवतार भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। परन्तु यही मन्त्र निरुक्त में सूर्यपरक लगाया गया है। निरुक्त में इस मन्त्र के होते हुए भी सायणाचार्य ने ऐसा अनर्थ किया है, जो उनके लिए उचित न था। इसी तरह वैष्णव होने के कारण उन्होंने शरीर दग्ध करनेवाली छाप का वर्णन भी ऋग्वेद से निकाला है और जगन्नाथजी की उस लकड़ी का भी ऋग्वेद से वर्णन किया है, जो उनके कलेवर के काम आती है। वेदों में इतिहास तो उन्होंने इतना भर दिया है कि, वेदों को अपौरुषेय साबित करना मुशकिल हो गया है। इस तरह से सायणाचार्य ने वेदों को बहुत ही हीन दर्जे का बना दिया है और वेदों में वे समस्त आसुरी बातें सिद्ध कर दी हैं, जिनका प्रारम्भ रावण और बादरायण आदि ने किया था तथा जिसका पोषण शंकराचार्य और रामानुजाचार्यादि ने किया है।

बहुत दिन तक इसी भाष्य का भारतवर्ष में प्रचार रहा और द्रविड ही वेदाचार्य प्रसिद्ध रहे। जब योरोपियन लोग इस देश में आए, तो उन्होंने यहाँ वेदों की बड़ी भारी महिमा सुनी। उनकी इच्छा हुई कि ऐसी पवित्र और प्राचीन पुस्तक हम भी अपने देश के पुस्तकालयों में रक्खें। दुर्दैव से उन दिनों में मद्रास प्रांत के ये द्रविड ही आर्यजाति के गुरु हो रहे थे। वही वेदपात्र, वही याज्ञिक और वही हिंदूधर्म के नेता समझे जाते थे। अतः योरोपियनों ने भी उन्हीं से वेदों की पुस्तक चाही। सन् १७०० के आरम्भ में ही कोलब्रूक साहब को किसी दक्षिणी ने वैदिक छन्दों में लिखी हुई और देवी-देवताओं की स्तुति से पूर्ण एक पुस्तक दे दी। किन्तु जब मालूम हुआ कि, यह पुस्तक वेद नहीं है, तो वह त्याग दी गई। यद्यपि वह पुस्तक त्याग दी गई, तो भी योरोपनिवासियों ने वेदों की प्राप्ति की चेष्टा जारी रक्खी और मद्रासियों द्वारा अनेक बार ठगे भी गये। अन्त में अर्थात् सन १७७९ में कर्नल पोलियर ने तत्कालीन महाराजासाहब जयपूर से वेदों की नक़ल माँगी। नक़ल दी गई और वह नक़ल प्रसिद्ध पंडित आनन्दराम को दिखलाकर लन्दन भेजी गई और वहाँ के ब्रिटिश म्यूज़ियम में रक्खी गई, तथा द्रविडों की ठगाई से छुट्टी मिली। कहने का मतलब यह कि वेद के सम्बन्ध में ये अन्त तक धोखा ही देते रहे। ये शुद्ध वेदों का प्रचार नहीं चाहते थे। इसी लिए इन्होंने इस प्रकार की ठगाई अबतक जारी रक्खी और रावण से सायण तक किए हुए कृत्य का पोषण करते रहे!

उपर्युक्त समस्त वर्णन से अच्छी प्रकार प्रकट हो जाता है कि रावण से सायण तक इन्हीं लोगों ने मांसयज्ञ, मद्यपान और गुप्तेन्द्रिय-पूजन आदि आसुरी प्रवृत्तियों का प्रचार किया, इन्हीं लोगों ने वाममार्ग, शैव और वैष्णवादि सम्प्रदाय चलाये, इन्ही लोगों ने शंकर, रामानुज, माध्व आदि रूप से धर्मगुरु बनकर द्वैत अद्वैतादि मतों का प्रचार किया और इन्हीं लोगों ने वेदों का भाष्य करके आर्यों को प्राचीन वैदिक धर्म से पतित किया और उन

के हर प्रकार के पतन का कारण हुए । इस प्रकरण के आरम्भ में हमने कहा था कि, जितने विदेशी इस देश में आये हैं, उनमें से केवल चार ही विदेशी दलों के सम्प्रदायप्रवर्तन और साहित्यविध्वंस का वर्णन करेंगे । उनमें से इस प्रधान द्रविड जाति के कृत्यों का वर्णन हुआ । अब इसके आगे चितपावनों के साहित्य-विध्वंस का वर्णन करते हैं ।

चितपावन और आर्यशास्त्र

हम पहिले लिख आये हैं कि चितपावन मिश्र के रहनेवाले यहूदी हैं । इन्होंने ब्राह्मण बनकर उसी समय महाराष्ट्र में घुसना चाहा था, पर उन्होंने नहीं घुसने दिया, इसीलिए देवस्थ और कोकणस्थ दो भेद हो गये । कोकणस्थ ही चितपावन हैं । ब्राह्मण होकर इन्होंने संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और इन्होंने भी तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद ही स्वीकार किया, तथा यहाँ के साहित्य में कृष्ण यजुर्वेद का वेदत्व, अपना सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठत्व और मिश्र के रीत-रिवाजों को आर्यों की पुस्तकों और रीतिरिवाजों में मिश्रित किया । जब प्रेस नहीं थे तब लोगों के पास हस्तलिखित ही पुस्तक थे । उस समय नये ग्रन्थों का पहिचानना और पुराने ग्रंथों के प्रक्षिप्त भागों का पकड़ना भी कठिन था । इसलिये पुराने ज़माने में इन्होंने क्या क्या रचना की है, यह साबित करना कठिन है । पर इस प्रकाश के ज़माने में जब हज़ारों प्रेस धड़ाधड़ पुस्तकें प्रकाशित करके घर घर पहुँचा रहे हैं, ऐसे ज़माने में भी इन्होंने जो कुछ प्रक्षेप किया है, यहाँ उसी का वर्णन करते हैं ।

'अहिंसा–धर्म–प्रकाश' नामी ग्रंथ में सावरकर महोदय कहते हैं कि, 'तुकाराम तात्या ने राजाराम बोडस नामी एक चितपावन ब्राह्मण को प्रस्तावनासहित ऋग्वेद का सायण भाष्य छपाने के लिये नियुक्त किया और सब काम उन्हीं के सुपुर्द कर दिया । बोडस महोदय कृष्ण यजुर्वेद के माननेवाले थे, इसलिए उस वेद का महत्त्व दर्शाने और नाचत्त्व छिपाने के लिए उन्होंने सायणाचार्य की प्रस्तावना में लिख दिया कि कृष्ण यजुर्वेद के जो मंत्रभाग और ब्राह्मणभाग का मिश्रण है, उसके लिए ब्रह्मदेव ने सारस्वत और उसके शिष्यों के विवाद के अन्त में पहिले ही कह दिया है कि यह मिश्रण बिलकुल ही निर्दोष है । प्रस्तावना में यह उक्ति मिल गई और ऋग्वेद छप गया । किंतु प्रो० मैक्समूलर और प्रो० पिटर्सन के छपाये हुए ऋग्वेद जो बोडस महोदयवाले ऋग्वेद से पहिले ही भिन्न भिन्न समयों में छप चुके थे, जब भारत में आये और लोगों ने पढ़ा, तो उनमें वह उक्ति न मिली । पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि, यह कृत्य उक्त चितपावन महोदय का ही है ।'

उक्त पुस्तक में जो दूसरी घटना लिखी है, वह इस प्रकार है कि कृष्ण साठे नाम के एक चितपावन ब्राह्मण ने वृद्ध पराशरस्मृति की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ मिल सकीं एकत्रित कीं । उनमें एक प्रति बंबईनिवासी बाबा पाठक शुक्ल की भी थी । उस पुस्तक के बारहवें अध्याय में जहाँ ब्रह्मनिरूपण का विषय है, वहाँ उक्त साठे महोदय ने अपनी चितपावन जाति को उच्च सिद्ध करने के लिए बहुत से श्लोक मिला दिये और उस अध्याय के आदि से अन्त तक समस्त अंकों को भी बढ़ा दिया । श्लोक कई एक थे, इसलिए पत्रों के हाशियों (Margin) पर भी लिख दिये और उसी प्रति के अनुसार श्रीधर शिवलाल के ज्ञानसागर प्रेस में हज़ारों प्रतियाँ छपा डालीं । जब पुस्तक छप गई, तब हस्तलिखित प्रति बाबा पाठक शुक्ल को चुपचाप दे आये । कुछ दिन के बाद बाबा पाठक

की दृष्टि इस कृत्य पर पड़ी। बाबा साहब ने महा कोलाहल मचाया। अदालत की भी नौबत आई। पर कुछ भले पुरुषों के बीच में पड़ जाने से मामला शान्त हो गया। जो श्लोक मिलाये गये थे, वे बड़े ही मज़ेदार हैं। अतः हम उनमें से कुछ श्लोक यहाँ लिखते हैं—

कोंकणाश्चित्तपूर्णास्ते चित्तपावनसंज्ञकाः।
ब्राह्मणेषु च सर्वेषु यतस्ते उत्तमा मताः॥
एतेषां वंशजाः सर्वे विज्ञेया ब्राह्मणाः खलु।
माध्यंदिनाश्च देशस्था गौडद्रविडगुर्जराः॥
कर्णाटा तैलंगाद्यापि चित्तपूर्णस्य वंशजाः।
अतश्चित्तस्य पूर्णं यो निंद्यात्तस्य क्षयो भवेत्॥

अर्थात् सब ब्राह्मणों में चितपावन ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं। गौड, देशस्थ, द्राविड गुर्जर, कर्णाटक और तेलङ्ग आदि जितने ब्राह्मण हैं, सब चितपावनों के ही वंशज हैं। इसलिए जो इन चितपावन ब्राह्मणों की निन्दा करे, उसका क्षय हो जावे। इस प्रकार की इन्होंने रचना करके अपनी जाति की निकृष्टता को दूर करने का प्रयत्न किया था, परन्तु यह बात आगे न चली और लोगों को इनका प्रपञ्च मालूम हो गया। इसके अतिरिक्त इन्होंने जिस समय क्षत्रियों के राज्य का अपहरण किया, उस समय सतीप्रथा के सम्बन्ध में इन्होंने जो कुछ नवीन रचना की, वह बड़ी ही विचित्र है। यहाँ हम उसका भी थोड़ा सा वर्णन करते हैं। सोशल रिफ़ार्म सिरीज़ २ में और अहिंसा—धर्म—प्रकाश में पं० गावस्कर लिखते हैं कि 'दक्षिण के शाहुराजा ने बालाजी विश्वनाथ नामी एक चितपावन ब्राह्मण को अपना सेनापति बनाया। बालाजी विश्वनाथ ने मौक़ा पाकर शाहुराजा को उपचारप्रयोगद्वारा मरवा डाला और स्वयं राजा बनने की चेष्टा करने लगा। उधर शाहुराजा की रानी शंकराबाई राज्य का वारिस बनाने के लिए दत्तक पुत्र लेने का विचार करने लगीं। इस पर बालाजी विश्वनाथ ने शंकराबाई को समझाना शुरू किया। उसने कहा कि हाय! जिस पति पर आपकी इतनी भक्ती थी, जो तुम्हारा प्राणों से भी अधिक प्यार करता था, अभी उसे मरे हुए कुछ भी समय नहीं बीता कि, आप राज्य-शासन का आनन्द लेने लगीं। धन्य थीं वे पतिव्रता स्त्रियाँ जो अपने प्राणपति के साथ धधकती हुई चिता में जलकर सदैव के लिए पति के समीप चली जाती थीं। शंकराबाई के दिल पर इन बातों ने बड़ा असर किया। किन्तु स्त्री को पति के साथ जलना भी कोई विशेष धर्म है, यह बात उसने अपने जीवन में नहीं सुनी। वह जल्दी से बोल उठी कि, क्या पति के साथ जल मरने पर पतिदेव मिल सकते हैं? बालाजी ने उस समय की समस्त हस्तलिखित पुस्तकों में क्षेपक मिलवा मिलवाकर कथा वाँचनेवाले भटों के द्वारा दिखला दिया कि, दशरथ, पाण्डु, रावण, इन्द्रजित आदि बड़े बड़े पुरुषों की स्त्रियों ने अपने पति के साथ जलकर प्राण दिये हैं *। बालाजी ने यह भी कहलवाया कि

* तें शाहू राजाला जारणमारणादि औषधीप्रयोगाने मारून व त्याची निपुत्रिक विधवा बायको राज्यप्राप्तीच्या कामांत प्रतिकूल होईल, म्हणून सती जाण्याचे नवे ग्रन्थ रचून व प्राचीन ग्रन्थांत दशरथ, पाण्डु, रावण, इन्द्रजित अशांच्या स्त्रिया सती गेल्याकारणाने स्वर्गी गेल्या, अशीं क्षेपकें घुसडून ते मतलब-ग्रन्थ भटोबांकडून तिला वाचवून दाखवून व शिवाय द्रव्यलालुचीनें वश केलेल्या तिच्या भावांकडून उपदेश करून व भीति दर्शवून, तिच्या इच्छेविरुद्ध तिजला सती घालवून अर्थात् जिवंत जाळून टाकून मिळविलें होतें.

यदि पति जल में डूबकर मर गया हो, दूसरे ग्राम में मर गया हो, उसकी लाश का पता न हो अथवा उस समय स्त्री सगर्भा हो, तो समय आने पर सुभीते के साथ अपने पति की खड़ाऊँ या वस्त्र आदि लेकर जल मरने से भी वह अपने पति को प्राप्त होती है और दोनों स्वर्ग को जाते हैं। इस उपदेश से शंकराबाई जलने के लिए तैय्यार हुई। बालाजी ने तुरन्त ही अपने कृष्णवेद के तैत्तिरीय आरण्यक ६।२० में आये हुए ऋग्वेद के '**इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेनः सर्पिषाः । संविशन्तु अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना रोहन्तु जनया योनिमग्रे**' इस मन्त्र के 'अग्रे' शब्द को 'अग्ने' करके पति के साथ अग्नि में जल मरने की वैदिक विधि और विनियोग भी दिखला दिया। वेद पर विश्वास करनेवाली आर्यजाति की पतिव्रता राजमहिषी अपने पति के पास जाने को उत्तेजित हो उठी और बालाजी के षड्यन्त्र से तुरन्त ही चिता में धरकर फूँक दी गई। रानी के जलते ही समस्त राज्यसूत्र चितपावनों के हाथ में आ गया, तथा शाहूराजा की मृत्यु और शंकराबाई के सतीचरित्र की यह करुणापूर्ण कहानी समस्त महाराष्ट्र देश में अच्छी तरह से फैली गई। वहाँ के ग्रामीण अब तक इस कलंक कथा को गाया करते हैं। उन गीतों में से एक गीत नीचे फुटनोट में दिया गया है, जिसमें उपर्युक्त कथा का सार वर्णित है' × ।

चितपावनों ने इस बदनामी को रफू और रफ़ा करने के लिए सतीप्रथा को धर्म ही मान लिया और अपने खास शहर पूना में मूलामूठा नदी के संगमपर सती होने का एक स्थान ही नियत कर दिया। सतीधर्म की इस उत्तेजना पर सतीप्रथा की वह धूम जारी हुई कि, पूना में रहनेवाला अंग्रेज़ी रेज़ीडेंट भी घबरा गया। उसने वहाँ के पेशवा से इस निन्द्य कर्म को बन्द करने के लिए प्रार्थना की। उस समय की सतीप्रथा का वर्णन करते हुए मूर साहब कहते हैं कि 'चितपावन लोग सतीप्रथा पर बड़े आसक्त थे, परंतु जब सन् १८३० में गवर्नमेंट ने सतीप्रथा–निषेध क़ानून बनाया, तो उन्होंने बिना कुछ कहे सुने ही उसे बंद कर दिया। कुछ चितपावन अपने जातिबंधु नानासाहब को इस भयङ्कर अपराध से मुक्त देखकर प्रसन्न होंगे।

× शाहूराजा भ्रमीभूत। होवोनि रहिला दुःखखाईत। सन्निध बाजीरायसुत। नानासाहेब पेशवे ॥ परम आर्जवी चितपावन। तशांत भ्रमिष्ट शाहूमन। झालें म्हणोनि अपल्याधीन। करोनि लीन शेवेशीं ॥ स्वकार्यसाधू बाजीराय। जारणादि करोनि उपाय। शाहूराजासी करोनि मरणप्राय। राज्यसूत्र बळकाविलें ॥ पोटीं नव्हता शाहूस पुत्र। नानास लाभलें अधिकारपत्र। तेव्हा राज्याधिकारसूत्र। नृपमृत्यन्तीं आवरिलें ॥ स्वाधीन सेनासमुदाय पाही। प्रतिनिधीचें न चलें कांहीं। त्याचीं बेडी घालोनि पायीं। पर्वतारूढ तो केला ॥ शाहू–भार्या शंकराबाई। नृपासंगे सती न जाई। म्हणोनि तिजला नाना उपायीं। बोधोनि अपाई दग्धविली ॥ लोभ दावोनि बंधूस तिचे। होते बंधु दुष्ट मतीचे। त्यांहीं बलात्कारें सतीतें। धर्म बोधोनि सती नेली ॥ शाहूनृपाचे सुहृदन्यत्र। साताऱ्यासी ते सर्वत्र। रक्षोनि स्वाशें निबन्धसूत्र। आपुल्या तंत्रांत ठेविलें ॥ साताऱ्याचें सोडोनि स्थान। पुणियासी केलें अधिष्ठान। नृपाधिकार–मानपान। साताऱ्यास करवी तया। वृक्षीं फलें येतां पाडा। वानरें पाहोनि त्या झाडा। शाखोंशाखीं उडिया धडधडा। घेवोनि कडाडा भक्षिती फलें ॥ किंवा मर्कटें सिंदीवन। देखोनि करिती मधुसेवन। तैसे अधर्मी चितपावन। धांवोनि आले पुणियासी ॥

पर उनकी प्रसन्नता इसलिए न होगी कि नाना साहब इसे अपनी न्यायबुद्धि से उचित मानते थे या अनुचित, प्रत्युत इसलिए प्रसन्नता होगी कि, वे इस लज्जायुक्त भयङ्कर कृत्य के कलंक से छुट्टी पा गये। पूना में विधवाओं का उनके मृत पतियों के साथ जलना बहुत अधिक था। वहाँ प्रति वर्ष पाँच छे सतियाँ होती थीं। यह कृत्य ब्रिटिश रेसिडेन्सी के पास मूलामूठा नदी के संगम पर होता था' * । इस वर्णन से पाया जाता है कि, इन्होंने शङ्कराबाई को सती करने के लिए शास्त्रों में अवश्य प्रक्षेप कराया।

इन सब प्रमाणों के अतिरिक्त अभी हाल में जो प्रमाण मिले हैं, उनसे भी विदित होता है कि, चितपावनों ने जाली ग्रन्थों की रचना की है। 'सिद्धांतविजय' के पृष्ठ ९, १० में लिखा है कि, सतारा दरबार के दफ़्तर में जो काग़ज़पत्र मिले हैं, उनसे प्रकट होता है कि पेशवाईकाल में अप्पासाहब पटवर्धन और नीलकंठशास्त्री ने जाली ग्रन्थों की रचना की थी। इसके सिवा 'शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण' के पृष्ठ ६२, ६३ में, 'ग्रामण्याचा साद्यन्त इतिहास' में और 'राजवाड्याची गंगाभट्टी' आदि पुस्तकों में चितपावनों द्वारा जाली ग्रन्थों की रचना का विस्तृत वर्णन है। इसलिए यहाँ अब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो केवल इतना ही लिखना है कि, अभी हाल में सबके देखते देखते निर्णयसागर प्रेस में जो उवट महीधर के भाष्यसहित यजुर्वेद छपा है, उसमें भी पाठभेद किया गया है। यजुर्वेद का 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या' प्रसिद्ध मन्त्र है। यह मन्त्र बंगाल की छपी हुई प्रति में महीधर उवट के भाष्य के साथ छपा है। उसमें श्री और लक्ष्मीरूप दो वेश्याओं का वर्णन है। पर हाल की छपी हुई इस निर्णयसागर की प्रति से वेश्याओं की बात निकाल डाली गई है। लेकिन योरप की छपी हुई प्रति निर्णयसागर की प्रति से पहिले की छपी है और उसमें वही वेश्याओं की बात है। इससे ज्ञात होता है कि उवट महीधर का असली अर्थ वही है। निर्णयसागरवालों ने व्यर्थ ही उस पाठ को बदला है। निर्णयसागर प्रेस का संबंध दाक्षिणात्यों से ही है, इसलिए अनुमान होता है कि यह कृत्य भी किसी चितपावन महात्मा ही का होगा। जो हो, यहाँ कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि चितपावनों

---

* The Kokanasthas (Chitpavans) were greatly addicted to Sati; but when that horrid Act was introduced by Government in 1830, they discontinued it without any remonstrance. Some of the Chitpavans would be glad-to exculpate their fellow casteman 'Nana Sahab' from the atrocities laid to his charge, but this is more creditable to their feeling of shame on account of these atrocities than to the soundness of the judgement which they form of their perpetrator.

The burning of widows with their husbands' corpses is very frequent at Poona, where five or six instances occur every year, and the immolation is usually performed at the junction of the Moota and Moola rivers, close to the British residency. (Mare)

ने आर्यशास्त्रों में मिश्रण किया है। यही नहीं कि इन्होंने नवीन ग्रन्थों की रचना और प्राचीन ग्रन्थों में केवल मिश्रण ही किया है, प्रत्युत उन्होंने यहाँ के हिन्दुओं में अपने जाति और देश के पूज्य देवी देवताओं की पूजा का भी प्रचार किया है। यहाँ हम उनके देवता का भी एक नमूना दिखलाते हैं।

जिस प्रकार भारतदेश में श्री नामी देवी के अंशों से दुर्गा, काली, भवानी, भैरवी, चण्डी, अन्नपूर्णा और चामुण्डा आदि रूप बनाये गये हैं, उसी प्रकार मिश्रदेश में भी आदि-माया इसिस के अंशों से मिनर्वा, जुनो, वेनसा, ह्वीआ, हेकेटी, डायना और ह्या आदि रूप माने जाते हैं। यहाँवाले जिस प्रकार चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, मांस, रुधिर से अपनी देवियों की पूजाअर्चा करते हैं, ठीक उसी प्रकार मिश्रवाले भी करते हैं। जिस तरह यहाँ की देवियों के चतुर्भुज, अष्टभुज और सहस्रभुज आदि रूप हैं, उसी तरह मिश्र की प्रतिमाओं के भी हैं। जिस प्रकार के अस्त्रशस्त्र यहाँ की देवियाँ रखती हैं, वैसे ही मिश्र की देवियों के पास भी हैं। जिस तरह यहाँ की देवी ने महिषासुर—भैंसे के से मुँहवाले—राक्षस को मारा है, वैसे ही मिश्र की इसिस–मिनर्वा देवी ने भी 'हीकस–हिपोपोटेमस' नामी (दरियाई घोड़े के से मुँहवाले) राक्षस को मारा है। जिस प्रकार के नवरात्र यहाँ होते हैं, ठीक वैसा ही नवरात्रि का उत्सव मिश्र में भी होता है। जिस तरह उत्सव में यहाँ उदकपूर्ण कुम्भ रक्खा जाता है, वैसा ही मिश्र में भी रक्खा जाता है। वहाँ इस घट को 'केनाव' कहते हैं। जिस प्रकार यहाँ घट पर स्वस्तिक आदि चिह्न बनाये जाते हैं, वैसे ही मिश्रवाले भी स्वस्तिक, द्वित्व, त्रिकोण, त्रिपुण्ड् तथा त्रिशूल आदि चिह्न बनाते हैं।

इस समता के अतिरिक्त देवियों की उत्पत्ति के विषय में यहाँ एक कथा प्रचलित है। उस कथा का सार इस प्रकार है कि दक्ष की लड़की पार्वती थी। उसका विवाह शिव के साथ हुआ। एक दिन उसके पिता ने अनेक पशुओं की बलि दी, किन्तु इस बलिदान के समय अपनी कन्या को न बुलाया। पर कन्या वहाँ खुद गई। कन्या ने वहाँ जाकर जब अपने पति का भाग न देखा, तो उसने प्राण त्याग दिया। इस पर शिव ने क्रोध किया और वीरभद्र नामी एक भयानक जंतु को पैदा कर और वहाँ भेजकर दक्ष का शिर कटवा लिया। दक्ष के मरने पर शिव अपनी स्त्री के शव को लेकर नाचने लगे। इसी बीच में विष्णु ने अपने चक्र से उस स्त्री–शव के ५१ टुकड़े कर डाले और अनेक स्थानों में फेंक दिये। ये सब टुकड़े कामाक्षी, मीनाक्षी, आदि नाम से मातापुर और कलकत्ता आदि में उग्रपीठ बन गए। इनमें सबसे प्रधान कामाक्षी है। इसका काम–अक्षी नाम इसलिए पड़ा है कि, यह उस शव की काम की आँख अर्थात् गुमाङ्ग है। यह कथा ज्यों की त्यों दूसरे नामों के साथ मिश्री लोगों में भी प्रचलित है। उनके यहाँ लिखा है कि उस इसिस् के टुकड़े मिनर्वा, आसरपायन, डायना आदि हो गये और इन इन नामों से प्रख्यात हुए। इस कथा की शृङ्खला तब बिलकुल ही समझ में आ जाती है, जब हम दत्तात्रय के जन्म की कथा को ध्यान से पढ़ते हैं।

दत्तात्रय की कथापुराणों के अनेक भागों के जोड़ने से जो रूप बनाती है, वही रूप मिश्रियों की तमाम कथा के मिलाने से भी बनता है। दत्तात्रय के इतिहास के तीन

भाग हैं। दत्तात्रय किससे पैदा हुए, जिससे दत्तात्रय पैदा हुए, वे किससे पैदा हुए और जिससे वे सब पैदा हुए, वह कौन है? यहाँ हम तीनों भागों को लिखते हैं। देवी भागवत में लिखा है कि, श्रीपुरनिवासिनी देवी ने अपने हाथ को घिसा। घिसने से हाथ में छाला पड़ गया। छाला फूटा। उस छाले से एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम ब्रह्मा था। माता ने उससे कुचेष्टा की पर उसने माता का कहना न माना। माता ने उसे भस्म कर दिया और हाथ रगड़कर फिर एक लड़का पैदा किया, जिसका नाम विष्णु था। इससे भी इच्छा प्रकट की, किन्तु उसने भी न माना और भस्म कर दिया गया। तब तीसरी बार देवी ने फिर हाथ रगड़ा और छाले से शिव नाम लड़का पैदा किया। इस शिव से भी आज्ञा की गई। शिव ने कहा कि पहिले यह बतलाइये कि, ये दोनों राख की ढेरियाँ क्या हैं। माता ने कहा कि ये दोनों ढेरियाँ तेरे बड़े भाइयों की हैं। शिव ने कहा माँ! इन्हें जिला दे। माता ने उन दोनों को जिला दिया। देवी के यहीं तीनों पुत्र ब्रह्मा, विष्णु, और महेश नामी विख्यात देवता हुए। इन तीनों देवताओं से दत्तात्रय कैसे उत्पन्न हुए, वह कथा इस प्रकार है—

पद्मपुराण में लिखा है कि अत्रि ऋषि शीत-कटिबंध में तपस्या कर रहे थे। वहाँ उनको सरदी लगी। वह सरदी अत्रि ऋषि की आँखों में घुस गई और आँसू बनकर बाहर निकल पड़ी। उस गिरे हुए आँसू से चंद्रद्वीप, शीतद्वीप आदि भूभाग बन गये। वह सरदी आकाश की ओर फिर उड़ी, परन्तु ख़ाली जगह में पैर न जम सके, इसलिए समुद्र में गिर पड़ी। उस गिरी हुई सरदी को अत्रि ने अपना चन्द्र नामी पुत्र मानकर समुद्र से कहा कि, इसकी रक्षा करना। बहुत दिन तक समुद्र ने इसकी कुछ भी परवा न की, पर अन्त में उसको मनुष्य-रूप देकर अपना पुत्र और लक्ष्मी का बन्धु माना। उस समय यह चन्द्र प्रकाशहीन था, इसलिए देवतों ने उसे उखली में कूटकर समुद्र में फिर फेंक दिया। वह फेंका हुआ चूर्ण उत्तम चंद्रमा बन गया। वही चंद्रमा समुद्र-मंथन के समय बाहर निकला और आकाश को उड़ गया। अत्रि का यही चंद्र जगत् के कल्याण के लिये हुआ। परंतु उन्होंने मनुष्य शरीर धारी पुत्र के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव की आराधना की। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने क्रम से सोम, दत्तात्रय और दुर्वासा नामक तीन पुत्र दिए। इसी से संबंध रखनेवाली दूसरी कथा स्कंदपुराण में इस प्रकार है कि, अत्रि ऋषि ने मनुष्यों को वेद समझाने के लिए तीन पुत्र बनाये। एक सोम जो ब्रह्मा की आकृति का था, दूसरा दत्तात्रय जो विष्णु की आकृति का था और तीसरा दुर्वासा जो शङ्कर की आकृति का था। इन तीनों कथाओं से ज्ञात हुआ कि देवी से ब्रह्मा, विष्णु और शिव हुए तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव से सोम, दत्तात्रय और दुर्वासा हुए। अब एक मार्कण्डेय पुराण की कथा का भी वर्णन करते हैं। उसमें लिखा है कि कौशिक नामी एक ब्राह्मण अपने पूर्वकृत कर्मानुसार कोढ़ी हो गया। उसकी सहधर्मिणी ग्लानि-रहित होकर उसकी सेवा करती थी। एक दिन कुष्ठी ब्राह्मण ने अपनी स्त्री से कहा कि, मैंने जो रास्ते पर एक वेश्या देखी थी, वह मेरे मन को विचलित कर रही है, अतः उसके प्राप्त करने का उपाय कर ×। यह सुनकर वह स्त्री अपने पति को कंधे पर चढ़ाकर धीरे धीरे उस वेश्या की तरफ़ ले चली, किन्तु रास्ते में उस कुष्ठी का पैर मांडव्य नामी ऋषि के

× या सा वेश्या मया दृष्टा राजमार्गे गृहोषिता। तां मां प्रापय धर्मज्ञे सैव मे हृदि वर्तते॥

वदन में लग गया । मांडव्य ने महाक्रोध करके शाप दे दिया कि, कल प्रातःकाल होने के पूर्व ही तू मर जा। कुष्ठी की स्त्री इस शाप से भयभीत हुई और इधर उधर ऋषि-मुनियों से इस शाप का मोक्ष पूछती हुई अत्रि ऋषि की स्त्री अनुसूया के आश्रम में पहुँची और सारा वृत्तांत कह सुनाया। अनुसूया ने कहा कि डरो मत। इतने में सूर्योदय हो गया और वह कुष्ठी ब्राह्मण मर गया +। अनुसूया ने उस स्त्री से कहा कि तू भय मत कर, मेरा सामर्थ्य देख। पतिसेवा के सामने तपस्या क्या चीज़ है ? मैंने अपने जीवन में अन्य पुरुष अथवा किसी देवता की भी कामना नहीं की। इतना कहकर अनुसूया ने कहा कि मेरे सतबल से यह मृत पुरुष कुष्ठरोगरहित होकर, तरुण होकर और जीवित होकर अपनी स्त्री के साथ सौ वर्ष तक रहे। अनुसूया के इतना कहते ही वह मृत पुरुष जी उठा, तरुण हो गया और कुष्ठरोग से भी छुटकारा पा गया ×। यह देख देवताओं ने आनंदित होकर पुष्पों की वृष्टि की और अनुसूया से बोले कि तूने देवताओं से भी न होने-वाला कार्य किया है, इसलिए वर माँग। देवताओं से अनुसूया ने कहा कि यदि वर देते हो, तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को एक में मिलाकर मुझको पुत्र दीजिये *। देवताओं ने यही वरदान दिया और कुछ दिन के बाद ये तीनों देवता उसके उदर से इस प्रकार पैदा हुए—

सोमा ब्रह्माभवद् विष्णुर्दत्तात्रेयो व्यजायत ।
दुर्वासाः शंकरो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम् ॥

अर्थात् ब्रह्मदेव का सोम, विष्णु का दत्तात्रय और शंकर का दुर्वासा होकर और एक में मिलकर दत्तात्रय नामी पुत्र हुआ। इन्हीं तीनों रूपों से युक्त आजकल दत्तात्रय की मूर्ति बनती है।

इन समस्त कथाओं का इतना ही तात्पर्य है कि देवी से ब्रह्मा, विष्णु और शंकर हुए और ब्रह्मा, विष्णु, तथा शंकर के मिश्रण से दत्तात्रय की उत्पत्ति हुई। अर्थात् दत्तात्रय की उत्पत्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश से हुई और ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पैदा करनेवाली देवी है। अब देखना चाहिए कि, इस दत्तात्रय की इस मिश्रित उत्पत्ति का क्या रहस्य है। हम मिश्र देश के दैवी इतिहास में देखते हैं कि, उसमें भी उपर्युक्त वर्णन ज्यों का त्यों दिया हुआ है।

\+ स्कंधे भर्तारमादाय जगाम मृदुगामिनी । पत्नी स्कन्धे समारूढश्चालयामास कौशिकः ।
पादावमर्षणात् क्रुद्धो मांडव्यस्तमुवाच ह । येनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितः पदा ॥
दशां कष्टामनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः । सूर्योदयेऽवशः प्राणैर्विमोक्ष्यति न संशयः ॥
भास्करावलोकनादेव स विनाशमवाप्स्यति ॥

× न विषादस्त्वया भद्रे कर्तव्यः पश्य मे बलं । पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किं चिरेण ते ॥
यथा भर्तृसमं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् । रूपतः शीलतो बुध्या वाङ्माधुर्यादिभूषणैः ॥
तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा । प्राप्नोतु जीवितं भार्या सहायः शरदां शतम् ॥
यथा भर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतं । तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः ॥
ततो विप्रः समुत्तस्थौ व्याधिमुक्तः पुनर्युवा ॥

* तथान्तु मम पुत्रत्वं ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः । एवमस्त्विति तां देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
प्रोक्ता जग्मुर्यथान्यायमनुमान्य तपस्विनी ॥

हम अभी गत पृष्ठ में लिख आये हैं कि, मिश्रदेश की आदि देवी का नाम इसिस् है। वही इसिस् यहाँ श्री के नाम से प्रसिद्ध है। जिस प्रकार इस देवी से ब्रह्मा, विष्णु और शंकर हुए हैं, उसी तरह मिश्र देश में प्रसिद्ध है कि इसी इसिस् से ऑसिरिस, होरुस और टायफ़ान नामी तीन पुत्र हुए हैं और जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के मेल से दत्तात्रय की उत्पत्ति हुई है, उसी तरह मिश्र देश में ऑसिरिस, होरुस और टायफ़ान के मेल से टॉथ नामी पुतला बना है।

इस टॉथ के विषय में अर्केश्वर नामी प्रसिद्ध प्रवासी लिखता है कि, मिश्रदेश के पेकीन शहर में शहर की दीवार के उत्तर-पश्चिम कोण पर 'महाकाल म्यौ' नामी एक मंदिर है। मंदिर का यह नाम महाकाल नामी मुख्य देवता के कारण पड़ा है। वहाँ महाकाल नामी देव का पुतला है। वहाँ के लोग उसका भजन करते हैं। मन्दिर के एक भाग में मच्छोदरनाथ का १८ फ़ीट ऊँचा पुतला है और दूसरे भाग में दत्तात्रय या दत्ता का पादचिह्न है। इस दत्तात्रय का नाम वहाँ टॉथ है +।

उपर्युक्त वर्णन से पाया जाता है कि दत्तात्रय-सम्बन्धी सारी कथा और दत्तात्रय की मूर्ति का यह विचित्र प्रकार मिश्र देश ही का है और वहीं से चितपावनों द्वारा आया है। क्योंकि दत्तात्रय की पूजा उत्तर हिंदुस्थान में कहीं नहीं होती और न किसी हिन्दू का दत्तात्रय नाम ही होता है। परंतु दत्तात्रय को महाराष्ट्र ही इष्टदेव मानते हैं और उन्हीं के दत्तात्रय आदि नाम भी होते हैं, अतएव उन्हीं से इसका सम्बन्ध है, इसमें सन्देह नहीं।

कुछ लोग कहते हैं कि सम्भव है, दत्तात्रय की कथा और उसकी मूर्तिपूजा भारत से ही वहाँ गई हो, किन्तु इस बात में कुछ भी सत्य नहीं है। प्रथम तो प्राचीन भारतीय आर्यों में मूर्तिपूजा थी ही नहीं फिर दत्तात्रय जैसी विचित्र मूर्ति यहाँ की उपज कैसे हो सकती है? इसलिए वह यहाँ से मिश्र नहीं गई। मिश्र देश में जिस इसिस् और ऑसिरिस आदि देवियों के आधार पर टॉथ बना है, वे शब्द न तो आर्यभाषा के हैं और न मिश्रियों की हेमिटिक भाषा के ही हैं। वे शब्द तो सेमिटिक भाषा के हैं। इसलिए ज्ञात होता है कि मिश्रियों मे दत्तात्रय की मान्यता भारत आर्योंसे नहीं गई। यह सेमिटिकों से मिश्रियों में गई है और मिश्रियों से भारत में आई है। भारतमें भी दक्षिणियों में ही इसका प्रचार है। क्योंकि मिश्रनिवासी इजिप्तवान अर्थात् चितपावन दक्षिणियोंमें ही घुसे हुए हैं, इसलिए दत्तात्रय की समस्त मान्यता चितपावनों की है और उन्हींने इसका इस देश में प्रचार और विस्तार किया है। इसी बात को स्वीकार करते हुए पण्डित सावरकर कहते हैं कि, यह दत्तात्रय की

+ The Myau or temple is at a small distance from the north-west corner of the wall of Pechin and is called Maha--cala--myau from its chief deity Mahacal who is worshiped there and whose statue is on the side of the river and the Myau on the other. There in one part of the Myau, is a guilt statue of Machhodaranath about 18 feet high; in another part is the charanapad or the impression of the feet of Dattatraya or Datta called Toth by the Egyptians.

उत्पत्ति इजिप्ट देश की ही है और वहीं से भारत में आई है ×।

इसलिए यह निश्चय और निर्विवाद है कि चितपावनों ने जिस प्रकार छल से क्षत्रियों का राज्य लिया और जिस प्रकार छल से ग्रंथों में मिश्रण किया, उसी तरह छल से ही उन्होंने अपनी जाति की यह कथा और पूजा भी आर्यों में दाखिल कर दी। यहूदी लोग संसार में छली प्रसिद्ध हैं। ये चितपावन भी यहूदी ही हैं। इसलिए छल करने में इनको सङ्कोच नहीं हो सकता। इनको हम ही छली नहीं कहते, प्रत्युत लो० तिलक के जीवनचरित्र में प्रसिद्ध लेखक नरसिंह चिंतामणि केलकर लिखते हैं कि, 'देशस्थ लोकों में जैसे साधुसंत उत्पन्न हुए, वैसे ही कोंकणस्थों में वीर और नीतिमान उत्पन्न हुए। यदि पूछा जाय कि अँगरेज़ी राज्य में छल करना किसके हिस्सेमें आया होगा, तो कहा जायगा कि कोंकणस्थों के। क्योंकि ज्यू लोगों की भाँति चितपावनों के लिए भी प्रसिद्ध है कि वे छली हैं और इस छल की ही बदौलत उनको वीरता और ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है। इतिहास प्रसिद्ध है कि कोंकणस्थ भट घराना छल से ही देश में घुसा और पेशवाई प्राप्त की +।' इस तरह से इनका छली और प्रपञ्ची होना तथा विदेशी होना सिद्ध है। इनमें विदेशीपन और अनार्यत्व की एक रिवाज अब तक बनी हुई है। पण्डित गावस्कर कहते हैं कि 'विसलामपूर तथा रत्नागिरी के रहनेवाले चितपावनों में अब तक रिवाज हैं कि, श्रावणी (उपाकर्म) विधि में अथवा और किसी दिन साल में एक बार ये लोग जातिभोजन कराते हैं। उस समय आटा की एक गाय बना कर पकाते हैं और उसके पेट में मधु (शहद) भरकर उसकी बलि देते हैं। अपने कुलदेवता को बलि देकर उसके अनेक टुकड़े कर डालते हैं और जब सब लोग भोजन करने के लिए बैठते हैं, तो सबकी पत्तलों में प्रसाद के तौर पर उसका एक एक टुकड़ा परसते हैं। उसके भीतर जो शहद होता है, उसे तीर्थ कहते हैं। यदि यह सत्य है, तो दुःख से कहना पड़ता है कि यह रिवाज इनमें बहुत ही भयङ्कर है।'

यहाँ तक हमने मिश्रनिवासी चितपावनों का शास्त्रविध्वंस दिखलाया और बतलाया कि इनके मिश्रण से, इनकी सोहबत से और इनके सकाश से आर्यों में कैसे कैसे भयङ्कर रिवाज जारी हुए और किस प्रकार शुद्ध आर्य अपवित्र हुए। कौन कह सकता है कि ये अपवित्र

× ऑसिरिस, होरुस व टायफ़ान या इजिप्त लोकांच्या तीन पुरुषांच्या जमा 'टॉथ' नामें पुतळा घडविला, तद्वतच हिन्दू लोकांनी त्या इजिप्त देशस्थ ऑसिरिसादि तीन पुरुषांप्रमाणे घडविलेल्या ब्रह्मा, विष्णु व शिव या तीन पुरुषांचा मिळून हा गुरुदत्त पुतळा घडविला आहे व या इजिप्तदेशस्थ 'टॉथ' प्रमाणेच गुरुदत्ताचा अवडंबर कांही अविचारी हिंदुलोकांत माजलेला आहे. तात्पर्य ब्रह्मा, व शिवजन्य धर्मसंबंधी जो क्रियामार्ग व आचार-विचार त्या सर्वांचें मूळ आफ्रिकास्थ इजिप्शियन लोक हें स्पष्ट होतें.

+ देशस्थ लोकांत साधुसंत निर्माण झाले, तसेच कोकणस्थांत वीर व मुत्सद्दी उत्पन्न झाले. इंग्रजी राज्यांत छळ कोणाच्या विशेष वाटणीस आला असेल, तर तो कोकणस्थांच्या. ज्यू लोकांप्रमाणे चित्पावन जातीवर छळाचा छाप मारलेला आहे; पण या छळामुळेच त्यांच्या हातून वीरश्रीचीं कृत्येंहि झालेलीं असण्याचा सम्भव आहे. ऐतिहासिक काळांत कोकणस्थ भट घराण्याचा छळ झाल्यामुळेच देशावर ते गेले व पेशवेपद पावले. (लो० टिळक यांचें चरित्र, पृ० २.)

आसुरी रिवाज और आचरण आर्य जाति के पतन का कारण नहीं हुए और इन्हीं से आर्य-जाति का पतन नहीं हुआ !

ब्राह्मण बन जानेवाली दो अनार्य जातियों का हाल यहाँ तक लिखकर देखा गया कि उन्होंने किस प्रकार आर्यसाहित्य का सत्यानाश किया है। इन दो जातियों के अतिरिक्त अन्य अनेकों जातियाँ आर्यों में समा गई हैं। मालूम नहीं उन्होंने और क्या क्या मिश्रण किया हो। कुछ काल पूर्व नये नये सम्प्रदाय चलाना, नये नये ग्रन्थ रचना और पुराने ग्रन्थों में प्रक्षेप करने का तो तूफ़ान ही बरपा हो गया था। उस समय जिसके जी में जो कुछ आता था, वह वही लिख मारता था। यही नहीं कि ब्राह्मणों ने ही प्रक्षेप किया है, किन्तु हमने गत प्रकरण में दिखला दिया गया है कि, उपनिषदों में क्षत्रियों की ओर से भी प्रक्षेप हुआ है। यही नहीं प्रत्युत हमको कायस्थों की ओर से भी प्रक्षेप किया हुआ लेख मिला है। महा गरुडपुराण अध्याय ९।२ में लिखा है कि—

चित्रगुप्तपुरं तत्र योजनानां तु विंशतिः।
कायस्थास्तत्र पश्यन्ति पापपुण्ये च सर्वशः॥

अर्थात् चित्रगुप्त का पुर बीस योजन के विस्तार में है, जहाँ सब लोगों के पापपुण्यों को कायस्थ लोग देखते हैं। यह प्रक्षेप न तो ब्राह्मणों का किया हुआ है और न क्षत्रियों का। इस गप में कायस्थों का ही स्वार्थ है, इसलिए यह उन्हीं का किया हुआ है। क्योंकि कायस्थों के स्वार्थ की बदनामी न तो पहिले कम थी न अब कम है। मिताक्षरा में लिखा है कि, कायस्थों को पीट कर प्रजा की रक्षा की जाय +। इससे पाया जाता है कि इन्होंने बहुत बड़ा अत्याचार कर रक्खा था, इसीलिए ऐसा कहा गया है।

जाली ग्रंथों के रचने का एक नमूना हमने खुद देखा है। उड़ीसा में आठगढ़ नामी एक देशी राज्य है। वहाँ के राजा का नाम विश्वनाथ है। राजा साहब संस्कृत में कविता कर लेते हैं। उन्होंने व्यास के नाम से अपने गाँव के महादेव का माहात्म्य वर्णन किया है और एक पुस्तक में छपा भी दिया है। कहने का मतलब यह कि जाली रचनाएँ अब तक हुई हैं और हो रही हैं। पुरानी और मध्यमकालीन जाली रचनाओं की खोज योरप के विद्वानों ने खूब की है। इस प्रकार की जाली रचनाओं के लिए कोलब्रुक कहता है कि मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि जालसाज़ियाँ कभी नहीं होतीं अथवा पूरे या अधूरे बनावटी ग्रंथ नहीं बनाए गए। सर डब्लू–जोंस, ब्लैकवेयर और मैंने प्रक्षेपों को पकड़ा है। इनसे भी बड़ी जाल-साज़ियाँ करने का प्रयत्न किया गया है। उनमें से कुछ तो थोड़े समय के लिए सफल हुईं और अन्त में खुल गईं, पर कुछ तो तुरंत ही पकड़ ली गईं। नियमित जालसाज़ी का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रकाशित हो चुका है, जिसने केप्टन विलफ़ोर्ड को धोखे में डाल दिया था। इसका वर्णन विलफोर्ड ने ही कर दिया है। इस तरह से यद्यपि कुछ प्रयत्न निष्फल हुए हैं, तथापि दूसरे प्रयत्न निस्सन्देह सफल भी हुए हैं। पूर्वी साहित्य के खोज की वृद्धि होने से और समालोचकों के चातुर्य से जाली पुस्तकें और पुस्तकों में मिलाए हुए जाली पृष्ठ पकड़े

+ चारचारणदुर्वृत्य महासाहसआदिभिः।
पीड्यमाना प्रजा रक्षेत् कायस्थैश्च विशेषतः॥

जायँगे, पर मुझको यह शंका नहीं है, कि वेद भी इस प्रकार के निकलेंगे × ।

कहने का मतलब यह कि आसुरी संसर्ग से इस प्रकार की जाली रचनाओं के कारण आर्यजाति हिंदू हो गई और उसमें मनमाने सम्प्रदाय, मनमाने ग्रंथ और मनमाने सिद्धांतों ने हजारों रूपों से विस्तार किया, तथा ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सभी को नीच बना दिया और आर्यजाति का पतन हो गया । इस पतित दशा में ही मुसलमानों की आमद हुई । इनमें से हज़ारों मुसलमान हिंदू हो गए और अनेकों ने अर्ध हिंदू धर्म मुसलमान रूप धारण करके हिंदुओं के रहे सहे विश्वासों और ग्रंथों को नष्ट कर दिया ।

मुसलमान और आर्यशास्त्र ।

जिसको इन बातों के जानने की न तो फुरसत है न ज़रूरत है, उसे नहीं मालूम कि हमारी वास्तविक दशा क्या है, हमारा प्राचीन वैदिक धर्म क्या है और हमारा प्राचीन आर्य आदर्श क्या है । अभी गत पृष्ठों में हमने दो जातियों के द्वारा शास्त्रविध्वंस का वर्णन किया और दिखला दिया है कि किस प्रकार शास्त्रों में आसुरी बातों का प्रक्षेप किया गया है । इन दो जातियों के अतिरिक्त हिंदुओं की अन्य शाखाओं ने भी शास्त्रविध्वंस की हत्या से अपने को पाक नहीं रक्खा । ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रों ने मनमाना साहित्य रचा है और पुराने साहित्य में मिश्रण किया है । सबके सामने देखते देखते ५० वर्ष के अन्दर ही तुलसीकृत रामायण में इतना अधिक क्षेपक घुस गया है कि, असली ग्रंथ पहिले से दूना हो गया है और सात कांड के नौ दश कांड हो गए हैं । तीन सौ वर्ष में एक हिंदी पुस्तक का जब यह हाल है, तो हज़ारों वर्ष की पुरानी संस्कृत की पुस्तकें जिनका सम्बन्ध धर्म, इतिहास और स्वास्थ्य आदि से है और जो आर्यजाति का जीवन हैं, कितनी दूषित की गई होंगी, कौन जान सकता है ? इन हिंदू नामधारी शास्त्रविध्वंसकों के अतिरिक्त मुसलमानों का राज्य इस देश में बहुत दिन तक रहा है । उन्होंने भी इस देश के हिंदुओं में अत्याचारों के साथ इसलाम

× I don't mean to say that forgeries are not sometimes committed; or that books are not counterfeited, in whole or in part. Sir W. Jones and Mr. Blaquiere and myself have detected interpolations. Many greater forgeries have been attempted; some have for a time succeeded and been ultimately discovered; in regard to others detection has immediately overtaken the fraudulent attempt. A conspicuous instance of systematic fabrication by which Captain Wilford was for a time deceived, has been brought to light as has been fully stated by the gentleman. But though some attempts have been abortive, others may doubtless have succeeded.

Some fabricated works, some interpolated pages will be detected by the sagacity of critics in the progress of researches into the learning of the East, but I don't doubt that the Vedas will appear to be of this description.

धर्म के प्रचार का बहुत प्रयत्न किया है। उनका धर्मप्रचार अत्याचार और जुल्म के साथ था। पर उनका जुल्म बहुत प्रचार नहीं कर सका। अलताफ़ हुसेन हाली कहते हैं कि—

वो दिने हुजाज़ी का बेबाक बेड़ा निशाँ जिसका अक़साय आलम में पहुँचा।
न जैहूं में अटका न कुलज़म् में झझका मुक़ाबिल हुआ कोई ख़तरा न जिसका।
किये पै सिपर जिसने सातों समन्दर वो डूबा दहाने में गंगा के आकर।

अर्थात् इसलाम ने तलवार के ज़ोर से सातों समुद्रों को फ़तेह कर लिया, पर वह इसलाम का बेड़ा गंगा के निकास में आकर डूब गया। सच है, इसलाम की तलवार ने जिस देश में प्रवेश किया, उस देश को इसलाम करके ही छोड़ा। काबुल, ईरान, अरब, तुर्क, पोर्तुगाल, स्पेन, मिश्र, अफ़रीक़ा, रूस और चीन तक जहाँ कहीं प्रचार हुआ, बस देश का देश इसलाम में आ गया। किंतु यह एक भारतवर्ष ही है, जहाँ सैकड़ों वर्षों तक लगातार तलवार चली, पर सिवा थोड़ी सी नीच क़ौमों के भले आदमी अधिक मुसलमान नहीं हुए। जब जुल्म से काम न चला, तो वही पुराना सिद्धान्त काम में लाया गया। अर्थात् कुछ बातें इधरउधर की लेकर नये नये रूप से मुसलमानों ने हिंदू साहित्य को गन्दा करना शुरू किया और खुद उनके गुरु बनकर उनमें अपने विचार स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। यहाँ हम वही सब बातें सारांशरूप से दिखलाने का यत्न करते हैं। हम यह नहीं लिखना चाहते कि मुसलमान ज़ालिमों ने अपने शासनकाल में इस देश के निवासियों के साथ क्या क्या व्यवहार किया। हम तो यहाँ केवल यह दिखलाना चाहते हैं कि, उनके प्रभाव से यहाँ का संस्कृत साहित्य किस प्रकार नष्ट हुआ और वैदिक धर्म में कितना धक्का पहुँचा। सभी जानते हैं कि संस्कृत के लाखों ग्रंथ वर्षों तक मुसलमानों के हम्मामों में जलते रहे हैं और उदन्तापुरी आदि के नौ नौ मंज़िल ऊँचे पुस्तकालय बात की बात में भस्म कर दिये गये हैं, पर यह समग्र वृत्तान्त लिखकर हम ग्रंथ को बढ़ाना नहीं चाहते। क्योंकि पाठकों से कुछ छिपा नहीं है और न सब कागज़पत्र और इतिहास कहीं चला ही गया है। इसलिए हम यहाँ केवल यही दिखलाना चाहते हैं कि, मुसलमान जाति ने जब अपने कठोर शासन से भी हिंदुधर्म का नाश न कर पाया, तो उसने अपने सिद्धान्त संस्कृत भाषा में लिखवाना शुरू किया और अपना एक दल अपने से अलग करके हिंदुओं का गुरु बनने के लिए क़ायम किया। एक तरफ़ तो मुसलमान अपने प्रचार के लिए इस तरह साहित्य नष्ट करने लगे और दूसरी तरफ़ हिंदुओं ने मुसलमानी अत्याचार से पीड़ित होकर उनसे बचने के लिए खुद भी नवीन नवीन रचना करके शास्त्रों में मिश्रण करना शुरू कर दिया। इस तरह से इन दो तीन मार्गों के द्वारा हिंदुओं का साहित्य बिगड़ने लगा। यहाँ हम पहिले नवीन रचना के प्रमाण उपस्थित करते हैं। नवीन रचना में अल्लोपनिषद् विशेष उल्लेखनीय है। क्योंकि यह सभी जानते हैं कि अल्लोपनिषद् मुसलमानों की ही रचना है। यहाँ हम उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं—

अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते।
इल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्ददुः।
हयामित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः ॥ १ ॥

होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महा सुरिन्द्राः ।
अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम् ॥२॥
अल्लो रसूल महामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् ॥३॥
आदल्ला बूक मेककम् ।
अल्लबूक निखादकम् ॥४॥
अलो यज्ञेन हुत हुत्वा ।
अल्ला सूर्य्यचन्द्रसर्वनक्षत्राः ॥५॥
अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परममन्तरिक्षा ॥६॥
अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम् ॥७॥
इल्लांकबर इल्लांकबर इल्लां इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥८॥
ओम् अल्ला इल्लल्ला अनादि स्वरूपाय अथर्वणा श्यामा हुह्नी जनान
पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट ॥९॥
असुरसंहारिणी हूं ह्रीं अल्लो रसूल महमदरकबरस्य
अल्लो अल्लाम् इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥१०॥॥ इति अल्लोपनिषत् ॥

इसको पढ़कर कौन कह सकता है कि, यह मुसलमानों की रचना नहीं है अथवा यह बिना उनकी प्रेरणा के बना है ? इसके अतिरिक्त यूनानी वैद्यक को भी संस्कृत में लिखवाकर हिंदू जनता में मुसलमानी हिकमत के प्रचार का उद्योग किया गया है। यहाँ हम उसका भी एक नमूना दिखलाते हैं। वैद्यक का एक 'अभिनव निघण्टु' नामी ग्रंथ है। यह ग्रंथ बंबई में पं० दत्ताराम रामनारायण चौबे के तत्त्वविवेक प्रेस में छपा है इसके श्लोक इस प्रकार हैं—

दोषः खिल्त इति प्रोक्तः स चतुर्द्धा निरूप्यते ॥
सौदासफरा तथा बलग़म् तुरीयं खून उच्यते ॥
तबियत् कैफ़ियत कुव्वत खामियश्च चतुष्टयम् ।
निखिलं द्रव्यसंज्ञेयमल्पं किंवाप्यनल्पकम् ॥
अपरामुसहिलनाम्नी इसहालरेचनं विशः ।
नौमनिद्रा समाख्यात मुनक्कम तद्विधायनी ॥
खुशी फ़र्हत् प्रसाद; स्यान्मनसौदेहपाटवम् ।
उभयं विदधात्येषा मुफ़र्रह सा प्रकीर्तिता ॥
दिमाग़ दिल जिरं माश्रा एतदंगचतुष्टयम् ।
आज़ाय रईस इत्युक्तं श्रेष्ठं देहे शरीरिणाम् ॥

यहाँ इनके अर्थ करने की आवश्यकता नहीं है। इनके शब्दों से ही ज्ञात हो रहा है कि, इनमें यूनानी हिकमत की बातें भरी हुई हैं और इनके प्रचलित करनेवाले मुसलमान हैं। जिस तरह वैद्यक में हिकमत का मिश्रण किया गया है, उसी तरह ज्योतिष् में भी इसलामी तत्त्व दाख़िल करने का प्रयत्न हुआ है। खोज करनेवाले जानते हैं कि फलित ज्योतिष् का प्रचार विदेशी है। वह इस देश में यूनान से ही आया है। पारसियों और मुसलमानों का उस पर अधिक विश्वास है। लखनऊ के नवाब तो विना ज्योतिष् का मुहूर्त दिखलाए छोटे

छोटे काम भी नहीं करते थे—झाड़ू और पेशाब को भी नहीं जाते थे। उसी फलित को मुसलमानी भाषा में संस्कृत मिलाकर किस प्रकार हिंदुओं में दाखिल किया गया है, उसका भी एक नमूना यहाँ हम दिखलाते हैं। नवाब खानखान की 'खेटकौतुक' नामी एक छोटीसी पुस्तिका है। उसको पं० रामरत्न वाजपेयी ने लखनऊ में छापा है। उसमें लिखा है कि—

यदा माहताबो भवेत्मालखाने मिरीखोथवा मुश्तरी बख्तखाने।
अतारिद्विलग्ने भवेद्बख्श पूर्णं भवेद्दानदारोथवा बादशाहः॥ १॥
भवेद्वाफताबो यदा षष्ठखाने पुनर्दैत्यपीरोथ केन्द्रे गुरुर्वा।
सुजातः शुतुर्फलताढ्यो हयाढ्यो जरी जर्जरावश्यदातः चिरायुः॥ २॥
यदा चश्मखारा भवेद्दोस्तखाने ततो मुश्तरी दोस्तखाने विलग्नात्।
अतारिद्धनस्थो बृहत्माहिर्बा स्यात् बृहत् सूर्य मखमल खजानाश्वपूर्णः॥ ३॥
तृतीये भवेद्वाखताबस्य पुत्रो यदा महाताबस्य पुत्रो विलग्ने।
भवेन्मुश्तरी केन्द्रखाने नराणां बृहत साहिबी तस्य तालेरुजु स्यात्॥ ४॥
यदा मुश्तरी पंजखाने मिरीखो यदा बख्तखाने रिपौ आफताबः।
नरो बावकूफो भवत्कुंजरेशो बृहद्रोसनोवाहिनी वारणाढ्यः॥ ५॥
अतारद् विलग्ने सुख माहताबो गुरुस्त्वपर्खाने तमो लाभखाने।
जहानस्य धूरी भवन्नेकबख्तः खजानागजाढ्यो मुलुक् साहिबी स्यात्॥ ६॥
यदा देवपीरो भवेद्बख्तखाने पुनर्दैत्यपीरोथवा स्वपरखाने।
आतारिद्विलग्ने तृतीये मिरीखः शनिर्लाभखाने नरः काबिलः स्यात्॥ ७॥
महल माहताबो व्यये अफताबो यदा मश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे।
भवेन्मानवो देवतेजस्कराढ्या बृहत् साहिबो बख्तखूबी कमालः॥ ८॥
खजानागजाढ्या भवेल्लश्कराढ्य महानप्रियो मुश्तरी जायखाने।
मिरीखोथ लाभे बुधः पंजखाने शनिः शत्रुखाने नरः काबिलः स्यात्॥ ९॥
क़मर केन्द्रखाने शनिः शत्रुखान त्रिकोणेथवा मुश्तरी चश्मखोरी।
स जातो नरो साबिरः सद्गुणज्ञो भवेत् शायरो मालदारोथ खूबी॥ १०॥

इन श्लोकों का भी अर्थ करने की आवश्यकता नहीं है। इनमें आये हुए फ़ारसी शब्दों से ही ज्ञात हो रहा है कि, इनमें मुसलमानों के नजूम का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इस्लाम प्रचार के लिए उर्दूमिश्रित अन्य श्लोक भी ऐसे ऐसे बनाये गये हैं, जिनसे उनके अल्लाह की भक्ति की जा सके। यहाँ हम नमूने के लिए इस तरह का भी एक श्लोक लिखते हैं—

हेच फिक्रमत्कर्तव्यं कर्तव्यं ज़िक्रे ख़ुदा।
खुदाताला प्रसादेन सर्वकार्यं फ़तह भवेत्।

इस तरह से मुसलमानों ने संस्कृत भाषा के द्वारा अपने भाव, अपने विचार और अपने विश्वासों को हमारे भावों, विचारों और विश्वासों में भरा है और हमारी संस्कृति में क्षोभ पैदा कर दिया है। इसी तरह उनके दूसरे दल ने गुरु बनकर और देशी भाषा में नये नये ग्रन्थ रचकर भी हिन्दुओं के विश्वासों में बहुत सा अन्तर पैदा कर दिया है। यह

मुसलमानों का दल जो हिंदुओं का गुरु बनने चला था, वंशपरंपरा से अब तक मौजूद है। बंबईनिवासी सर आग़ाख़ाँ उसी गद्दी के वर्तमान आचार्य हैं और इस समय भी कई लाख हिन्दुओं के गुरु हैं। गुजरात, सिंध और पंजाब में लाखों आदमी उनके चेले हैं और हर साल कई लाख रुपया दशांश के नाम से उनके पास पहुँचाते हैं। उनके ग्रन्थ सिन्धी, पंजाबी और गुजराती भाषा की एक मिश्रित भाषा में लिखे गये हैं। उन ग्रंथों में लिखा है कि, अथर्ववेद से हमारा धर्म चला है। उन्होंने इस अथर्ववेद का सिलसिला आगे चलकर कुरान से जोड़ दिया है। इसी तरह उस आदि मुसलमान को नकली अवतार माना गया है, जिसकी गद्दी पर इस समय सर आग़ाख़ाँ साहब विराजमान हैं। इनका सिलसिला किसी तरह हज़रत मुहम्मद से भी जा मिलाया गया है। इस धर्म में गाय खाना और पालना दोनों लिखा है। पाँच छः साल से सर आग़ाख़ाँ ने आज्ञा दे दी है कि अब हमारे सब चेले खुलासा अपने नाम मुसलमानी ढंग के रक्खें और हिंदुओं से पृथक् हो जायँ। कहते हैं कि हिंदुओं की एक बहुत बड़ी जमात जिसमें लाखों मनुष्यों की संख्या है, अब हिंदुओं के हाथ से निकलनेवाली है। यहाँ हम थोड़ा सा इस आग़ाख़ानी धर्म का भी इतिहास और सिद्धांत लिखते हैं।

मुसलमानी धर्म के संस्थापक और कुरानमजीद के प्रचारक हज़रत मुहम्मद के दामाद हज़रत अली से शाहज़ादा ज़ाफर सादिक़ छठा इमाम हुआ। इसी से ज़ाफ़री फ़िरक़ा चला, जिसको शिया कहते हैं। इन ज़ाफर सादिक़ के इस्माईल और मूसाक़ाज़म दो लड़के थे। इस्माइली धर्म इन्हीं इस्माईल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'हिस्ट्री अफ़ दी एर्माशन्स में लिखा है कि, इस्माइलियों ने अपना राज्य इजिप्ट (मिश्र) में स्थापित किया और वहाँ बहुत दिन तक राज्य किया। उसमें मुस्तनसर नामी एक खलीफ़ा हुआ, जिसने अपने बड़े लड़के मुस्तफ़ा अल्दीन अल्लानिज़ार को वारिस बनाया। इसी निज़ार के नाम से निज़ारी फ़िरक़ा हुआ। बहुत दिन के बाद इन निज़ारी लोगों ने अपनी गद्दी अलमूत में क़ायम की। यह अलमूत एक पहाड़ी क़िला है, जो कास्पियन समुद्र के दक्षिण और ईरान के उत्तर में स्थित है। इसी को इनके ग्रंथों में 'अलमूत गढ़' के नाम से लिखा है। आज से कोई ७५० वर्ष पूर्व यहीं से इन लोगों ने अपने उपदेशकों को हिंदोस्तान में मुसलमानी धर्म के फैलाने के लिए भेजा। पहिले ये लोग काश्मीर में आये और वहाँ से लाहौर और लाहौर से सिंध के कोटड़ा ग्राम में आकर बसे। इनके ग्रंथों में लिखा है कि—

पीर सदरदीन पंथज किया जाहर खाना मकान।
पेलो खानो आवी कर्यो 'कोटड़ा' ग्राम निधान॥
पीर सदरदीन ज़ाहर थया हिंदू कर्या मुसलमान।
लोवाणा फिर खोजा कर्या तेने आप्यो साचो ईमान॥

अर्थात् पीर सदरदीन ने सबसे पहिले कोटड़ा ग्राम में मुक़ाम किया और हिंदुओं को मुसलमान किया, तथा वहीं पर लोहाणों को खोजा बनाया। इन आनेवाले इसलाम प्रचारकों की टोली के उस समय पीर सदरदीन गुरु थे। उन पीर सदरदीन ने अपने तीन नाम रक्खे थे। सदरदीन, सहदेव और हरिचंद। पीर सदरदीन की गद्दी पर आजकल बंबईनिवासी हिज़ हाईनस सर आग़ाख़ाँ विराजमान हैं।

इन आगाखानी गुरुओं के पूर्वज बड़े ही चालाक थे। इन्होंने अपनी चालाकी से दूर दूर तक अपने धर्म का प्रचार किया। इन्होंने मिश्रियों में, ईसाइयों में और दूसरे फ़िर्क़ों में बड़ी ही चातुरी से प्रचार किया। इनकी प्रचारसंबंधी चालाकियों का पता खोजों के एक मुक़दमे का फ़ैसला देखने से लगता है। यह फ़ैसला सन् १८६६ ईस्वी में हाईकोर्ट के जजों ने लिखा है। इसमें लिखा है कि जब किसी शिया को इमामी इस्माईली धर्म में लाना होता है, तो इस्माइली उपदेशक पहिले शिया धर्म की शिक्षा को दिलोजान से स्वीकार करता है, अली और उसके पुत्र पर हुए जुल्मों पर दुःख प्रकाश करता है, हुसेन के शहीद होने पर दया दिखलाता है और उनके कुटुम्ब के साथ कुछ सहायता करने के लिए विचार दर्शाता है तथा बनी, उमैया और अब्बासिया के लिए तिरस्कार प्रकट करता है। इस तरह से अपने लिए रास्ता तैयार करता है और फिर धीरे से इशारह करता है कि शिया धर्म जानने और पालने की अपेक्षा इस्माइली धर्म के गुप्त भेदों को जानना चाहिये। इसी तरह जब किसी यहूदी को अपने धर्म में लाना होता है, तो इनका उपदेशक खिस्ती और मुसलमानी धर्म के विरुद्ध बोलता है और जिसको अपने धर्म में लाना होता है, उसके साथ मिलकर कहता है कि यह विश्वास रखना चाहिए कि मसीहा आनेवाले हैं। परंतु धीरे धीरे उसके मन में यह बात जमाता है कि जो मसीहा आनेवाला है, वह अलीके सिवा और दूसरा कोई नहीं है। इसी तरह जब किसी ईसाई को अपने धर्म में लाना होता है, तो यहूदियों की हठ और मुसलमानों की अज्ञानता का वर्णन करता है और ईसाई धर्म के मुख्य अंशों को मान देने का ढंग रचता है। किंतु धीरे धीरे ऐसा इशारह भी करता है कि, यह सब ठीक है, पर इसके भीतर बड़ा भेद है और वह भेद प्रकट करनेवाला एकमात्र इस्माइली धर्म ही है। फिर उसको ऐसी सूचना करता है कि ईसाइयों ने पेराक्लीट (Paraclete = The Holy Ghost or Spirit) की तालीम का अर्थ उलट दिया है। मतलब यह कि ये लोग अपने धर्म के विचार गुप्त रखते हैं और जिसको अपने धर्म में लाना होता है, उसके धर्म का एक बड़ा भाग खुद कुबूल कर लेते हैं।

इसी ढंग से शिक्षा देने के लिये इन्होंने मिश्र में एक विद्यालय भी खोला था। उस विद्यालय की वार्षिक आमदनी २५७००० डयूकेट थी ×। उस विद्यालय में धर्मशिक्षा के नौ दर्जे थे और शिक्षा का क्रम यह था।

प्रथम श्रेणी—शिक्षक के वचनों पर विश्वास रखना। धर्म पर भरोसा रखने के लिए प्रेरणा करना। धर्म के गुप्त भेदों में बाधा न डालने और उनमें श्रद्धा रखने के लिये क़सम खाना। धर्म और बुद्धिवाद में जहाँ अन्तर आवे, वहाँ उलटी सीधी बातें बनाकर जिज्ञासु को संदेह में डालना। इन समस्त बातों को काम में लाने के लिये कोई क़सर बाक़ी न रखना।

द्वितीय श्रेणी—परमेश्वर के बनाये हुए इमाम जो विद्याप्रचार के मूल हैं, उनकी पहिचान कराना, उनकी बड़ाई करना और उन पर विश्वास पक्का कराना।

तीसरी श्रेणी—इमामों पर विश्वास हो जाने पर उनकी संख्या के विषय में बातचीत करना और कहना कि, इमामों की संख्या सात ही थी। क्योंकि सात की संख्या पवित्र

× एक डयूकेट बारह रुपये के बराबर होता है।

होती है । परमेश्वर ने जिस प्रकार सात की पवित्रता को ध्यान में रखकर सात दुनिया, सात आसमान, सात दरिया, सात ग्रह, सात रंग, सात स्वर और सात धातुओं को बनाया है, उसी प्रकार प्राणियों में श्रेष्ठ सात ही इमामों को भेजा है । इस के बाद सात इमामों के नाम अली, हसन, हुसैन, अला जैनलाबदीन, मुहम्मद बाक़र, ज़ाफ़रसादिक़ और इस्माइल बताना + ।

चौथी श्रेणी—पहिले यह सिखलाना कि संसार के आरम्भ के बाद ईश्वरी क़ायदों का प्रचार करनेवाले परमेश्वर की ओर से सात पैग़म्बर बोलनेवाले—लेक्चरर्स हुए । उन्होंने खुदा की आज्ञा से अपना मत फैलाया । इसके बाद यह सिखलाना कि उन सातों के साथ बिना बोलनेवाले भी सात थे, जो उन बोलनेवालों के आचार्य की भांति प्रतीत होते थे । पहिले सातों को सूस कहते थे । इन सातों के नाम आदम, नूह, इब्राहीम, मूसा, ईसा, महम्मद और ज़ाफ़र का लड़का इस्माइल हैं । बिना बोलनेवाले उनके सात मददगारों के नाम—सेथ, सेम, इब्राहीम का लड़का इस्माईल, आइरन, सीमियन, अली और इस्माइल का लड़का मुहम्मद हैं ।

पाँचवी श्रेणी—जिज्ञासु को खुली रीति से इमान आ जाय, इसलिए प्रथम से ही ऐसा कहना कि हर एक गूँगे पैग़म्बर के साथ बारह बारह मददगार थे । दलील यह देना की सात के बाद बारह का ही अंक श्रेष्ठ है । क्योंकि राशियाँ बारह हैं और अँगूठे को छोड़कर चारों उँगलियों के पौर भी बारह ही हैं । बारह इमामों के बाद इस्माइली धर्म के सिद्धांत सिखलाना ।

छठी श्रेणी—इस श्रेणी में अपने नवीन धर्म के क़ायदे थोड़े सिखलाना और तत्त्वज्ञान के नियम अधिक पढ़ाना । इस दर्जे में प्लेटो, आरिस्टॉटल, पैथागोरस के सिद्धांतों का प्रमाण स्वीकार करना ।

सातवीं श्रेणी—सातवीं श्रेणी में इस्माइली धर्म के गुप्त सिद्धांतों के सीखने का अवसर देना और धर्म की वास्तविक आज्ञाओं को समझाना ।

आठवीं श्रेणी—सभी पैग़म्बरों ने अपने से पूर्व पैग़म्बरों की बात को काटकर नेस्तनाबूद कर दिया है, इसलिए इस श्रेणी में इस्माइली धर्म की इस कमज़ोरी को रफ़ा करने के लिए स्वर्ग—नर्क का वर्णन करके जिज्ञासु के मन को भयभीत कर देना।

नवीं श्रेणी—इस श्रेणी में अपना पूरा अभीष्ट प्रकट रूप से सिखला देना ।

खोजों के मुक़दमे में इनके धर्म-प्रचार का जो ढंग जजों ने वर्णन किया है, वही तरीक़ा इस विद्यालय की इस शिक्षाप्रणाली में भी पाया जाता है और इनका वही ढंग हम यहाँ भारत में भी देख रहे हैं । इन्होंने इस्लाम धर्म के प्रचार करने के लिए जो ग्रंथरचना की है और हिंदू बनकर जिस प्रकार हिंदुओं को मुसलमान बनाने का प्रपञ्च किया है, उसका हम यहाँ थोड़ा सा नमूना दिखाते हैं । इनके एक ग्रंथ में आग़ाख़ान आदि गुरुओं के लिए मुहम्मदशाह ने लिखा है कि—

जीरे कृष्ण पहेरतां पीतांबर धोती । जीरे आज कलि में कभी ने टोपी ॥
जीरे कृष्ण चालतां टिलडी काढी । जीरे आज कलि में बढ़ाई डाढी ।

+ इमामी लोग सात के स्थान में बारह इमाम मानते हैं ।

अर्थात् जहाँ कृष्ण पीतांबर पहिनते थे, वहाँ आज कलियुग में गुरुजी टोपी पहिनते हैं और जहाँ कृष्ण टिल्ड़ी सँवारते थे, वहाँ आज कलियुग में गुरुजी डाढ़ी रखते हैं। इसी तरह हज़रत आदम और हज़रत मुहम्मद के लिए लिखा है कि—

जीरे भाई रे आज कल्युग माँ ईश्वर आदम नाम भणाया
गुरु ब्रह्मा ने रची मुहम्मद कहाव्या हो जीरे भाई
जीरे भाई रे पुरुख उत्तम विष्णुजी अलीरूप नाम भणाया
ते तो नाम रखी सरे धायाँ हो जीरे भाई।

अर्थात् कलियुग में परमेश्वर ने अपना नाम आदम रक्खा, ब्रह्मा मुहम्मद कहलाये और विष्णु अली नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त पीर सदरदीन को हिंदुओं का दशवां अवतार बताया है। एक पद्य में लिखा है कि—

कलजुगे मधे अनंत क्रोडी पीर सहन्शायें वर आलिया।
अवतार दशमो दिलमां धरी घट कलशरूपे सही थापिया।

अर्थात् कलियुग में दशवाँ अवतार पीर सदरदीन ही हैं, जो घट, कलश आदि रखवाते हैं। इसके आगे फिर लिखा है कि—

यजी अलख पुरख शाजी वेजो दातार
अलख पुरख शासरणी सतार
ओवो श्री इसलामशा दशमो अवतार।

अर्थात् ये दशवें अवतार और इसलाम के बादशाह पीर सदरदीन ही अलखपुरुष हैं। इसके आगे पश्चिम दिशा की प्रशंसा में लिखा है कि—

कृता जुगे द्वार उत्तर मुखे हुआ त्रेता में मुख पूर्व रचायां।
द्वापर दखण आज कलि पच्छिमे मेहदीशा नाम भणायां।

अर्थात् सत्ययुग में उत्तर मुख का द्वार, त्रेता में पूर्व मुख का, द्वापर मे दक्षिण मुख का और आज कलियुग में पश्चिम का द्वार हुआ, जहाँ मेहदीशाह हुए। इसके आगे अपने घट पाट का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

आज कलजुग मधे साहेब नुं एक रूप
पच्छम दिशा वार क्रोडी सुं पीर सदरदीन
घट पाट स्थापतां, माटीना घट माटीना पाट,
अजा जाग करतवा। अजानु मूल ते सेजादान देतवा।
एशो फलेथी वार क्रोडी सुं पीर सदरदीन सीजंता।
अमीर अमरापुरी पोंचता।

अर्थात् आज कलियुग में साहब का एक ही रूप है । पश्चिम दिशा में माटी का घट और माटी का पाट स्थापित करके अमीर उमग सब पीर सदरदीन की सेवा करके अमारपुरी को जाते हैं । इसके आगे दशों अवतारों का वर्णन इस प्रकार है कि—

मछ कोरम वाराह भणा पाँई
नरसिंह रूपे स्वामीजी विष्णु भणो
वामन फरसराम सोई अवतर्यो
श्रीरामें लंकागढ़ ग्रहियो
कानजी बुध दखण अवतर्यो
अढार खुणी शानर देर्यो
पाछमें पौत्र निकलंकी नारायण
घेलम देश में शाजो स्थान रच्यो
कोडी पंज, सत, नव, चारों अनत ही नारींधो
श्री इसलामशा जो नाव भणांया

अर्थात् विष्णु ने मच्छ, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम आदि अवतार धारण किये । रामचन्द्र ने लङ्का में चढ़ाई की । श्रीकृष्ण और बुद्ध भी हुए । इनके बाद सबसे पीछे घेलमदेश में निष्कलंकी नारायण ने अवतार धारण किया । वही श्री इसलामशाह पीर सदरदीन हैं । इसके आगे मुसल्मानी धर्म में सबको लाने के लिए लिखा है कि—

चीला छोडो न दीन का धांचा मत खाव
सुनो बटाऊ बाधरे मत भूल न जाव ।
सांचा दीन रसूल का सो तमे सही करिजाणों
जो कोई आवे दीन में उनको दीन में आणों ।

अर्थात् हे मुसाफ़िर ! सुन । भूलना नहीं, धोखा मत खाना और दीन की डोर मत छोड़ना, क्योंकि रसूल का ही दीन सच्चा है । इसलिए तू उसे सच्चा समझ और जो दूसरे लोग आवें, उनको उस दीन में ला । इसके आगे उस दीन का वर्णन करते हुए पीर साहब खुद अपने प्रचारकों को गुप्त बात का उपदेश करते हैं कि—

अली थकी बहु पेनज चाल्यां सो सतगुर नूरे पाया
साले दीन पुरा कहिये हुआ सुदीन रहेमान
शाह शम्स केरो दिन पिछाणो चोदिश तेणे पाय
सूरज अगामी जोत देखाडी नर सोई अवतार
करणी कारण खाल उतारी प्रतक्ष ये परमाण्या
मुआ जीवता ते नर करिया करणी विना नव होय
नशीरदीन नूरज पाया हुआ सुदीन रहेमान
हिन्दू केरी पूजा करता किन्ने न पाया भेद
चरित्र हिन्दू अन्दर मुसलमान कोई नव तेने जाणे ।

राम राम काया नव राखे रातियाँ करे जु जाग
नशीरदीन एवा बुजर्ग कहिये कई एक हिंदू ने तार्या
जिस्की आल पीर साहबदीन हुआ हुआ सुदीन रहमान
साहबदीन गरीबी वेशे फकीरी पुरी राखी
सफल तेणे दशोंद कीधी पाया दीन रहेमान
पीर सदरदीन बुजरग कहिये बार कोडी ना धार्या
कलजुग मां तेणे जिवड़ा तार्या जेण साची दशोंद कीधी
हमन कबीरदीन गरीब बंदा होता साहबजी के चरणें
अनन्त कोडी ना गुरुजी आव्या करवा ऊनां काम ।

(पीर सदरदीन कृत अनतज्ञान)

इसमें उन्होंने सालेदीन का प्रभाव, शम्सतबरेजी का तपोबल और नशीरदीन का प्रताप वर्णन करके इस्लामधर्म के प्रचार की यह युक्ति बतलाई है कि ज़ाहिर में हिंदूरूप से और अंतःकरण में मुसलमान रहकर प्रचार करना चाहिये और शिष्यसम्प्रदाय से अशौंध अर्थात् आमदनी का दशांश वसूल करना चाहिये । इस प्रकार से मुसलमानों के इस दल ने जो हिंदुओं का गुरु बनकर उनका धन और धर्म लेने आया था, इस प्रकार जाली ग्रंथों की रचना से लाखों हिंदुओं को पतित किया है। जिस प्रकार के ये इस्मइली प्रचारक थे, उसी ढंग का प्रचारक कबीर भी था। वह भी हिंदुमुसलमानों के बीच में एक विचित्र धर्म क़ायम करके हिंदुओं में से अपने चेले छीन लेने का प्रयास करता था। वह कुछ अंश सफल भी हुआ था। जितने कबीरपंथी हैं यदि वे कट्टर हैं, तो बजाय अभिवाद के गाड़ना अधिक पसंद करते हैं और वेदों तथा ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं। इस बात को गुरु नानक ने ताड़ लिया था। गुरु नानक पर कबीर का जादू नहीं चला। वे कबीरपंथ से सचेत रहे और अलग एक ऐसा पंथ बना सके जो ठीक मुसलमानों का विरोधी है। पर दुःख से कहना पड़ता है कि कभी कभी सिक्ख कह देते हैं कि हम हिंदू नहीं हैं।

जिस प्रकार कबीर साहब गुरु बन गये थे, उसी तरह अकबर बादशाह भी गुरु बनना चाहता था। उसने यह प्रसिद्ध कर दिया था कि, मैं पूर्वजन्म का हिंदू हूँ और मेरा नाम मुकुन्द ब्रह्मचारी था। उसने मुकुंद ब्रह्मचारी होने की पुष्टि में जो श्लोक बनवाया था, वह इस प्रकार है—

वसुरन्ध्रबाणचन्द्रे तीर्थराजप्रयागे । तपसि बहुलपक्षे द्वादशीपूर्वयामे ॥
नखशिखतनुहोमे सर्वभूम्याधिपत्ये । सकलदुरितहारी ब्रह्मचारी मुकुंदः ॥

अर्थात् संवत् १५९८ की फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को प्रातःकाल पृथिवी का संपूर्ण राज्य प्राप्त करने के लिए मुकुंद ब्रह्मचारी ने अपना शरीर नख से शिखा तक होम कर दिया। अकबर मुकुंद ब्रह्मचारी बनकर अपना हिंदूरूप दिखलाना चाहता था। वह कभी कभी यज्ञोपवीत भी पहनता था और डाढ़ी निकाल डालता था। यह सब इसीलिए कि हिंदू उसके चक्कर में आ जायँ। अकबर अपने समय के बड़े बड़े लोगों को ऐसी ऐसी बातें सुनाकर अपने क़ाबू में लाता था। उसकी ये चालें बहुत अंशों में हिंदुओं पर असर कर गई थीं। वह उनके साथ शादी विवाह का सम्बंध खुले आम करना चाहता था। इतना

ही नहीं, प्रत्युत उसने हिंदुओं को एक साथ ही मुसलमान बनाने का बहुत बड़ा आयोजन किया था। उसने फ़तेहपूर सीकरी में एक इबादतख़ाना बनवाया था, जहाँ पर भारतवर्ष के समस्त सम्प्रदायों के आचार्य एकत्रित होते थे। इसमें पारसियों के दस्तूर मेहरजी राना नोसारी से बुलाये गये थे, अब्बुलफ़ज़ल के कहने से उनके लिए एक आग्यारी भी बनवाई गई थी और उनको दो सौ बीघा ज़मीन भी दी गई थी। इसी तरह पादरी Rodolfo Aquavivo भी इस इबादतख़ाने में रहते थे। इनके अतिरिक्त हरिविजय सूरि, विजयसेन सूरि, चन्द्रसूरी आदि जैन और बौद्ध साधु भी वहाँ रहते थे। इनके सबके जमा करने का यही कारण था कि, कोई ऐसी सूरत निकल आवे कि वे समस्त हिंदू जातियाँ मुसलमान हो जावें। हमारे इस आरोप में यह प्रबल प्रमाण है कि अकबर ने जो नवीन धर्म बनाया था, उसका नाम दीन इलाही था और जहाँ इस धर्म की चरचा होती थी, उस स्थान का नाम इबादतख़ाना था। ये दोनों नाम इसलाम के ही अनुकूल हैं, दूसरों के नहीं और इनकी तहों में इसलाम ही झलकता है, अन्य नहीं।

ये मुसलमानों के गुरु बनने के नमूने हैं। इन रचनाओं, इन युक्तियों और गुरुओं की इन तरीक़ों से हिंदुओं के विश्वासों में और उनके व्यवहारों में क्या क्या फेरफार हुआ और इनके प्रभाव, दबाव और अत्याचारों से बचने के लिए हिंदुओं ने स्वयं अपने विचारों और पुस्तकों में क्या क्या फेरफार किया, इसकी याद आते ही रोमांच होता है। अष्टवर्षा आदि श्लोकों की रचना करके बाल–विवाह का जारी करना, सुवर का मांसाहार स्वीकार करना, पुत्री–हत्या का प्रचार करना और पर्दा–प्रथा का जारी करना क्या बिलकुल ही इस्लामी अत्याचारों के ही कारण नहीं स्वीकार किया गया ? कौन कह सकता है कि हिंदुओं को इस्लाम ही के कारण ये अनार्य सिद्धांत नहीं स्वीकार करने पड़े ? कोई भी विचारवान् हमारी इस बात का यही उत्तर देगा कि, मुसलमानों ने स्वयं और हिंदुओं ने विवश होकर आर्य–साहित्य और आर्य–संस्कृति का नाश किया है, तथा आर्य–साहित्य और आर्य–संस्कृति के नष्ट होने ही से हिंदुओं का पतन हुआ है।

ईसाई और आर्यशास्त्र।

चौथी योरपनिवासिनी ईसाई जाति है, जिसने भारत में आकर आर्यों के रहे सहे विश्वासों को बदलने और वैदिक साहित्य के द्वारा अपने सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए महान् प्रयत्न किया है। यद्यपि ईसाई जाति ने इस देश को बहुत बड़ी हानि पहुँचाई है, परन्तु हम यहाँ वह सब नहीं लिखना चाहते। हम यहाँ यह नहीं लिखना चाहते कि, ईसाइयों के शासनद्वारा हिंदुओं को क्या नफ़ा और नुक़सान हुआ। हम यह भी नहीं लिखना चाहते कि इस देश में आने के साथ ही वास्को–डि–गामा ने अपने आश्रयदाता कलिकट के राजा के साथ कैसी बेईमानी की। हम यह भी नहीं लिखना चाहते कि पुर्तुगाल के पादरियों ने गोवा में माबापविहीन लड़कों को किस ज़ालिमाना तरीक़े से क्रिश्चियन बनाया और हम यहाँ यह भी नहीं लिखना चाहते कि किस प्रकार यहाँ के कारीगरों के अँगूठे काट काट–कर इन ईसाइयों ने यहाँ का व्यापार नष्ट किया और इस तपस्वी देश को विलासी बनाया। क्योंकि सभी जानते हैं कि, भारतवासी इनके कारण भूख और अपमान से शारीरिक तथा मानसिक बल खो चुके हैं। अतः हम यहाँ केवल उतना ही भाग लिखना चाहते हैं, जिसके

कारण हमारे आर्यत्व अर्थात् वैदिकता का ह्रास हुआ है। यह मानी हुई बात है कि जब कभी कोई नवीन जाति दूसरी जाति में अपने विचार और विश्वास दाखिल करना चाहती है तो वह उस जाति की कुछ बातों को मान लेती है, कुछ का अर्थ बदल देती है और कुछ अपने विचार उसमें दाखिल कर देती है। इस देशमें ईसाइयों ने भी इस सिद्धान्त से बहुत लाभ उठाया है। आरम्भ में ईसाई पादरियों ने देखा कि यहाँ के धर्मगुरु ब्राह्मण हैं, अतः वे भी यज्ञोपवीत पहनकर और ब्राह्मणों के से अपने नाम रखकर ईसाई धर्म का उपदेश करने लगे। जब उन्होंने देखा कि यहाँ साधुसंन्यासियों का बड़ा मान है, उन पर लोग बड़ी श्रद्धा रखते हैं और उनके वचनों को मानते हैं, तब मुक्ति फ़ौज के ईसाई प्रचारकों ने भी वस्त्रों को भगवा रंग से रँगकर और संन्यासियों का भेष बनाकर प्रचार करना आरम्भ किया। इसी तरह जब उन्होंने देखा कि, यहाँ उपनिषदों का बड़ा मान है तब वाजसनेयी उपनिषद् की 'ईशावास्यमिदं सर्वं' इस श्रुति से ईसा मसीह का उपदेश करने लगे। इसी तरह संस्कृत में बाइबिल को लिखवाकर भी बड़े बड़े पंडितों को ईसाई बना लिया। यह सारी हक़ीक़त सब लोग जानते हैं, इसलिए यहाँ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। केवल इस बात का ज़िक्र कर देना आवश्यक है कि, इन्होंने किस प्रकार अपने सिद्धांतों को संस्कृतद्वारा हिन्दुओं में प्रचलित करने की जालसाज़ी की।

हम पहिले ही लिख आये हैं कि, कोलब्रूक आदिकों ने वेदों को प्राप्त करना चाहा था, पर द्रविड़ों ने उन्हें ठग लिया और वेदों को न दिया। किन्तु पादरियों ने सोचा कि लोभी द्रविड़ों को रुपया देकर बाइबल के सिद्धांतों को संस्कृत में लिखवाकर एक वेद तैयार करना चाहिये। वही किया गया। सन् १७६१ में रॉबर्ट डी० नोबली नामक पादरी ने एक द्रविड पण्डित को रुपया देकर पुराण और बाइबिल मिश्रित एक पुस्तक संस्कृत में लिखवाई और उसका नाम यजुर्वेद रक्खा। उस समय यह वेद के नाम से लोगों को सुनाया जाने लगा। इसका फ्रेंच भाषा में अनुवाद भी हुआ और बड़ी धूमधाम से पेरिस के पुस्तकालय में रक्खा गया। सन् १७७८ में इस पर बड़े बड़े लेख निकले पर बात खुल गई और अन्त में मैक्समूलर ने कह दिया है कि, 'In plain English the whole book is childshly derived' अर्थात् यह समग्र पुस्तक लड़कों का खेल है। यह पुस्तक भी अगर अल्लोपनिषद् की तरह आज तक प्रचलित रहती, तो वह भी हिन्दुओं में मान्य ग्रंथ हो जाती, किंतु ईसाईयों का यह प्रपञ्च न चला और इस साहित्यध्वंस के तरीक़े का अन्त हो आया।

यह मानी हुई बात है कि किसी भी जाति के उत्तम साहित्य का नाश करना उस जाति के नाश करने का प्रबल उपाय है। साहित्य नाश करने के तीन तरीक़े हैं। जला देना, गड़वा देना या दरिया में डलवा देना, नीच तरीक़ा है; उसमें अपने सिद्धांतों का प्रक्षेप कर देना मध्यम तरीक़ा है और उसे निकम्मा साबित करना गूढ अथवा उत्तम तरीक़ा है। पहिले दोनों तरीक़ों से तो बचने का उपाय है। कंठस्थ करके उत्तम साहित्य बचाया जा सकता है और जाँच पड़ताल से प्रक्षेप भी पकड़ में आ सकता है, पर तीसरा तरीक़ा बड़ा ही दुर्गम है। इससे बचना बहुत ही कठिन है। ईसाईयों ने हमारे साहित्य के नष्ट करने का अब दूसरा ही तरीक़ा अख्तियार किया है और हमारे देश के बच्चों की शिक्षा का भार अपने हाथ में

लेकर मनमाना साहित्य पढ़ाते हैं और उसका मनमाना अर्थ भी करते हैं। उन्होंने हमारे देश के साहित्य पर विचार भी किया है। कृष्ण यजुर्वेद से लेकर अल्लोपनिषद् तक जो कुछ अब तक आर्यों और अनार्यों ने मिश्रण किया है, सबको समझा है, और हमें जंगली साबित करने में उसका उपयोग भी किया है। क्योंकि वे मान बैठे हैं कि भारतीयों के कल्याण में हम योरपवासियों का कल्याण नहीं है। जबसे उन्होंने इस देश को राजनैतिक दृष्टि से देखना आरंभ किया है, जब से उनको यहाँ की ३० कोटि जनसंख्या सैनिक दृष्टि से दिखने लगी है, तब से उन्होंने देखा है कि यह देश यदि सशस्त्र स्वतन्त्र हो जाय, तो युद्ध के लिए प्रति वर्ष बीस लक्ष जवान दे सकता है और हमेशा के लिए युद्धोपकरण तथा खानेपीने का सामान अपने आप पूरा कर सकता है और जबसे उन्होंने देखा है कि पारसी, यहूदी, देशी ईसाई, मुसलमान और बौद्ध आदि भारतवासी देशप्रेम से प्रेरित होकर एक हो सकते हैं, तबसे योरपनिवासी इस देश के साहित्य, इस देश के इतिहास, इस देश के व्यापार और राज्य आदि किसी भी उत्कर्ष को पनपने नहीं देते। वे जानते हैं कि प्राचीन जातियों के समस्त उत्कर्ष की कुंजी उनके साहित्य में होती है, इसीलिए ये ईसाई कुटिल नीति से प्रेरित होकर यहाँ के उत्तम साहित्य का अनर्थ करके अभिप्राय पलट देते हैं। बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् और रसायन–शास्त्र के आचार्य श्रीयुत पी० सी० राय ' 'हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन केमिस्ट्री' के पृष्ठ ४२ में लिखते हैं कि 'जब योरोपियन विद्वानों को स्वीकार करना पड़ता है कि विद्यासम्बन्धी विषयों में योरप देश भारतवर्ष का ऋणि है, तब उनको बहुत बुरा लगता है। यही कारण है कि ये लोग ऐतिहासिक विषयों को अन्य रीति से वर्णन करने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं'।

योरपनिवासियों की यह बात शिक्षाविषयक पाठ्य पुस्तकों में बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। यह सभी जानते हैं कि वेदों का समय हर तरह से बहुत पुराना साबित हो चुका है, पर स्कूलों में अब तक वेदों की प्राचीनता वही तीन हज़ार वर्ष की पढ़ाई जा रही है।

इसी तरह हर प्रकार से यह साबित हो चुका है कि, आर्यों के पूर्व इस देश में कोल द्रविड़ादि कोई भी असभ्य जातियाँ नहीं रहती थीं और आर्य लोग कहीं बाहर से आकर यहाँ नहीं बसे, पर अबतक वही पुरानी ही बातें पढ़ाई जाती हैं कि, यहाँ के मूलनिवासी द्रविड़ और कोल हैं और आर्य तो कहीं बाहर से आये हैं इसका मतलब यही है कि इस तरह की बातों को पढ़कर भारतीय आर्य अपने साहित्य से उदासीन हो जायँ और बिना जलाये, बिना प्रक्षेप किये ही उनके लिए इतिहास मुरदे से भी अधिक बदतर हो जाय। वही हुआ। हमारे विश्वासों में अन्तर आने लगा। हम, ईसाई शासकों के द्वारा प्रतारित होकर इस साहित्य के साथ ईसाईसागर में समाना चाहते थे कि बंगाल के आर्य–शिरोमणि राजा राममोहन राय ने ब्रह्मसमाजद्वारा हमें बचाने का यत्न किया, पर उनके बाद ही केशवचन्द्र सेन ने ईसाइयों से प्रभावित होकर ब्रह्मसमाज के सिद्धांतों को ईसाई सिद्धांतों के साथ मिलाकर ब्रह्मसमाज को भी एक प्रकार से ईसाईसमाज ही बना दिया। किन्तु तुरन्त ही स्वामी दयानन्द ने इस क्षेत्र में अपना कार्य आरम्भ कर दिया। उन्होंने आर्यों में उनकी प्राचीन विद्या, सभ्यता, संस्कार धर्म औरसार्वभौम राज्य आदि के मन्त्र फूँके। उन्होंने सारे देश में घूमघूमकर तत्कालीन समझदार लोगों के हृदयों में प्राचीन

ार्यों का प्रज्वलयमान यश प्रकाशित कर दिया। उन्होंने वेदों की उच्च शिक्षा का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया और आर्य जाति को सचेत किया कि वे अपनी डूबती हुई आर्यनौका को सँभालें। यह बात लोगों की समझ में आ गई और स्वामी दयानन्द के धर्मप्रचार का तूफ़ान उमड़ पड़ा। सारे देश में स्वामी दयानन्द के उद्देश्य की चर्चा होने लगी।

कांग्रेस के जन्मदाता मिस्टर ह्यूम ने कहा कि स्वामी दयानन्द इतना बड़ा आदमी है कि, मैं उसके पैर के बूटों के तस्मे खोलने की भी योग्यता नहीं रखता। दूसरे अँगरेज़ भी उनकी प्रतिभा के सामने नतमस्तक हुए। यह चरचा योरप और अमेरिका में भी पहुँची। योरप और अमेरिका में स्वामी दयानन्द के आविर्भाव, धर्मप्रचार और संगठन पर लेख निकलने लगे। वहाँ के लोग घबराये और अनुभव करने लगे कि ईसाई धर्म की खैरियत नहीं है। अमेरिका के उन लेखों में से ऐंड्रो जैक्सन डेविस के एक लेख का कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं। वह लिखता है कि 'मुझे एक आग दिखलाई पड़ती है, जो सर्वत्र फैली हुई है। यह आग सनातन आर्यधर्म को स्वाभाविक पवित्र दशा में लाने के लिए आर्यसमाजरूपी भट्टीमें से निकली है और भारत के एक परम योगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशित हुई है।

'हिंदू और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिए दौड़े, ईसाइयों ने भी इसके बुझाने के लिए हिंदू और मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह ईश्वरी आग और भी भड़क उठी और सर्वत्र फैल गई।' इस प्रकार के लेखों से वहाँ के पादरी घबराये। उस समय अमेरिका में कर्नल अलकाट और मेडम ब्लेवेट्स्की आदि जो वैज्ञानिक रीतियों से ईसाईधर्म की सिद्धि किया करते थे, दूर तक सोचे और भारत में ईसाई जाति के प्रस्थान का स्वप्न देखने लगे और भविष्य को खतरनाक समझकर स्वामी दयानंद को अपने पंजे में फँसाने के लिए निकल पड़े। भारत में आये और आर्यसमाज में घुसे, पर स्वामी दयानंद ने उनको ताड़ लिया और तुरंत ही आर्यसमाज से जुदा कर दिया। निराश होकर उन्होंने भारतवर्ष में ईसाई धर्मपचार के लिए थिओसोफ़िकल सोसाइटी की स्थापना की और प्रचार करने लगे। उन्होंनें संसार भर के बड़े बड़े धर्मों को थिओसोफ़ी के चक्कर में लाकर सबको ईसा का चेला बनाने की विधि रच डाली। मेडम ब्लेवेट्स्की तो कुछ ही वर्षों के बाद चल बसी, पर उनकी स्थानापन्न एनी बीसेन्ट नाम्नी आयरलेन्डवासिनी एक दूसरी गौराङ्ग महिला यहाँ आकर उपस्थित हो गईं। आप बड़ी ही चलता पुर्ज़ा, ज़बरदस्त लेखिका और प्रभावशालिनी व्याख्यानदात्री सिद्ध हुईं। हमेशा हर विषय में अप-टु-डेट रहने लगीं और आपने यहाँ के नवशिक्षित समाज में अपने सिद्धांतों को साइंस से सजाकर फैलाना शुरू किया।

बाहरी प्लान तथा भीतरी अदृश्य प्लानों की थियरी बनाकर अदृश्य साधुओं से योगद्वारा अपना सम्बन्ध बतलाने लगीं और भूत-प्रेत आदि का ढकोसला भी जारी कर दिया। उन्होंने कई प्रकार के यन्त्र बनवाये, जिनके द्वारा भूत-प्रेत और मृत आत्माओं का दर्शन कराने लगीं। मेस्मरेज़म और हिपनाटिज्मद्वारा योग की क्रियाएँ बतलाकर और दिखलाकर लोगों को मोह में डालने लगीं। इसी तरह अपने धर्म के विचित्र सिद्धांत बनाकर समस्त सम्प्रदायों और समस्त धर्मों को एक ही स्थान में मिलाकर सबको ईसा के कुटिल फन्दे में

फसाने की युक्ति करने लगीं और कहने लगीं कि, संसार का शिक्षक आनेवाला है, जो ईसा का ही रूप है, अतएव उसके लिए हृदय और देश तैयार करना चाहिये । यहाँ हम उनके इस सिद्धांत का वर्णन उनके ही शब्दों में करते हैं । आप कहती हैं कि, 'संसार में दो शक्तियां हैं, एक शासक, दूसरी शिक्षक । शासक शक्ति पहिले मनु अर्थात् मनुष्य हुई । इसी के साथ साथ उसका भाई शिक्षक भी हुआ । आर्यजाति मे यह व्यास हुआ, जिसने सूर्यचिह्न को प्रचलित किया । दुबारा वही शक्ति मिश्र में थोथ नाम से और ग्रीस में हर्मस नाम से प्रादुर्भूत हुई । तीसरी बार वही ईरान में जरथुस्त के नाम से कही गई । चौथी बार वही ग्रीस में आरफस नाम से अवतीर्ण हुई । पाँचवीं बार वही शक्ति बुद्ध हुई और मुक्त होकर चली गई । चलते समय वह संसार के शिक्षक का काम अपने भाई मैत्रेय को दे गई, जो अब क्राइस्ट—ईसा—कहलाता है । बुद्ध बुद्धि का और ईसा प्रेम का देवता है । यही प्रेमदेव—ईसा—आजकल संसार का शिक्षक है' × ।

इस लेख में शिक्षागुरुओं का सिलसिला व्यास से शुरू होकर बुद्ध तक चला । जब बुद्ध का निर्वाण होने लगा, तो जाते वक्त उन्होंने यह काम अपने भाई मैत्रेय ऋषि को दे दिया और वही मैत्रेय ईसा हो गये । तब से अब बन्दोबस्त दमामी हो गया है । अब संसार के धर्मगुरु ईसा ही हैं । इस फन्दे में हिंदू, मिश्री, पारसी, बौद्ध आदि सभी धर्मावलम्बी फांसे गये हैं और बिना इच्छा के ज़बरदस्ती ईसा के चेले बना दिये गये हैं । इस रचना के साथ ही एक मद्रासी लड़के के लिए प्रसिद्ध किया गया है कि, वही संसार का शिक्षक है, अर्थात् वही ईसा का अवतार है । इस तरह से उस नवीन शिक्षक के द्वारा शिक्षा दिलाकर संसार को ईसाई धर्म के अनुकूल बनाने और सब धर्मों में ईसाइयत का शासन जमाने का उत्तम साधन किया गया । परंतु पाप की नाव बहुत दिन तक नहीं चलती । भूतप्रेत दिखलानवाले यंत्रों का

× The coming of a World-Teacher :—That mighty Hierarchy has two chief department concerned with the growth and the evolution of man-one the department that guides the outer evolution, that shapes the forms of races, that raises and casts down civilisations, to whom kings and the nations of the world are as pawns in the mighty game of life; the other the department of teaching which gives religion after religion to the world as the world has need of it.

At the head of the ruling department—so far as appearance in the world is concerend stands the Mighty Being from whom our very name of man is drawn. He is the 'Manu' the man. The name Manu means the thinker, the reasoner, the intelligent one, so this name of the typical man, the Manu, stands for the Ruler, the Law-giver of the race. And side by side of him, his brother in the great world of evolution, stands the World-Teacher, called by that name in some of the ancient books

भण्डाफोड़ खुद उसी आर्टिस्ट ने कर दिया, जो उन यंत्रों को बनाया करता था और इस सारी हक़ीक़त को यत्रों के फ़ोटो सहित पियर्सन्स मेगेज़ीन ने छाप दिया है, जो सबके सामने है। इसी तरह एफ़० टी० ब्रुक्स ने Theosophical Bogyism नामी पुस्तक

---

of earth, known as the one who embodies in himself the wisdom which is the truth that feeds the human race.

In the stock of our races, the first great Aryan people, there they had as the World-Teacher the great one known under the name of Vyasa and he taught the one truth by the firure and the symbol of the Sun.

Then when he came to the second sub-race and taught in Egypt under a different name, the name of Touth, whom the Greeks called Hermes.

Then he came to the third sub-race, to the Iranians and he came then under the name of Zarthustra, better known as Zoraoster.

Then a fourth time he came to the fourth sub-race, the Greeks known as Orpheus; but he no longer spoke in light but in music and by the mysteries of sound he taught the unfolding of the spirit in man.

Then that Mighty one returned to earth, but once more, to become the Lord Buddha and to found the religion that still outnumbers any other faith on earth. And then He passed away, never again to take a mortal form and handed on the duty of the World-Teaching to His Brother, who has come side by side with him through many ages, to Him who is the World-Teacher of to-day, the great Lord Maitreya, whom Christendom calls the Christ and between these two identical in thought, identical in teaching there was yet a difference of temperament that coloured all they thought, for He who became the Buddha is known as Lord of Wisdom and He who was the Christ is known as the Lord of Love-one teaching the law, calling on men for right understanding, for right thinking; the other seeing in love the fulfilling of the law and seeing in love the very face of God. Lord of Wisdom! Lord of Love! It is the Lord of Love, who is the World-Teacher of to-day. (The Immediate Future and Other Lectures, by Annie Besant.)

में इनके भीतरी अदृश्य प्लानों (inner circle) की पोल खोल दी है। नये संसार-शिक्षक की उत्पत्ति और अनेकों ऐसी ही फ़रेबबाज़ियों से आरी आकर बाबू भगवानदास आदि विद्वानों ने थियोसोफीकल सोसाइटी से उपेक्षा कर लिया। फल यह हुआ कि थियोसोफी की पोल खुल गई और उसकी धार्मिक स्कीम एक प्रकार से गिर गई और कुछ दिन के लिए बीसेन्ट का रङ्ग फीका पड़ गया—उनकी भद्द हो गई।

धर्मप्रचार का बना बनाया खेल बिगड़ते देखकर उन्होंने दूसरा प्रपञ्च शुरू किया और विद्याप्रचार के काममें सरगर्मी दिखलाने लगीं, तथा कई एक नये कालेज खोल दिये। उस समय ऐसा मालूम होता था कि, वे हिन्दोस्थान भर की शिक्षाका भार अपने ही हाथमें ले लेंगी। शिक्षाप्रचार का काम हाथ में लेने के दो कारण थे। एक तो शिक्षाके साथ साथ गुप्त रीतिसे ईसाई सिद्धांतों का सिखलाना, दूसरे अखण्ड ब्रह्मचर्य से विद्यार्थियों को उदासीन बनाना। जहाँ देश के हितचिन्तक गुरुकुल ऋषिकुल आदि खोलकर अखण्ड ब्रह्मचर्य का प्रचार करते थे, वहाँ ठीक इसके विरुद्ध इनके यहाँ इस प्रकार की शिक्षा होती थी। इस प्रचार का यही उद्देश्य होगा कि, जितने लड़के ब्रह्मचारी हों, कम से कम उतने ही लड़के ब्रह्मचर्य से उदासीन बना दिये जायँ, जिससे कभी भी यह जाति अँगरेज़ोंके मुक़ाबिलेमें न तो पढ़ लिख सके और न शौर्य, तेज, बल और पराक्रम आदि ही धारण कर सके। सारांश यह कि इस प्रकार की शिक्षा एनी बीसेण्ट के सहायक महाशय लेडबिटरके द्वारा जारी कराई गई। परन्तु भाग्य से यह सारा भेद प्रकट हो गया और इसके प्रकट होते ही सारे देशमें इसी की चरचा होने लगी और टीकाटिप्पणियों से प्रत्येक जमात उपेक्षा दिखलाने लगी। लोगोंने अपने बच्चों को स्कूलों से उठाना शुरू कर दिया और देश में एनी बीसेंट की बुरी तरह से भद्द हो गई। स्कूलों और कालेजों से उनका संबंध छूट गया और उनका यह वार भी खाली गई। धर्मप्रचारक और विद्याप्रचारक के द्वारा वे ईसाई धर्म और अँगरेज़ जाति की बहुत सेवा न कर सकीं।

कुछ दिन के बाद आयरलैंड और इँगलैंड के बीच खटपट हुई। एनी बीसेंट आइरिश हैं, अतः वे अँगरेज़ों को बंदरघुड़की देने और एक नई स्कीम के द्वारा भारतवासियों को अपने पंजे में फिर फँसाने के लिए अब की बार राजनैतिक रूप में दिखलाई पड़ीं। यह उनका तीसरा रूप है। आयरलैंड और भारत में पुजने के लिये उन्होंने गवर्नमेंट के विरुद्ध बड़े ही गर्मागर्म लेकचर देना शुरू किये और होमरूल नामी एक नई संस्था को जन्म दिया। इन्हीं दिनों में लोकमान्य तिलक और महात्मा गान्धी देश का राजनैतिक कार्य कुछ आगे बढ़ानेवाले थे। परन्तु एनी बीसेंट ने, इस डर से कि कहीं इन लोगों का उद्देश्य विशाल न हो जाय, झट होमरूल लीग के द्वारा गवर्नमेंट से परिमित अधिकार चाहनेवाले नियम बनाकर और उनका नाम होमरूल रखकर लोगों को उसी की हलचल में चिपका दिया और लो० तिलक तथा महात्मा गांधी की संयुक्त शक्ति के द्वारा होनेवाले काम को सदा के लिए नष्ट कर दिया।

होमरूल लीग से पृथक् लो० तिलक ने तो अपनी एक अलग संस्था निकाली। महात्मा गांधी भी कुछ काम करना ही चाहते थे और इसके लिए केवल देश का वातावरण ही देख रहे थे। इतने में हिंदू युनिवर्सिटी का उत्सव हुआ। इसी में महात्मा गांधी के कार्य का भविष्य सोचकर एनी बीसेंट ने वहीं पर महात्मा गांधी को गिराने का प्रयत्न किया। पर सूर्य पापी के

कोसने से नहीं छिपता, अतः एनी बीसेंट का वह हाथ भी खाली गया। वहाँ से लौटकर एनी बीसेंट ने कुछ ऐसे लेक्चर दिए, जो आपत्तिजनक थे। उन्हीं के कारण एनी बीसेंट को जेल हुआ। इस गुण से मुग्ध होकर देश के नातजर्बेकारों ने उनको कांग्रेस का प्रेसीडेंट बनाया। परन्तु उन्होंने वहाँ भी अपना रूप प्रकट कर दिया। अपने भाषण में कह दिया कि, मैं आपको सदा प्रसन्न रखने की प्रतिज्ञा तो नहीं कर सकती, पर यह प्रतिज्ञा कर सकती हूँ कि राष्ट्र की सेवा के लिए सब प्रकार उद्योग करूँगी। मैं आपकी सभी बातों से सहमत होने तथा आपके मार्ग का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा नहीं कर सकती। क्योंकि नेता का कर्तव्य नेतृत्व करना ही होता है।

इस बात से हमको तो उसी दिन ज्ञात हो गया था कि, इन्होंने अपना रूप प्रकट कर दिया है। हमको ही नहीं प्रत्युत और भी सब देशवासियों को ज्ञात हो गया था कि, वे राजनैतिक मैदान में हमारा साथ वहीं तक दे सकती हैं, जहाँ तक हमको ईसाइयों की गुलामी करना मंजूर हो, इससे आगे नहीं। पिछले काग़ज़पत्रों के देखने से ज्ञात होता है कि होमरूल लीग उन्होंने इसलिए बनाई थी कि अगर उन पर कोई आपत्ति आवे, तो देश के लोग उसके द्वारा पुकार करके उनको उस आफ़त से बचावें। यह बात १६।१०।१६ के 'नवजीवन अने सत्य' नामी पत्रमें छपे हुए शंकरलाल बेंकर एम्० ए० के लेख से अच्छी प्रकार प्रकट होती है। कहने का मतलब यह कि होमरूल लीग उनकी तारीफ़ करने, आयरलैंडवालों को मदद देवे और एक प्रकार से अपने चेलों को अपने फन्दे में फँसाये रखने के लिये ही थी। महात्मा गांधी के सच्चे काम के आरम्भ करते ही न होमरूल लीग का कहीं पता लगा और न एनी बीसेंट का।

इस तरह से यह उनका तीसरा धावा भी समाप्त हुआ। यद्यपि वे पूर्ण रीति से अपने उद्देश्य में कामयाब नहीं हुई तथापि हज़ारों और लाखों आदमियों के विचारों और विश्वासों को इतना लचर और कमज़ोर बना दिया है कि उनकी हालत पर दया और अफ़सोस होता है। पढे लिखे हिन्दुओं का जितना जीवन थियोसोफ़ी ने नष्ट किया है, उतना और किसी ने नहीं। उनका उद्देश्य ही यह कि जहाँ आर्यों का उत्कर्ष हो, वहीं पर हिकमत से बाधा पहुँचाना। थियोसोफिस्ट किसी भी भारतवासी की प्रबल आवाज़ को सुनते हैं, तो तुरन्त उसको नीचा दिखाने के लिये आगे पहुँचते हैं। ये नहीं चाहते कि इस देश के लोग ज़रा भी उठ सकें। स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी का उत्कर्ष नष्ट करने का जैसा घृणित उद्योग इन लोगों ने किया है, वह हम ऊपर लिख चुके हैं। उससे भी अधिक भयङ्कर व्यवहार इन्होंने स्वामी विवेकानन्द के साथ भी किया है। स्वामी विवेकानन्द की अमेरिका में जब कीर्ति आरम्भ हुई थी, तो वहाँ इन लोगों ने उनके प्राण तक लेने का इरादा किया था। अपने आप पर बीती हुई इस हक़ीक़त को स्वामी विवेकानन्द ने मद्रास के विक्टोरिया हॉल में वक्तृता देते हुए खुद कहा है कि, 'अमेरिका जाने के समय थियोसोफ़िकल सोसाइटी के नेता महाशय से, जो अमेरिकावासी होते हुए भी भारतभक्त कहलाते हैं, मिलकर मैंने एक परिचय-पत्र के लिये प्रार्थना की, परन्तु फल यह हुआ कि, उक्त महोदय ने मुझे अपनी सोसाइटी से अलग समझ कर कहा कि, हम तुम्हारे लिये कुछ भी नहीं कर सकते। जब मैं अमेरिका पहुँचा, तो वहाँ मुझे आर्थिक दशा पर कठोर दुःखों का सामना करते देख, इन्हीं में से एक ने लिखा कि, शयतान बहुत जल्द मरेगा। पर ईश्वरेच्छा, मैं

बच गया । इतना ही करके इन लोगोंने मेरा पीछा नहीं छोड़ा, किन्तु जहाँ पर मैं ठहरता था, वहां से लात मारकर मुझे निकाल बाहर कराने और मेरे मित्रों से ही मुझे मरवा डालने की भी बड़े वेग से हज़ारों कोशिशें की; परन्तु ईश्वर की मर्ज़ी से उनकी एक भी कोशिश सफल न हुई । सबके सब हाथ मलते हा रह गये । जब धर्म महासभा में मेरी ख्याति बढ़ी तब तो इन लोगों की ईर्ष्या का ठिकाना ही न रहा ' + ।

स्वामी विवेकानन्द की इस वक्तृता से स्पष्ट हो जाता है कि, थियोसोफ़िस्ट भारत का उत्कर्ष नहीं चाहते । उनका उद्देश्य तो संसार को ईसाई बनाता है । एनी बीसेंट सब धर्मावलम्बियों को थियोसोफ़ी में केन्द्रित करके ईसा को संसार का धर्मगुरु मनवाने का यत्न करती हैं और कृष्णमूर्ति को ईसा का अवतार बनाकर वर्तमान विज्ञान के टूटे फूटे और झूठे चमत्कारों से भोलेभाले लोगों को उनके धर्म से पतित करना चाहती हैं । इस कृष्णमूर्ति के नवीन अवतार पर यद्यपि आजकल थियासोफिस्टों में भी असन्तोष फैल रहा है, तथापि एनी बीसेंट ईसाईधर्मप्रचार की धुन में किसी की नहीं सुनतीं । ये कृष्णमूर्ति कौन हैं और इनके विषय में क्या चरर्चा है, यहाँ थोड़ासा इसका भी वर्णन करते हैं ।

कृष्णमूर्ति एक मद्रासी ब्राह्मण के पुत्र हैं । इनके पिता तहसीलदार थे । एनी बीसेंट ने कृष्णमूर्ति को उनके पिता से शिक्षा देने के लिये माँग लिया और लेडबिटर नामी अपने एक सहायक के सुपुर्द कर दिया । परन्तु लेडबिटर के पास रखना कृष्णमूर्ति के पिता को मंजूर न हुआ, इसलिए उन्होने अपने पुत्र को वापस लेना चाहा । वापस न देने पर उन्होंने अदालत में दावा किया, पर अदालत ने उनको उनका पुत्र न दिलाया और कृष्णमूर्ति शिक्षा प्राप्त करने के लिए योरप भेज दिये गये । अब वे वहाँ से शिक्षा प्राप्त करके यहाँ आ गये हैं । सन् १९२६ ई में मद्रास प्रांत के अडयार नामी क़सबे में संसार की समस्त जातियों के दो हज़ार थियोसोफिस्ट प्रतिनिधियों की उपस्थिति में एक वटवृक्ष के नीचे कृष्णमूर्ति का ' नवीन मसीहा ' के रूप में अभिषेक हुआ । इस नवीन मसीहा के विषय में एनी बीसेंट ने कहा कि नवीन मसीहा संसार के समस्त धर्मों की ऐक्यता करने के लिए अवतरित हुए हैं । इसी तरह पेरिस में स्वयं कृष्णमूर्ति ने भी कहा कि, मैं संसार में उदारता, प्रेम, तितिक्षा और सब धर्मों की एकता का प्रचार करता हूँ ।

परन्तु इस नवीन मसीहाके विरुद्ध आज समस्त थियोसोफ़ीमंडल में आन्दोलन हो रहा है । सभी इस पाखण्ड का खण्डन कर रहे हैं । लण्डन थियोसोफ़ी लॉज के प्रेसीडेंट लेफ्टिनेंट कर्नल सी० एल० पीकॉक ने लिखा है कि, बीसंट का यह नया धर्म थियोसोफ़ी के वास्तविक रूप के विरुद्ध है । इसी तरह केलीफ़ोर्निया और न्यूयार्क के नेताओं ने भी इस नवीन मसीहासम्बन्धी निश्चय का विरोध किया है । सब कहते हैं कि एनी बीसेंट कृष्णमूर्ति को क्राइस्ट का अवतार बनाना चाहती हैं और वे यह भी चाहती हैं कि सब थियोसोफिस्टों का धर्मचिह्न क्रॉस हो, परन्तु अनेकों ने इसे अस्वीकार कर दिया है । इस तरह कृष्णमूर्ति को ईसा का अवतार बनाने के प्रयत्न की सबने निन्दा की है । जेकोस्लाविया, फ्रांस और मद्रास आदि के लोगों ने उनके इस नये धर्म की निन्दा की है । इस सम्बन्ध में पेरिस के ' इवनिङ्ग वर्ल्ड ' नामी पत्र ने लिखा है कि, कृष्णमूर्ति कहता है कि, मेरे कमजोर कन्धों

+ भारते विवेकानन्द, आमार समरनीति ।

पर क्यों यह धर्म का बोझ लादा जा रहा है!+। मुझे तो टेनिस खेलने में जितना आनंद आता है, उतना और किसी बात में नहीं। इसी से अमेरिकावाले दिल्लगी से कृष्णमूर्ति को टेनिसप्रेमी मसीहा कहते हैं। नवीन मसीहा के इस समस्त वर्णन से स्पष्ट हो रहा है कि किस प्रकार एनी बीसेंट भारतवासियों को ईसाई बनाना चाहती हैं। बड़े मार्के की बात तो यह है कि एनी बीसेंट को ईसा का अवतार बनाने के लिए आदमी भी कहाँ मिला? वहीं मद्रास में–द्रविड़ों में। वहीं से तो आर्यों के वैदिक धर्म के नष्ट करने और आर्यों को पतित करने का सूत्रपात ही हुआ है। यह बात थियोसोफ़िस्ट जानते हैं। उन्होंने यह सब समझ बूझकर ही अपना अड्डा मद्रास प्रांत में लगाया है।

हमने यहाँ तक यह थोड़ीसी किन्तु देर तक ग़ौर करने योग्य बात ईसाइयों, ईसाई शासकों और ईसाई थियोसॉफ़िस्टों की लिखी है। यह वर्तमान ज़माने की बात है, जो सबके सामने है, तो भी कितनी पेंचदार है? पढ़े लिखे हिंदू, पारसी, मुसलमान आदि सभी इसके फेर में हैं। सभी को आक्सिजन, हाइड्रोजन, इलेक्ट्रीसिटी, ईथर और इलेक्ट्रोन की थियरी बताकर और स्प्रिचुअलिज्म, योग और वेदांत की बातें सुनाकर तथा भूतप्रेत और आत्मा के इनर प्लानों की बातें सिखाकर ये लोग भोले मनुष्यों को चक्कर में डालते हैं। पढ़े लिखे किंतु भोले लोग ही इनके चक्कर में पड़ते हैं और अपना हर प्रकार से पतन कर लेते हैं। वे आर्योचित कर्तव्य के योग्य नहीं रहते और ईसाई प्रचारकों के अनुकूल हो जाते हैं। इस लिए इनको अब सचेत हो जाना चाहिये और निश्चय कर लेना चाहिये कि, इस पंथ में हमारा कल्याण नहीं है। क्योंकि जिस ईसाई धर्म की ही ओर थियोसोफ़िस्ट ले जाते हैं, उस धर्म को योरपनिवासी अपने लिये लाभदायक नहीं समझते, प्रत्युत वे दूसरों का सत्यानाश करने के लिए ही इसे पादरियों के द्वारा दूसरे देशों में भेजते हैं। फ्रेंच पार्लियामेंट में बजटसंबंधी वादविवाद के समय जब ईसाई धर्मप्रचार के खर्चपर आपत्ति की गई, तो इस आपत्ति का उत्तर देते हुए मंत्री ने कहा कि 'Christianity is not for home consumption, it is for colonial export' अर्थात् ईसाइयत घर के लिए नहीं, प्रत्युत उपनिवेशों में भेजने के लिये है। ईसाइयत यदि अच्छी चीज़ होती, तो घर के योग्य अवश्य समझी जाती। पर निकम्मी चीज़ है और निकम्मी चीज़ के ज़रिये दूसरे देशों को निकम्मा बनाना है, इसलिये उसका प्रचार दूर देशों में किया जाता है। ईसाइयों के द्वारा और ईसाईधर्मप्रचार के द्वारा दूसरे देशों को किस प्रकार निकम्मा बनाया जाता है, इसका उदाहरण ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारतवर्ष है। किस प्रकार इन्होंने अपनी कुटिल नीति से इस देश की आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक शक्तियों का सत्यानाश किया है, वह सबके सामने है और सभी उसका फल भोग रहे हैं। प्रत्येक वर्ष कहीं न कहीं दुष्काळ, नाना प्रकार की जनसंहारिणी बीमारियाँ और परस्पर कलहाग्नि भारत के कोनेकोने में व्याप्त हो रही है। ईसाई शासकों, ईसाई प्रचारकों और ईसाई व्यापारियों ने इस देश में

+ अभी हाल में खबरें आई हैं कि कृष्णमूर्ति ने अब इस गुड्डम से अपने को पृथक् कर लिया है और आर्डर आफ़ दि ईस्ट नामी पंथ (जो एनी बीसेंट ने कृष्णमूर्ति के लिये बनाया है) से जुदा हो गये हैं। इस घटना से शर्मिंदा होकर आप कहती हैं कि कृष्णमूर्ति अवतार हैं और हमसे ज्यादा बुद्धिमान् हैं, इसलिये जो कुछ करते हैं सब ठीक ही है।

ऐसी ऐसी बीमारियाँ फैला दी हैं कि इस देश का प्रलयपर्यंत कल्याण नहीं दिखलाई पड़ता। ऐसी चेपी बीमारियों में से उपदंश की बीमारी इन्हीं की फैलाई हुई है। इनके आने के पूर्व तक इस देश में इसका कोई नाम भी नहीं जानता था। पर पोर्टुगीज़ों के आते ही यह भयंकर रोग इस देश में फैल गया +। कहने का मतलब यह कि ईसाइयों के द्वारा इस देश की जो हानि हुई है, वह अकथनीय है।

यहाँ तक हमने विदेशियोंद्वारा नवीन सम्प्रदायों का प्रवर्तन और वैदिक साहित्य का विध्वंस दिखलाया। अब हम यह समस्त कथा यहीं पर समाप्त करते हैं। उतने ही वर्णन से अनुमान करने के लिए मौक़ा न छोड़ना चाहिये और तुरन्त ही यह बात ध्यान में ले लेना चाहिये कि जब इतने दीर्घकाल के बाद भी आज साहित्यविध्वंस का पता इतनी अधिकता से लग सकता है, तो न जाने अगले ज़माने में पता लगाने से कितना पता मिलता और किन किन विदेशियोंने क्या क्या रचना की है जाना जाता। इसलिए यदि कोई हिंदू धर्म की अव्यवस्था और आर्यजाति की दुर्गति का कारण जानना चाहे, तो वह इतने ही वर्णन से अच्छी प्रकार समझ सकता है। आज हिंदुओं में जो नाना प्रकार के कुसंस्कार, अविद्या और अनैक्यता दिखलाई पड़ती है और आज जो आर्यजाति पतित दशा में पहुँची है, उसका कारण इस वर्णन पर से सहज ही दिखने लगता है। क्योंकि यह मानी हुई बात है कि, मनुष्यजाति का पतन अनैक्य, अविद्या और अनाचार से ही होता है। हमारे इस समस्त वर्णन से स्पष्ट हो रहा है कि, आर्यों में विदेशियों के द्वारा अनेकों मतमतान्तरों, दार्शनिक विचारों और अनेकों सम्प्रदायों का प्रचार हुआ है और उसी से हममें अनैक्यता उत्पन्न हुई है। इसी तरह विदेशियों के ही द्वारा धर्म के नाम से मद्य, मांस, व्यभिचार आदि दुर्व्यसन और अनाचार भी आर्यों में दाखिल हुए हैं, जिनसे हममें हर प्रकार की दुर्बलता, निरुत्साह और अपवित्रता समा गई है। इसी तरह विदेशियों की ही कृपा से हम में अविद्या का प्रचार भी हुआ है। जहाँ मद्य, मांस और व्यभिचार हो, जहाँ जंगली व्यवहार ही धर्म हो, जहाँ वंचक और अविवेकी मनुष्य गुरु बन जायँ और जहाँ इसी तरह के गुरुओं की बात पर विश्वास किया जाना धर्म हो, वहाँ विद्या का प्रचार कैसे हो सकता है! विद्या तो इन सब उपद्रवों की शत्रु है। इसीलिए यहाँ गुरुपूजा, गुरुओं की संप्रदायपूजा और गुरुओं की वाक्यपूजा ही ने सब विद्याओं का स्थान ले लिया। वही जो कुछ है वह सत्य और सब झूठ हो गया। इन गुरुओं के आदेश से देश की प्रधान जनसंख्या शूद्र हो गई और वह विद्या से अलग हुई। बची हुई थोड़ीसी संख्या का आधा भाग स्त्रियों का भी विद्या से अलग हुआ, तथा ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य इस विदेशी गुरुओं की आज्ञा पालन करने और उनकी ही सेवा करने में लग गये। ऐसी स्थिति में विद्या कौन पढ़े! इस तरह से सारी हिन्दू समाज में अनैक्यता, अनाचार और अविद्या का साम्राज्य हो गया और इन तीनों दुर्गुणों के कारण आर्यजाति का हर प्रकार से पतन हो गया, जिसका चित्र सबके सामने विद्यमान है।

+ Syphilis appears to have been unknown in India till the end of the fifteenth or beginning of the sixteenth century, when it was introduced by the Portuguese. (The Ocean of Story, by Penger.)

इस इतिहास से यह निश्चय कर लेना सहज है कि अब हमें क्या करना चाहिये, अर्थात् हमें धार्मिक विश्वासों में किस प्रकार फेरफार करना चाहिये। हम कहते हैं कि सत्यासत्य के निर्णय के लिए अर्थात् वैदिक धर्म और आसुरी विश्वासों का निश्चय करने के लिए और दोनों का अन्तर जानने के लिये यही उत्तम कुंजी है कि, हम केवल वेदों पर ही विश्वास करें, अन्य ग्रन्थों पर नहीं। क्योंकि रावण से साव्रण तक और कबीर से एनी बीसेंट के द्वारा स्थापित द्रविडावतार तक समस्त विदेशी धर्मप्रचारकों के द्वारा आर्यधर्म में आधे से अधिक आसुरी विश्वासों का मिश्रण किया गया है। इसलिए वेदों को स्वतःप्रमाण और अन्य ग्रन्थों को परतःप्रमाण मानने का जो प्राचीन विश्वास चला आता है, उसी को मान्य समझकर प्रत्येक आर्यहिंदू को चाहिये कि, वह वेदों का स्वाध्याय करके केवल संहिताओं से ही अपने धर्मकर्म की शिक्षा ग्रहण करे। क्योंकि मनु महाराज स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि वेदों को छोड़कर अन्य ग्रंथों में श्रम करने से आर्यत्व नहीं रह सकता। इसका कारण स्पष्ट है कि अन्य ग्रंथों में मनुष्यों की कपोलकल्पना का होना संभव है। किंतु वेद ईश्वरप्रदत्त हैं, इसलिए उनके आदेश निर्भ्रान्त हैं। थोड़े से विष के मिलने से जिस प्रकार पका हुआ अन्न का बहुत बड़ा भाग त्याज्य समझा जाता है, उसी तरह दूषित साहित्य के पढ़ने से भी विषतुल्य आसुरी भावों के चिपक जाने का अंदेशा रहता है। इसलिए अपने धर्म को वेदानुकूल ही बनाना चाहिये। परंतु दुःख से कहना पड़ता है कि आसुरी भावों की उत्पत्ति, उनका विस्तार और आर्य विश्वासों में उनके मिश्रण का यह इतिहास स्पष्ट बता रहा है कि आज तक वेदों की किस प्रकार उपेक्षा हुई है। अनार्यों ने उनको नष्ट करने की प्रेरणा से उनकी महत्ता की उपेक्षा की है और आर्यों ने उनकी निर्मल शिक्षा के प्राप्त करने और उस शिक्षा के ग्रहण करने में उपेक्षा की है। अर्थात् हर प्रकार से वेदों की उपेक्षा हुई है। जो वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं और जो मनुष्य की शिक्षा के लिए आदि-सृष्टि में दिये गये हैं, उनकी उपेक्षा करके मनुष्यजाति कैसे सुखी हो सकती है! विशेष कर आर्यजाति कैसे आर्यत्व की रक्षा कर सकती है और कैसे पतन से बच सकती है! आर्यों ने वेदों की उपेक्षा करके आसुरी सिद्धांतों को ग्रहण किया, इसीलिए उनका पतन हुआ, जो इस समय सबके सामने है। अतः आर्यों के इस पतन का कारण वेद नहीं हैं, प्रत्युत इस पतन का कारण तो वेदों की उपेक्षा ही है।